NEW TRENDS IN AGRICULTURE

(A Compendium of Seminar Papers)

Vol. II

Advisers

Dr. D. K. Garg
S. S. Srivastava

Student Editors

Anoop Singh Rathore
Mannu Ram Singh
Bhopal Singh

Department of Agriculture

Regional College of Education, Ajmer

(National Council of Educational Research and Training, New Delhi)

1973

Published by .
Regional College of Education,
Ajmer.

Printed at :
Job Printing Press,
Brahmpuri,
Ajmer

Foreword

The present publication, coming out in two volumes, containing various articles dealing with agriculture education, is a result of the instructional process being followed in our Agriculture Department These articles were prepared and discussed by students of the One Year Course in B. Ed Agriculture under the guidance of their teachers These are published in the hope that they will stimulate the working teachers of agriculture in the region to resort to such procedures and methods of instruction to achieve national objectives in the field of agriculture in our school system. If this result is achieved, our Agriculture Department will feel well rewarded

J. K. Shukla
Principal
Regional College of Education
Ajmer

Preface

Every year the Department of Agriculture organises seminars for the students of Agriculture of this college. It helps the students to collect valuable and latest information on the researches and other developments taking place in the field of Agriculture. This develops in them the confidence which is very essential for the Agriculture teachers. Each student is assigned a topic and he consults the latest literature, prepares the manuscript under the supervision of his adviser and then presents it in the seminar where the students are actively involved and given full opportunity to discuss the subject, share their ideas, information and experiences

This publication, a compendium of seminar papers, has been organised in a simple form so that it may serve as a resource material for the Agriculture teachers. It has been divided in two volumes, the first one dealing with crop production and the related topics, and the second one with poultry, dairy and vegetable and fruit production. The students have tried to present the matter clearly and we hope the volume will come upto the expectations of the Agriculture teachers serving in various parts of the country. We believe that the publication may be read with interest and profit by others too interested in agriculture. Any suggestion for further improvement will be greatfully acknowledged.

The Department of Agriculture is indebted to Prof. J. K. Shukla, principal, Regional College of Education, Ajmer for his valuable suggestions and encouragement.

Dr. D. K. Garg
Reader and Head
Department of Agriculture
Regional College of Education
AJMER

अनुक्रमणिका

ग्रालू की वैज्ञानिक खेती

लायकराम बी० एड० (कृषि)

उत्पत्ति—आलू का जन्म स्थान दक्षिणी अमरीका है। अमरीका में इसकी खेती 1719 ई० में सर्व प्रथम लोन-डोन-डिरी में की गयी। इसके बाद में यूरोप, डेनमार्क और भारतवर्ष में 18वी शदी से आलू की खेती करना प्रारम्भ हुआ। भारतवर्ष मे लगभग 4,17,000 हैक्टर भूमि पर आलू की खेती की जाती है। जिससे पैदावार 34,52,000 टन व शुद्ध लाभ 4000 से 6000 प्रति हैक्टर हो सकता है।

उपयोग—आलू को अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है। जैसे स्टार्च बनाकर, अकाल के समय में पूर्ण आहार के रूप में, अनेक प्रकार के व्यंजन बनाकर क्योकि आलू के अन्दर निम्न भोज्य तत्व पाये जाते हैं।

100 ग्राम भोज्य पदार्थ में पाये जाने वाले तत्व।

तालिका संख्या 1

क्र सं	तत्व का नाम	प्राप्त मात्रा	क्र सं.	तत्व का नाम	प्राप्त मात्रा
1	नमी	74·7 ग्राम	12	विटामिन C	17 मि० ग्राम
2	प्रोटीन	1·6 ,,	13	फासफोरस	40 ,, ,,
3	बसा	0·1 ,,	14	लोहा	0·7 ,, ,,
4	खनिज तत्व	0·6 ,,	15	सोडियम	11 ,, ,,
5	रेशा	0·4 ,,	16	पोटैशियम	247 ,, ,,
6	कार्बोहाइड्रेट	22·6 ,,	17	ताबा	0·2 ,, ,,
7	कैलोरी	97	18	गंधक	37 ,, ,,
8	कैलशियम	10 मि० ग्राम	19	क्लोरीन	16 ,, ,,
9	मैग्नीशियम	20 ,, ,,	20	विटामिन A	40 अ० ई०
10	आक्जैलिक ऐसिड	20 ,, ,,	21	थाइमीन	0·1 मि० ग्राम
11	निकोटाइनिक ऐसिड	1·2 ,, ,,	22	रीबोफिलेबिन	0·01 मि० ,,

भारतवर्ष में आलू का प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपभोग बहुत कम है। क्योंकि 4 कि० प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष है। जिसको आलू की शीघ्र व उन्नत कृषि करके दूर किया जा सकता है।

भूमि—आलू कई प्रकार की भूमि मे पैदा किया जा सकता है। परन्तु अच्छे जल निकास वाली बलुअर भूमि जिसका पी एच मान 5·4 से 6·4 के बीच हो, उत्तम होती है। जल निकास का ढाल अधिक नही होना चाहिये। मेड़ उत्तर से दक्षिण की ओर बनानी चाहिये जिससे प्रकाश सीधा पड़े। जल-निकास की नाली ढाल के विपरीत होनी चाहिये।

भूमि की तैयारी--आलू की फसल को अधिक गहरी जुताई की आवश्यकता नही होती है। लगभग 3-4 इन्च गहरी जुताई पर्याप्त होती है और भूमि को 4-5 बार मिट्टी पलटने वाले हल से बाद मे 2 बार क्षेत्रीय हल से जुताई की जाती है। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगाया जाता है।

हैरो करते समय खेत में एलड्रिन ·5 प्रतिशत या हैप्टाक्लोर ·5 प्रतिशत का चूर्ण खेत मे 50 कि० प्रति हैक्टर मिलाने से, भूमि मे पाये जाने वाले कीड़ों को नष्ट किया जा सकता है। भूमि का तापक्रम कम करने के लिए सिचाई कर देनी चाहिये।

जातियाँ—आलू की अगेती जातियाँ निम्नलिखित मुख्य है।

1. कुफरी चन्द्रमुखी (ए 2908)।
2. कुफरी शीतमन।
3. कुफरी अंलकार।

इन जातियों से आलू उपभोग के लिये 75-80 दिन बाद प्राप्त हो जाता हैं। बीमारियों तथा कीटों से क्षति अधिक नही होती हैं। आलू शीघ्र बनने लगते हैं। वृद्धि तीव्रता से होती है। देखने मे व उपभोग मे उत्तम हैं। उपभोग के तत्व प्रचुर मात्रा में पाय जाते हैं। सुप्तावस्था अधिक नही होती है।

उपरोक्त जातियों में से किसी एक जाति के बीज को किसी विश्वस्त स्थान से 2·5 सैन्टीमीटर से 4 सैन्टीमीटर व्यास का व 25-30 ग्राम भार का ऐसा आलू खरीदा जाये जिसमें प्राथमिक आंख के पास मे थोड़ा सा उभार आ रहा हो। बडे आकार का आलू उपयुक्त नही होता है। क्योंकि तापक्रम अधिक होने से काटकर नही बो सकते कटे आलू सड़ जाते हैं। जिससे पूर्ण आकार मे बोने से खर्च अधिक हो जायेगा।

बीज को लाकर उसकी सुप्ता वस्था को समाप्त किया जाता है। जिससे कि सम्पूर्ण आलू उगे। इसके लिये मुख्यतः दो रासायनिक पदार्थ प्रयोग करते हैं। 1 प्रतिशत का पुटेशियम-थायो-साइनेट या क्लोरोहाइड्रिन का घोल बनाकर 24 घन्टे तक आलू को बन्द स्थान पर घोल में डुबो कर रखते हैं। उसके बाद छायादार स्थान पर सुखा कर बोने के प्रयोग में लाना चाहिये। शीघ्र आलू प्राप्त करने को बीज को गोदाम से 7 दिन पहले निकाला जाये। सिंचाई की हुयी बलुअर भूमि मे तुरन्त बो देना, जबकि तापक्रम 80° फा० हो। उपरोक्त जातियाँ **60** दिन में 65% तक उपज देती हैं। 7 दिन बाद 5% उपजाव बढ़ती है। व इनकी उपज 50-90 दिन तक 4 कुन्तल प्रति हैक्टर प्रतिदिन बढ़ती है। यह 2% प्रतिदिन है।

जलवायु—जलवायु का प्रभाव आलू की फसल पर अधिक पड़ता है। मुख्य रूप से यह जाड़े की ऋतु की फसल है। परन्तु वर्षा व पाले का इस पर अधिक प्रभाव पड़ता है। पाला पड़ने पर इस की लता मुरझा कर सूख जाती है। और पूर्ण फसल समय के अनुसार प्रभावित होती है। अधिक प्रकाश व तापक्रम में स्वशन की क्रिया बढ जाती है। जिसमें पौधो द्वारा तैयार कार्बोहाइड्रेट जो कि आलू की वृद्धि में अधिक सहायक होता है। पौधा की वृद्धि के रूप मे प्रयोग कर लिया जाता है। फलत. आलू की वृद्धि संतोषजनक नहीं हो पाती है। आर्द्रता अधिक होने से बीमारियां अधिक लगती हैं।

आलू की उत्तम खेती करने को वे स्थान, जो कि समुद्रतल से 6000 फीट तक की ऊँचाई पर हैं। या ऊँचाई तक है। जहाँ तापक्रम जाड़े की ऋतु मे 80° फा० से 130° फा० तक रहता है। 11-10 घन्टे के दिन प्रकाश युक्त ठीक रहते है। व सितम्बर के माह में 2-3 इच मे अधिक वर्षा नही होती आलू की खेती के लिए सर्वोतम होते है।

खाद व उर्वक—खाद व उर्वक की मात्रा का निर्धारण, खेत की दशा, पहले बोयी गयी फसल व बोने के समय पर आधारित होती है। लेकिन उत्तम फसल निम्न मात्राओ के देने पर प्राप्त होती है। नेत्रजन 150 कि० प्रति हैक्टर, फासफोरस 100 कि प्रति हैक्टर व पोटाश 125 कि० प्रति हैक्टर।

नत्रजन की आधी मात्रा गोबर की खाद से या कम्पोस्ट खाद से 150 कुन्टल प्रति हैक्टर बोने से पूर्व खेत मे डाल कर मिट्टी में भलीभांति अंतिम जुताई पर मिला दिया जाता है। और 350 कि० सिंगल सुपरफास फेट व 125 कि० म्यूरेट आफ पोटास प्रति हैक्टर बुवाई से पूर्व ही लगा देते हैं। नत्रजन की आधी मात्रा मिट्टी चढ़ाते समय बोने से एक माह के अन्दर ही लगा दिया जाता है। नत्रजन की अधिक मात्रा देने से आलू देर से बनते हैं। फसल देर से पकती है। आलुओ के अन्दर स्टार्च उचित नही बनता व आकार अनियमित हो जाता है। नत्रजन की मात्रा 40 दिन बाद अधिक दी जाती है। तो भी यही दशा होती है। इसलिये नत्रजन की अधिक मात्रा नही दी जाती है।

सिंचाई—सिचाई समय पर न करने से या अधिक पानी से सिचाई करने पर आलू की फसल पर अधिक प्रभाव पडता है। उत्तम फसल प्राप्त करने को प्रथम सिंचाई बोने से 20-25 दिन बाद 2-3 इच गहराई तक की जानी चाहिये। उस के बाद मे जब भूमि मे नमी 50 प्रतिशत से कम हो जाये, उसी समय पहली सिंचाई से 10-12 दिन बाद करते है। इस प्रकार से कुल 6-8 सिचाई की जाती है। हल्की सिंचाई करने को मैड़ों के पास बनी नाली मे सिंचाई का जल केवल इतना ही दिया जायें जिससे मैड का $\frac{1}{3}$ भाग सूखा ही रहे।

बीज बोना—उपरोक्त प्रकार से तैयार किये गये खेत मे मनुष्यों से या आलू रिजमेकर से 60 सैन्टीमीटर की दूरी पर 8-10 सैन्टीमीटर ऊँची मैड बना दी जाती है। उन पर तैयार किये गये आलू नमीं की मात्रा को देखकर 20 सैन्टीमीटर की दूरी पर बो दिये जाते हैं। आलुओं को 8 सैन्टीमीटर से अधिक गहरायी पर नही बोना चाहिये। बीज बोने का सर्वोत्तम समय 1 से 15 सितम्बर है। एक हैक्टर में उपयुक्त आकार का 12,000 से 15,000 किलो बीज बोया जाता है। बीज गोदाम में अप्रैल से सितम्बर तक ही रखा हो। और खुदने के तीन माह बाद गोदाम मे रखा हो।

स्केव व अन्य वायरस तथा बैक्टीरियों द्वारा लगने वाली बीमारियों से बचाने के लिए आलू के बीज को बोते समय फारमलडिहाइड के $40^{\circ}C$ तापक्रम के घोल मे 2-3 मिनट तक बीज को डुबाने के बाद बोया जाता है।

हानिकारक कीटो से बचाने के पूर्व प्रयोग किया गया रसायन या 2-4 डी अम्लीय रूप मे 1-3 किलो रसायन लेकर 100 किलो पानी में घोल कर समान रूप से खेत मे स्प्रे कर दिया जाता है। जनवरी का खोदा हुआ, बीज बनाने की कुशलता द्वारा बना हुआ बीज हो। और बीज की सुपुप्तावस्था जनवरी से अप्रैल तक बाहर ही रख कर समाप्त की जा चुकी हो। इस प्रकार का बीज बोने से आलू शीघ्र बनते है। तीव्र वृद्धि होती है। उपज अधिक मिलती है।

निकाई-गुड़ाई:—आलू की फसल में निकाई गुड़ाई मिट्टी चढाते समय की जाती है। प्रथम बार निकाई गुडाई उस समय की जाती है, जिस समय पहली सिचाई के बाद भूमि ओठ आ जाती है। यह समय बोने से 30-35 दिन बाद का होता है। इस समय आलू की बेल 20 से 25 सैन्टीमीटर बढ जाती है।

इसी समय जबकि निकाई गुडाई करनी है नत्रजन की शेष मात्रा को उर्वरक के रूप मे देकर मिट्टी चढ़ा दी जाती है। यह क्रिया खुर्पी या फावडे की सहायता से की जाती हैं। जिसके निम्न उद्देश्य होते है।

1. पानी की बचत करना।
2 भूमि मे सूर्य का प्रकाश व हवा बढाना।
3. खर पतवार व हानिकारक कीटो को नष्ट करना।
4. बाद मे प्रयोग किये उर्वरक को उचित स्थान प्रदान करना।
5. भूमि में जीवाणुओ की क्रिया मे वृद्धि करना।
6. आलुओं को उचित रंग का रखने के लिये।
7. तापक्रम को कम करने के लिये।

इस प्रकार से कुल तीन बार निकाई-गुडाई की आवश्यकता होती है। जो कि पहली तीन सिंचाइयों के बाद ही की जाती हैं। बाद में निकाई-गुडाई नही करते हैं।

बीमारियाँ—आलू की फसल मे बीमारियाँ तीन प्रकार से लगती हैं।

1. वायरस द्वारा।
2. बैक्टीरियाओं द्वारा।
3. फफूदी द्वारा।

उपरोक्त तीनों प्रकार से निम्न बीमारियाँ लगती है।

1. **अगेता झुलसा**—इसको अर्ली लाइट भी कहते हैं। यह आलू की फसल का मुख्य रोग है। यह रोग मैदानी क्षेत्रों में विशेष प्रकोप करता है। रोग की प्राथमिक दशा में पत्तियों पर छोटे छोटे भूरे धब्बे नते है। बाद में ये धब्बे फैल कर पूर्ण पत्ती को नष्ट कर देते हैं। जिससे आलू की समस्त फसल अस्त व्यस्त हो जाती है। और आलू भी भूमि में सडने लगता है।

रोक थाम—उपरोक्त उन्नत शील जातियों में अभी तक यह रोग नही लगता है। और यदि लग जाये तो 4-4-50 का बोर्डेक्स मिक्चर 5 किलो प्रति हैक्टर की दर से 100 किलो पानी में घोल कर स्प्रे करने से, यह बीमारी प्राथमिक अवस्था में समाप्त हो जाती है। या 0.2 प्रतिशत जिनेव घोल बुवाई के लगभग 40 दिन बाद 15 दिन के अन्तर से स्प्रे कर देना चाहिये। यदि आकाश में बादल छाये हुये रहे तो छिडकाव एक सप्ताह के अन्तर पर करना चाहिये इस प्रकार जिनेव के 4-5 छिड़काव झुलसा रोग के पूर्ण नियंत्रण को आवश्यक होते हैं।

2. **पिछेता झुलसा**—इस रोग से प्रभावित फसल में पत्तियों व तनों पर बेंगनी रग के धब्बे पड जाते है। अधिक प्रकोप होने पर पूर्ण पौधे झुलस कर नष्ट हो जाते हैं।

इस रोग की रोक थाम भी उपरोक्त रासायनिको से ही हो जाती है। जो अगेती झुलसा में प्रयोग किये गये है।

3 **कौमन स्केब**—यह एक फगस के द्वारा फैलने वाली बीमारी है। इसका प्रभाव प्रथम लता पर पडता है। बाद मे आलुओ पर भी हो जाता है। तथा बीमारी वाले खेत के आलुओ मे चलता ही रहता है। इसकी रोक थाम पूर्व बताये गये आधार पर ही, फारमलडिहाइड के घोल से ही की जाती है।

4. **वर्टीक्यूलम विल्ट**—यह सुकडा की बीमारी भी कही जाती है इसके प्रकोप से पत्तियाँ सुकड जाती है। क्योंकि पत्तियों के शैल नष्ट हो जाते है। इससे भोजन पूर्ण मात्रा मे नही बनता है। फसल पर प्रकोप होने के बाद इसकी रोक थाम कठिन हो जाती है। इसकी रोक थाम को भूमि को ही पहले जीवाणु हीन कर देते हैं। जो कि पूर्ववत् नियम के आधार पर ही फारमल डिहाइड से ही की जाती है।

हानि कारक कीट—आलू की फसल मे आलू भेदक, पत्ती भेदक व माहू नामक कीट अधिक क्षति करते है। जिन की रोक थाम 1 25 लीटर थायो डीन को 1000 लीटर पानी मे घोल कर स्प्रे करने से सभी कीट नष्ट किये जा सकते है। आलू भेदक की रोक थाम को 0·5 प्रतिशत का इलड्रिन पाउडर (चूर्ण) 50 किलो प्रति हैक्टर की दर से डाल कर मिट्टी मे समान रूप से मिला कर नियंत्रण किया जा सकता है।

पाले से बचाव—आलू की फसल को पाले से विशेष क्षति होती है। इससे बचाने को जिस दिन पाला पडने की सम्भावना हो खेत की सिंचाई कर देनी चाहिये। खेत के चारो तरफ धूआ कर देना चाहिए और यदि बाजरा का बबूला या धान की भुस्सी फसल की पतियो पर परत लगा कर कुछ बचाव किया जा सकता है।

खुदाई—शीघ्र उगायी गयी फसल की खुदाई 75-80 दिन बाद बाजार की माग के आधार पर करते रहते है। परन्तु भंडार मे रखने को खुदाई उस समय करनी चाहिये। जबकि लता पीली पड़ कर भूमि पर गिर जाये।

बिक्रय—आलू की फसल का उचित मूल्य प्राप्त करने को बाजार में या मन्डी में ले जा कर बोली के आधार पर बेचना उत्तम है।

उपज—इस प्रकार से उगाये गये आलू की पैदावार सबसे अधिक 750 कुत्तल प्रति हैक्टर उपज एक उत्तर प्रदेश के किसान ने सन् 1972 मे की है। जिसको कृषि पंडित की उपाधि मिली है। परन्तु औसतन उपज 250 से 350 कु० प्रति हैक्टर होती है।

संग्रहण—उत्तर प्रदेश में आलू के संग्रहण को निम्न विधियाँ अपनायी जाती है।

1. खुले ढेर मे
2. बोरियो में।
3. गड्ढों में।
4. टोकरियों में।
5. शीत सग्रहो मे।

उत्तर प्रदेशीय विधि से आलू का सग्रहण—

सबसे पहले रोगी आलू को छॉट लिया जाता है। पूर्वी जिलों मे जहाँ गर्मी शीघ्र आरम्भ हो जाती है। फरवरी मे ही संग्रह कर लेना चाहिये। गर्मी तथा तेज लू से आलू का बचाव करना चाहिये। आलू का गोदाम ठन्डे स्थानों पर बनाया जाता है, जिस गोदाम मे बीज रखा जाता है। वह भूमि से 1.2 मीटर नीचे और 2.4 मीटर ऊपर होता है। गोदामो को साया मे बनाना चाहिये। वायु के आवागमन का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। एकत्रित किये हुये। आलू की 2-3 बार छटाई अवश्य करनी चाहिये। शीत सग्रह मे आलू को 30°-32° फा० पर और 75-80 प्रतिशत सापेक्ष अदिता पर रखते है। वहाँ आलुओं को एक दराज पर 12 इंच तक की गहरायी में फैला दिया जाता है ये दराज 18 इंच की दूरी पर बीच में 6 इंच जगह छोड कर बनाये जाते है। ठन्डे वातावरण से खुले वातावरण में लाने को पहले 12-16 घन्टों तक 60° फा० पर रखते है।

फसलचक्र—मक्का,—आलू—आलू ···· ·····[1 वर्ष]
मक्का—आलू-तम्बाकू—ज्वार—मटर—[2 वर्ष का]
बजरा+अरहर—गन्ना—पेड़ी—हरी खाद—आलू—आलू—तम्बाकू—[4 वर्ष]

REFERENCES

1. Anonymous 1971 Aalu men Urbark Unnat Krishi, IX (9) : 26.
2. Anonymous. 1971 Scientific Cultivation of Potato crop. N. Sc. Bulletin, Seed News Reporter. VII (9 & 10) : 5-6 & 14.
3. Chander, Yashpal 1972 Aalu Ki Khudai. Sheet Sangrahan, Krishi aur Pashupalan. XXIII (9) : 22-23.
4. Chander, Yespal. 1972 Uttam Aalu UgaYen. Kisan Bharati. II (12) : 32-33.
5. Choudhari, B. 1967 Vegetables National Book Trust, India. New-Delhi. : 22-27.

6.	Choudhari, V.	1968	Subjiya National Book Trust India. New-Delhi : 23-26.
7.	Dueby, P.D. & Etal.	1971	Effects of Nitrogen spacing between plants and seeds material on growth tubarization, yield & quality of Potato. The Modern Agriculture Journal. XXXXXVIII. (6) : 448.
8.	Dutta, B.L. & N.B.B.	1969	Crop Production Method for increasing potato crop. Indian farmer's digest. II (6) : 49.
9.	Jhon, M.H.	1961	Vegetable Production. Vegetable growing in India : 232-246;
10.	Joshi, M.D. & D G. R. N S.	1969	Aalu Ki Kheti dwara prasar barhayen. : 28-31.
11.	K, K. K.	1971	Potato for the Plains, Intensive Agriculture. IX (7) :2-9.
12.	Khanna, M.L.	1966	Breeding Potato Varieties tolerent to higher Thermo-perieds. curr. Science XXXV. (6) : 143.
13.	Mahlotra, U.N.	1970	Development of Aetrleval tubcss in Potato including by stem, F 34, the Allahabad Board Farm, XLIV (3). 113.
14.	Nath, Pushkar.	1964	Potato in India, Varieties, ICAR. Publication.
15	Nath, Pushkar. Etal	1971	Optimum fertilizer application to Potato (Solanum tuberosum L). The Indian Journal of Agriculture Science. XXXXI (2).
16.	Purabal, S S. & Aurkeri, H.R.	1972	Bhartiya Jan Kisan. Bharatiya Krishi Anusandhan, New-Delhi.
17.	Raia, J.L.	1970	Aalu Ki bhari Paidawar lena aasan. Unnat Krishi, VIII (8) : 13.
18.	Rastogi, Pandam-Prakash & Etal.	1971	Parvat-Parvat Aalu Ki Upaj, badhane ke liya naya tarika. Kisan Bharti. II (4) : 15-17.
19.	Singh, M. & Sikka, L.C.	1971	The Potato in multiple cropping. Agriculture digest. III (2) : 15-19.
20.	Srivastava, S.S.	1972	Choose the suitable varieties of the Vegetable and their characteristics. Improving Agriculture in India. II (2) : 56-60.
21.	Tiwari, J.	1962	Effect of spacing on growth yield quality of Potato. Journal of Science Researed Banaras. XII (2) : 204-209.

आलू की उन्नतशील जातियाँ

रोहिताश्व कुमार शर्मा
बी० एस० सी० (कृषि)
बी० एड० (कृषि)

प्रस्तावना—

भारत वर्ष मे विभिन्न वैज्ञानिकों ने विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों पर आलू की विभिन्न उन्नतशील जातियों की खोज निकाली है। इन जातियो को हम उनके गुणों और अवगुणो के आधार पर निम्न तीन भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

(अ) प्राचीन हाइब्रीडस—

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित मुख्य उन्नत शील जातियाँ हैं।

1. अप-टू-डेट।
2. कुफरी रैंड।
3 क्रैग्स डैफिएन्स।

(1) **अप-टू-डेट**—यह जाति 1953 मे शिमला से निकाली गई है।

योग्यता—यह जाति पहाडी तथा मैदानी भागों में उच्च पैमाने पर सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। तथा वातावरण की प्रतिकूलता को भी काफी हद तक सहन कर लेती है।

क्षेत्र—यह जाति यू० पी०, मध्य प्रदेश, पजाब तथा महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों के लिये काफी उपयुक्त सिद्ध हुयी है।

कन्द या (ट्यूबर)—इस जाति के कन्द बड़े गोल चिकने सतह वाले चपटी आँखों वाले तथा सफेद गूदे वाले होते हैं।

लाभ—(1) यह जाति शीघ्र परिपक्व हो जाती है।
(2) इस जाति का वल्किग रेट अधिक होता है। अतः आलू शीघ्र बढ़ते हैं।

हानि—(1) यह जाति भारी भूमियों में नहीं उगाई जा सकती है।
(2) इस जाति का डी-जैनेरेशन रेट अधिक होता है। अतः इस जाति के वास्तविक गुण शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

(2) **कुफरी रैंड**—आलू की जाति सी० पी० आर० आई० शिमला से 1957 मे निकाली गई।

योग्यता—यह जाति यू० पी०, बिहार और पश्चिमी बंगाल के क्षेत्रो में उत्तम उपज देती है।

कन्द या ट्यूबर—इसके कन्द मध्यम आकार, चिकनी सतह, त्वचा का रंग लाल व गूदा का रंग पीला होता है। और मध्यम गहरी आंखों वाले होते है।

लाभ.—(1) यह जाति नाईट्रोजन उर्वरक के लिये अधिक अनुकूल है।
(2) इस जाति के कन्दो को सामान्य दशा में भी अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

हानि.—(1) इस जाति का डी. जैनेरेशन रेट अधिक होता है। इस कारण इस जाति के बीज के बीज को प्रत्येक वर्ष 'सीड-स्टाक' के रूप मे प्रयोग नही कर सकते है।
2) इस जाति का बल्किग रेट कम होने के कारण अगली फसल के लिये प्रयोग नहीं कर सकते है।
(3) यह जाति पाला पडने वाले क्षेत्रो में नहीं उगाई जा सकती है।

(3) **कैंग्स डेफिरान्स**—

क्षेत्र—यह जाति हिमाचल प्रदेश और पंजाब के पहाड़ी भागों में उगाने के लिये उपयुक्त है। परन्तु इसे मैदानी भागो मे भी उगाया जा सकता है।

कन्द—बडे चिकने व लम्बी शक्ल, सफेद त्वचा व सफेद गूद्दे वाले होते है।

लाभ—(1) यह जाति कम समय मे परिपक्व हो जाती है। वर्ष में दो फसल ली जा सकती हैं।
(2) इसमे बल्किग रेट अधिक होने के कारण शीघ्र बोते है।
(3) पोटाश वाले उर्वरको के लिये अधिक उपयुक्त है।

हानि—(1) इस जाति का डी जैनेरेशन रैट अधिक होता है। इसलिये सीड स्टौक प्रति वर्ष बदलना पड़ता है।
(2) इस जाति पर वायरस बीमारी तथा लीफ रोल का अधिक प्रकोप होता है।

(ब) **नवीन हाइब्रीड्स**—

इनके अन्र्तगत निम्नलिखित मुख्य जातियाँ है।

(1) कुफरी कुबेरः—यह जाति सी० पी० आर० आई० शिमला से 1957 में निकाली गई है। यह उत्तर प्रदेश तथा बिहार के मैदानी क्षेत्रों के लिये अगेती तथा मुख्य फसल के लिये बहुत उपयुक्त है।

योग्यता—यह जाति उत्तर-प्रदेश, बिहार, पंजाब, तथा महाराष्ट्र के पहाड़ी तथा मैदानी क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है। यह खरीफ तथा रबी दोनों फसलो मे उगाई जा सकती है।

कंद या ट्यूबर—इस जाति के ट्यूबर मध्यम आकार सतह चिकनी, गोल, चपठीशक्ल और गूदा तथा त्वचा का रंग सफेद होता है।

लाभ—(1) यह जाति नाईट्रोजन तथा पोटास वाले उर्वरको की अधिक मात्रा के लिये उपयुक्त है।

(2) इस जाति के पौधों की पत्तियों पर एफिडस का प्रकोप बहुत कम होता है। इसलिये इसके बीज को मैदानों में सीड स्टाक के लिये रख सकते है।

(3) इस जाति पर लीफ-रौल व वायरस का कठोर प्रभाव कभी नही होता है।

(2) कुफरी किसान—(पी० एस० 454)—

यह जाति 1953 मे सी. पी आर आई. शिमला से निकाली गई। इस जाति के कन्द बड़े होने के कारण ज्यादा उपज देती है। यह जाति पछेती तथा लम्बे समय में परिपक्व होने वाली है।

लाभः—लोक प्रिय होने के कारण यह जाति दिल्ली, मध्य प्रदेश, और उत्तर प्रदेश में मुख्यतयाः उगायी जाती है।

कन्द—कन्द बड़े, गोल, चिकने तथा गुलाबी, गहरी आखे तथा सफेद त्वचा वाले होते है।

लाभः—(1) नाईट्रोजन की उचित मात्रा के लिये अनुकूल है।

(2) डी. जैनेरेशन रेट बहुत कम होता है।

(3) इसके बीज को नम क्षेत्रों में भी शीत ग्रहो में सुरक्षित रखा जा सकता है।

हानिः—(1) अधिक उर्वरक देने से कन्दों में दरार पड जाती है।

(2) इस जाति का परिपक्व होने का समय अधिक है। इसलिये उन क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है जहाँ पर केवल एक ही फसल ली जाती है।

(3) लीफ रोल, वायरस का प्रकोप अधिक होता है।

(4) आलू मे गहरी आंखे तथा अनिश्चित आकार का एक विशेष अवगुण है।

(3) कुफरी-कुन्दन—

यह जाति अप-टू-डेट को स्थानातरित करके पहाडी क्षेत्रों के लिये 1953 में सी. पी. आर. आई. शिमला से निकाली गई है।

योग्यता—आलू की यह जाति यू. पी., पजाब तथा हिमाचल प्रदेश की नम तथा भारी भूमियों के लिये उपयुक्त है।

कन्द—इसके कन्द मध्यम आकार, चिकनी सतह, गोल शक्ल, सफेद त्वचा उठी हुयी आंखों वाले होते हैं।

लाभ—(1) इस जाति को अपने देश में आसानी से सग्रह किया जा सकता है। तथा डी. जैनरेशन की गति धीमी होती है।

(2) मोजैक बीमारी का प्रकोप कम होता है।

(3) आलू की यह जाति पहाडी क्षेत्रों में आसानी पूर्वक उगाई जा सकती है।

(4) मध्यम श्रेणी में उर्वरकों की आवश्यकता है।

(4) पी० एस० (555)—यह अधिक उपज देने वाली तथा देर से बोई जाने वाली जाति है।

योग्यता—यू० पी० के मेरठ तथा बुलन्दशहर जिलो के लिए उपयुक्त है। यू० पी० के अन्य पश्चिमी जिलो में भी उगाई जा सकती है।

कन्द—इसके कन्द गोल, तथा मध्यम व गहरी आखों वाले होते हैं।

लाभ— (1) यह जाति मैदानी क्षेत्रो के ठण्डे मौसम मे थोड़े समय मे ही तैयार हो जाती है।

हानियाँ—(1) इस जाति का फुलवा तथा कुफरी किसान की अपेक्षा सुप्तावस्था का समय कम होता है। इस कारण खोदने के तुरन्त बाद शीत ग्रहों मे रखना पडता है।

(2) शीत ग्रहों मे कम तापक्रम पर सुरक्षित नही रखा जा सकता है।

(3) यह जाति मोजैक तथा वायरस के लिये अवरोधक है।

(स) अत्यन्त नवीन हाइब्रीडस—

(1) **कुफरी सिन्धुरी (सी 140)**—यह जाति दार्जिलिंग रैड राउन्ड के डी० जैनरेशन अवगुण को दूर करके हाल मे ही सी० पी० आर०, आई०, शिमला से निकाली है।

योग्यता—यह जाति पहाडी तथा मैदानी दोनो क्षेत्रो में उपज देती है।

कन्द—इस जाति के कन्द लाल, गोल, तथा आकृति मे समान होते हैं।

लाभ—(1) यह जाति 90-120 दिन में पक कर तैयार हो जाती है।

(2) विशेषतः नाइट्रोजन के लिये अनुकूल है। इसकी उपज 300-350 कु० प्रति हैक्टर है।

(3) कुफरी रैड की अपेक्षा संग्रह करने के गुण अच्छे हैं।

(4) इस पर पाले का असर बहुत कम होता है।

(5) इस जाति का डी० जैनेरेशन रेट बहुत कम होता है।

(6) कुफरी रैड की अपेक्षा अरली ब्लाइट को सहन करने की क्षमता अधिक होती है।

हानि—इस जाति को ऐसे क्षेत्रों में नही उगाया जा सकता जहाँ पर गर्मी का मौसम लम्बा होता है।

(2) **कुफरी चमत्कार** (ओ० एन० 1202)—यह जाति शिमला से निकाली गई है। यह 100-120 दिन में पक जाती है।

योग्यता—यह जाति यू० पी०, बिहार, तथा मध्यप्रदेश, हरियाणा और पजाब के लिये अच्छी सिद्ध हुयी है।

कन्द—इस जाति के कन्द मध्यम आकार के, चिकनी सतह, गोल आकृति, सफेद त्वचा, पीले गूद्दे वाले होते हैं।

लाभ—(1) यह फुलवा से 20-25 दिन पहले पक जाती है। एक साल में कई फसल ली जा सकती है।

(2) बल्किग रेट अधिक होता है।

(3) नाइट्रोजन का प्रभाव अधिक तथा इसकी उपज 300-350 कु० प्रति हैक्टर होती है।

(4) इस जाति का डी० जैनेरेशन रेट कम होता है।
(5) देश के शीत ग्रहो में सुविधापूर्वक सग्रह किया जा सकता है।
(6) मोजैक बिमारी का कम प्रकोप होता है
(7) वायरस का प्रकोप बिल्कुल नहीं होता है।

(3) **कुफरी चन्द्रमुखी** (रा० 2708)—यह जाति सी० पी० आर० आई०, शिमला से निकाली गयी है। यह जाति 60 दिन के बाद सामान्य आकार के कन्दो से इसकी उपज 150 कु० प्रति हैक्टर है।

योग्यता—यह जाति उत्तर-प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमांचल प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र और पजाब के पहाड़ी और मैदानी क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है।

कन्द—कन्द अधिक चिकने, गोल तथा चपटी शक्ल के होते है।

लाभ—(1) यह मैदानी क्षेत्रों मे 90 दिन मे परिपक्व हो जाती है।
(2) इस बल्किग रेट भी अधिक होता है।
(3) नाइट्रोजन तथा पोटास वाले उर्वरकों के लिये अनुकूल है। इसकी उपज 250-350 कु० प्रति हैक्टर होती है।
(4) सग्रह आसानी से किया जा सकता है।
(5) डी० जैनरेशन रैट बहुत कम होता है।
(6) इस जाति पर ड्राई रौट तथा लीफ रौल बीमारी का प्रकोप नही होता।

(4) **कुफरी अलकार**—यह जाति भी सी० पी० आर० आई०, शिमला से निकाली गई है। य जाति 60 दिन बाद 150 कु० प्रति हैक्टर उपज देती है। अतः यह जाति अति शीघ्र खेती करने के लिये विकसित की गयी है।

योग्यता—फुलवा की तरह यह जाति भी यू० पी०, पंजाब, बिहार के मैदानी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

कन्द—कन्द गोल, चपटी शक्ल, सफेद त्वचा, पीले गूदे वाले होते है।

लाभ—(1) यह जाति 90 दिन में पूर्ण परिपक्व हो जाती है। और 350 कु० प्रति हैक्टर उपज देती है।
(2) इसकी कई फसले एक ही वर्ष मे ली जा सकती हैं।
(3) इसका बल्किग रेट अधिक होता है। अत. आलू शीघ्र बढता है।
(4) डी० जैनेरेशन रेट कम होता है।
(5) इस जाति के कन्दों को कई वर्षों तक संग्रहालयों में सुरक्षित रखा जा सकता है।

(5) **कुफरी शीतमान**—यह जाति पाला पडने वाले क्षेत्रों के लिये सी० पी० आर० आई०, शिमला से निकाली गई है।

योग्यता—आलू की यह जाति राजस्थान पजाब, व हरियाणा के पाला पडने वाले क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है। यह जाति भारत के विभिन्न भागों मे सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

कन्द—इस जाति के कन्द मध्यम से बड़े आकार वाले तथा लम्बे होते है। कन्द चिकने व सफेद होते हैं।

लाभ—(1) पाला पड़ने वाले क्षेत्रो में इसकी पत्तियो पर पाले का प्रभाव बहुत कम होता है।
(2) जहाँ पर तापक्रम कम हो वहाँ इस जाति को लगातार कई बार उगाया जा सकता है।
(3) यह 110 दिन मे पक कर तैयार हो जाती है।
(4) इसकी औसत उपज 250-300 कु० प्रति हैक्टर होती है।

(6) **कुफरी नीलमणि**—नीलगिरि के पहाड़ियों के लिये उपयुक्त है। झुलसा रोग प्रतिरोधक है। तीन फसलें ली जा सकती है। उपज 300-350 कु० प्रति हैक्टर।

(7) **कुफरी ज्योति**—आलू सफेद अन्डाकार होते है। झुलसा रोग प्रतिरोधक भी है। वार्ट तथा सर्कोस्पोरा रोग सहनशील भी है। 4-4½ माह में पक कर तैयार हो जाती।

(8) **कुफरी जीवन**—यह देर से तैयार होने वाली फसल है झुलसा रोग का भय नहीं रहता है। हिमाचल प्रदेश के लिये उत्तम है।

(9) **कुफरी नवीन**—आलू सफेद, अन्डाकार होते है। पछेती तथा अगेती झुलसा, वार्ट तथा सर्कोस्पोरा रोग को सहने की शक्ति होती है।

(10) **सी० 3804**—यह 110-120 दिन मे परिपक्व हो जाती है। इस किस्म के आलू सफेद तथा आखे लाल होती है। सड़न प्रतिरोधक गुण के कारण अधिक लोकप्रिय है। तना सख्त होता है। उपज 300-350 कु० प्रति हेक्टर होती है।

उन्नतशील आलू की जातियों का बीज निम्न स्थानों से प्राप्त कर सकते है :—

(1) सचिव हिमाचल प्रदेश को ओपरेटिव डेवलपमेन्ट एण्ड मार्केटिंग फैडरेशन, शिमला।
(2) आलू विकास अधिकारी, कृषि विभाग शिमला।
(3) डिप्टी डायरेक्टर (आलू) कृषि विभाग लखनऊ।
(4) डिप्टी डायरेक्टर आफ एग्रीकलचर, कृषि विभाग, चन्डीगढ, (पजाब)।

REFERENCE

1. Chaudhary, B. 1967 Vegetables. National book trust India : 25-26.
2. Chaudhary, V. 1970 Vegetables. National book trust India : 28-29.
3. Chaudhary, V. 1968 Subjian Nantional book trust India, New Delhi : 25-26.
4. Chauhan, D.V.S. 1968 Vegetables production in India. Ram Prasad and Sons Agra: 241-42
5. Chender, Y. 1972 Aalu Ki jattian avum sheet Sungrah. Krishi Our Pasu-palan. IX (1) : 5-6.

6. D N.S. & K.S.N. 1962 Vegetables growing in Punjab, Punjab Agricultural University, Ludhiana : 100

7. Dhawan, C. L. & S. S. K. 1965 A Hand book of crop. Krishana Brother Book Seller and Publishers, hall bazar, Amritsar : 29.

8. K. K K. 1971 Potatoes for the plains. Intensive Agriculture. IX (7) : 2-9.

9. Purawal, S. S. & Aurkeri, H. R. 1972 Bhartiya Gyan Kosh Bhartiya Krishi Anusandhan, New Delhi : 235.

10. Pushkar Nath. 1964 Section three Commercial Varieties of Potato in India. Indian Council of Agriculture Research, New Delhi : 109-190.

11. R. S. & T. P. 1971 Aalu ka roag mukt beej kahan aur kaise. Krishi aur Pasu palan. XXIII (3) : 9-13

12. Ragahava, K.C.L. atal 1965 Sachive, Krishi Vigyan. Bharat Bharti Prakshan Westren Kutchery Road, Meerut : 391-392.

13. S, B. S., atal 1971 Prati acre banvey quintal Aalu. Unnal Krishi. IX (1) : 56.

14. Sexena, M. S. & H. R. Y. 1971 Aalu ke rogon kee roktham jaruree. Unnat Krishi. IX (1) : 18.

15. Sharma, S. P. 1965 Hand book of agriculture Indian Council of agriculture research, New Delhi : 404

16. Singh, R.P. 1967 Hand book of Agronomy, Kitabistan, Allahabad : 235.

17. Srivastava, S. S. 1972 Choosing Suitable Varieties of Vegetables and their Characteristics. Improving Agriculture Education in India. II (2) : 56-60.

18. Yadava, A. S. 1965 Agronomy. Kailash Pustak Sadan Bhopal, Gwalior : 57-60.

गोभी-वर्गीय सब्जियों की उन्नत कृषि क्रियायें

सत्यपाल सिंह
बी० एड० (कृषि)

कोल क्रोप्स वर्गीय फसलो की उत्पत्ति कोल वर्ट नामक जगली गोभी से हुई। इसी के आधार पर इनका नाम कोल क्रोप्स पड़ा। इस वर्ग की सभी फसले जीनस ब्रेसिका से सम्बंधित हैं। इस वर्ग की सभी फसलें ठंडें मौसम में उगायी जाती है तथा इन फसलों में कृषि क्रियायें व कीडे लगभग समान है। इस वर्ग मे भारत में उगायी जाने वाली फसलें निम्न है —

1. फूल गोभी (कोली फ्लावर)
2. बन्द या पात गोभी (कैंवेज)
3. गांठ गोभी (नोल खोल)
4 ब्रोकोली
5. ब्रूसल स्प्राउट
6. चाइनीज कैबेज

फूल गोभी (कोलीफ्लावर)

वानस्पतिक विवरण:—

फूल गोभी का वनस्पतिक नाम ब्रेसिका ओलिरेशिया है तथा जाति ब्यूटायरेटिस है। इसका फूल खाने के काम में लिया जाता है।

जलवायु:—फूल गोभी की अच्छी उपज ठंडे व आद्र जलवायु में ही ली जा सकती है। इस में पाला सहन करने की शक्ति भी कुछ सीमा तक होती है, परन्तु अधिक गर्मी के कारण से कुछ कमियाँ आ जाती है। इसके लिये 70 से 75° फा तापक्रम उपयुक्त रहता है। शीघ्र बोयी जाने वाली जातियाँ लम्बे दिन व अधिक तापक्रम में अधिक पैदावार देती है।

भूमि व उसकी तैयारी:—फूल गोभी सभी प्रकार की भूमियो में उगायी जा सकती है परन्तु दोमट भूमि जिसमें जल निकास अच्छा हो अधिक उपयुक्त रहती है। इसके अलावा गहरी व जीवाश युक्त भूमि में अच्छी पैदावार ली जा सकती है। फूल गोभी 6 से 7 पी. एच वाली मृदाओं में सफलता पूर्वक उगायी जा सकतो है।

फूल गोभी के लिये भूमि की तैयारी करने के लिये पहली या दूसरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिये। इसके बाद 5-6 जुताई देशी हल से या कल्टीवेटर से करके साथ-साथ पाटा भी चलाना चाहिये। पाटा चलाने से मिट्टी भुर भुरी व समतल हो जायेगी। खेत की तैयारी करते समय ही जीवाश खाद यदि उपलब्ध है तो मिला देने चाहिये।

जातियाँ —फूल गोभी की जातियों को बोने के आधार पर विभिन्न भागों में बाटा गया है। उसी

के अनुसार बोने पर सफलता मिल पाती है। यदि शीघ्र बोयी जाने वाली जाति को देर से बोयेतो कम उपज मिल पाती है। बोने के आधार पर निम्न मुख्य जातियाँ है.—

1. **शीघ्र बोयी जाने वाली जातियाँ.**—ये 15 मई से 30 जून तक बोयी जाती है। तथा 15 सितम्बर से 15 नवम्बर तक फूल देती है। इस वर्ग की मुख्य जातियां निम्न है। क्वारी, अग्ली पटना, पूसा कार्तिकी, अर्ली मार्केट व कल्याणपुर अर्ली।

2. **मध्यम जातियाँ**—ये जातियाँ जौलाई, अगस्त में बोयी जाती है तथा 15 नवम्बर से 15 जनवरी तक फूल देती हैं। इस वर्ग की मुख्य जातियाँ निम्न है:—अगहनी, जाइन्ट स्नोबाल, प्राइड आफ इण्डिया, अर्ली स्नोबाल।

3. **देर से बोयी जाने वाली जातियाँ**—ये जातियाँ 15 सितम्बर से 30 अक्टूबर तक बोयी जाती है तथा मध्य नवम्बर से मध्य जनवरी तक फूल देती है। इस वर्ग की मुख्य जातियाँ इस प्रकार हैं:—माघी पटना, स्नोबल-16 चायनापर्ल, सिलवर किंग, अमेरिकन प्रिन्स, उन्नत जापानी।

बुवाई:—बुवाई में मुख्य रूप से बीज, बीज की मात्रा, बुवाई का समय व बुवाई का ढग फूल गोभी में इस प्रकार से हैं—

बीज:—फूल गोभी का बीज छोटा होता है जिसमे 50 ग्राम भार में 5005 से 10000 तक बीज होते है। इसमे बीज भी दो प्रकार के होते हैं—

1. विदेशो से मगाया गया जिसकी फसल देर में तैयार होती है।
2. देश में तैयार किया गया जिसकी फसल जल्दी तैयार होती है।

समय व बीज की मात्रा:—

1. मई जून	600 से 750 ग्राम बीज प्रति हेक्टर
2. जौलाई अगस्त	400 से 500 ग्राम बीज प्रति हेक्टर
3. सितम्बर अक्टुबर	375 से 400 ग्राम बीज प्रति हेक्टर

बुवाई का ढंग—फूल गोभी का बीज छोटा व पौधा कोमल होने के कारण उसे नरसरी में तैयार कर खेत में लगाया जाता है।

नरसरी में बुवाई—नरसरी के लिये स्थान का चुनाव खुले स्थान व पानी के पास करना चाहिये। स्थान का चुनावकरके उसको 5-6 जुताई करके तैयार कर लिया जाता है। तैयार करते समय जीवाश खाद 50 कि. ग्रा. प्रति क्यारी के हिसाब से मिला लिया जाता है। एक क्यारी सतह से 12-13 से. मी. ऊँची 3 मीटर लम्बी व 1½ मीटर चौड़ी बना ली जाती है। इस प्रकार की 20 से 24 क्यारियाँ एक हेक्टर के लिये पर्याप्त होती है या 100 वर्ग मी. क्षेत्र की पौध एक हेक्टर में लगाने के लिये काफी है।

इस तरह से तैयार करने के बाद 20-25 ग्राम बीज प्रति क्यारी के हिसाब से छिटक दिया जाता है। बोने के बाद 3 से. मी. मोटी तह से (गोबर की खाद) ढक दिया जाता है। इस बीज को 50 ग्राम प्रति एक किलो बीज की दर से एग्रोसन जी. एन. से उपचारित कर लेते हैं।

नरसरी मे बीज बोने के बाद हल्की सिचाई कर दी जाती है। पौधे कोमल होने के कारण अधिक देख भाल की आवश्यकता होती है। इसके लिये वर्षा व धूप से बचाने के लिये छप्पर बाध देना चाहिये। समय समय पर पानी देना चाहिये व घास फूस उखाड़ते रहना चाहिये।

नरसरी में पौधे 3-4 सप्ताह के हो जाने के बाद उन्हे तैयार खेत में 8 से मी. की दूरी पर लगा दिया जाता है। इससे फूल गोभी की उपज मे वृद्धि होती है। इस अवस्था मे नरसरी जैसी ही देख भाल करनी होती है।

पौधों की रोपाई—जब पौधे 5-6 सप्ताह के हो जायें उन्हे खेत में जो पहले से तैयार किया गया है, लगा देना चाहिये। अधिक आयु के पौधे लगाने से उपज में कमी आ जाती है। तैयार पौधो को सावधानी के साथ निकाल कर लाना चाहिये।

जहा तक सम्भव हो सके पौधे सायकाल के समय या बादल छाये रहने के समय लगाये जाने चाहिये। इससे पौधो को मरने का कम अवसर रहता हे। शीघ्र बोयी जाने वाली फसल में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 से 90 से. मी तथा पौधे से पौधे की दूरी 45 से 60 से. मी रखी जाती है। देर से बोयी जाने वाली फसल मे पक्ति से पंक्ति की दूरी 60-70 से. मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 40-50 से. मी रखी जाती है। पौधे लगाने के तुरन्त बाद हल्की सिचाई कर देनी चाहिये।

खाद—खाद को फसल उत्पादन के लिये आवश्यक कारक माना जाता है। फूल गोभी भी एक अधिक खाद चाहने वाली फसल है। इसके लिये तत्वो की मात्रा प्रति हेक्टर, खाद की प्रकार व समय का जानना आवश्यक है।

तत्वों की मात्रा—यह कई बातों पर निर्भर करती है, जैसे मृदा, जाति व क्षेत्र। एक प्रयोग के अनुसार फूल गोभी की फसल के 140 कि. ग्रा. नाइट्रोजन, 18 कि. ग्रा. फासफोरस तथा 60 कि ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टर उपयुक्त है। क्षारीय या अम्लीय मृदाओ मे कभी-कभी बौरोन व मोलीबीडेनम 10-15 कि ग्रा. व 1-1½ कि ग्राम क्रमश कमी दिखने पर डालना लाभदायक रहता हैं। बोरोन की कमी से फूल पीले पड़ जाते है। इसे ब्राउन राट या रेड राट कहते हैं। ए० के० दत्त (1960) ने इसके लिये 0.3 से 0.4% बोरोन के घोल को दो दफा छिडकने को अच्छा बताया है। पहला छिडकाव पौध लगाने के दो सप्ताह पश्चात् तथा दूसरा छिडकाव फूल बनने के 2 सप्ताह पहले।

खाद की प्रकार व समय—उपरोक्त तत्वों की पूर्ति करने के लिये किन्ही भी खादो का प्रयोग किया जा सकता है। जिस प्रकार के खाद वहां पर उपलब्ध हों उसी प्रकार के खादो का प्रयोग किया जा सकता है। यावलकर ने उपरोक्त तत्वों की पूर्ति के लिये 200 कुन्टल गोबर की खाद, 200 कि. ग्रा. अमोनियम सल्फेट, 50 कि. ग्राम सुपर फासफेट तथा 18 कि. ग्राम पोटेशियम सल्फेट को लिया है।

खादों को देने का समय अलग प्रकार से है। जैसे जीवाश खादों का प्रयोग खेत की तैयारी के समय, फोसफेटीक व पोटासिक खाद बुबाई के समय व नाइट्रोजन युक्त खाद आधी बुवाई के समय तथा आधी बढवार के समय देनी उपयुक्त रहती है।

सिंचाई—समयानुसार करनी चाहिये। बरसात में अच्छी वर्षा होने पर कम सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। गर्मी से बचाने के लिये सिचाई अगेती फसल मे जल्दी २ करनी पड़ती है। इस फसल के लिये 5-6 दिन के अन्तर पर 7-8 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। पछेती फसल में 10-15 दिन के अन्तर पर सिचाई की जाती है कुल 4-5 सिंचाईयों कि आवश्यकता होती है।

निकाई गुडाई—प्रत्येक सिंचाई के बाद खरपत वार निकालने आवश्यक है। इसके अलावा 1-2 बार हल्की गुडाई भी करनी चाहिये। वर्षा के दिनो पानी से बचाने के लिये पौधों की जडों के पास मिट्टी भी चढा दी जाती है।

विपरीत मौसम दशाओं के प्रभाव.—कुछ जलवायु के तत्वो जैसे पानी, ताप आदि के विपरीत होने से पौधों पर अधिक प्रभाव पडेगा जिसके कारण उनमें कुछ अनियमितता आ जाती है जैसे—

अपरिपक्क फूल बनाना या बटनिंग :—इसमें फूल बटन के आकार के हो जाते है तथा पौधे छोटे ही रह जाते है। बटनिग के निम्नलिखित कारण हो सकते है।

1. पौध क्षेत्र की मिट्टी कम उपजाऊ हो।
2. पौध को अधिक समय तक पौध घर में रहने देना।
3 नाइट्रोजन की कमी।
4. अपर्याप्त नमी।
5. पुराने पौधे अर्थात् 6-7 सप्ताह बडे पौधों की रोपाई करना।
6. फूल बनने के समय गर्म व शुष्क मौसम हो।
7. कृषि क्रियायो में कमी जैसे खरपतवार व कीट नियंत्रण।

फूलों मे सफेदी लाना (ब्लांचिग):—सूर्य की रोशनी, ठन्डे या गर्म मौसम से फूल पीले रंग का बेस्वाद हो जाता है इसे ब्लांचिग कहते हैं। फूल का रंग सफेद हो इसके लिये फूल के चारों तरफ की पत्तियों को इकट्ठा करके ऊपर से बाँध देना चाहिये जिससे कि फूल ढक जाय। ब्लांचिग में कितना समय दिया जाय यह मौसम पर निर्भर करता है।

गर्म मौसम में—2-3 दिन
ठन्डे मौसम में—8-10 दिन

ब्राऊन रोट व विप्हटेल.—यह बोरोन व मोलीबीडेनम की कमी के कारण होता है जिसमें पत्तियों का लाल पडना व किनारो का विकास नहीं हो पाता।

कीड़े—फूल गोभी में मुख्य निम्नलिखित कीडे लगते है—

1. (**माहू एफीड**): यह छोटे, रंग के हरे कीडे होते हैं जो पत्तियो का रस चूसते हैं। इनकी रोक थाम के लिये 03 प्रतिशत डाइ जिनोनित या मैलाथीन का छिड़काव करना चाहिए।

2. **कैबज मेगट** . यह कीडा पौधों की जडों को नुकसान पहुँचाता है। इसकी रोक थाम के लिये कलोमल या एल्ड्रीन या डाइएल्ड्रीन का छिड़काव या बुरकाव करना चाहिये।

3 **ग्रीन कैबज वर्ग व कैबज लूपर** :— यह गोभी के फूल को खाता है। इसकी रोकथाम के लिये डी. डी टी या मैलाथीमान या ऐन्ड्रेक्स का छिड़काव करना चाहिये।

बीमारियाँ.—गोभी वर्ग की कुछ मुख्य बीमारिया निम्न है.—

1. **डेमपिंग आफ**.—यह बीमारी नरसरी या अगेती गोभी में लगती है। इसके कारण पौधे सड जाते हैं। इसकी रोक थाम के लिये फोरमलडीहाइड से नरसरी को तथा एग्रोसन जी. एन या सेरेसन चूर्ण से बीज को उपचारित किया जाता है।

2. **ब्लेक रोट**:—पौधे की पत्ती शिरा काली व मोटी दिखाई पडती है। इसके कारण से पौधे मर जाते है। रोक थाम के लिये 50°C पर गर्म पानी से बीज उपचारित करना चाहिए।

3 **क्लब रूट**.—पौधो की जडें काली व मोटी हो जाती है। इसकी रोकथाम में सरसों को फसल चक्र में नही लेनी चाहिये।

बीज उत्पादन:—बीज उत्पादन के लिये अच्छे २ फूल चुन लिये जाते है। इनको उखाड कर पहले से तैयार किये गये गड्डो मे लगाया जाता है। गढ्ढो को तैयार करने के लिये उनको अच्छी प्रकार खोदकर खाद मिला लेना चाहिये। पौधों को उखाडते समय जड़ो को कम से कम क्षति होनी चाहिये। गढढे 1 × 1 मीटर की दूरी पर होने चाहिये। कुछ समय बाद फूलों मे शाखायें निकलती हैं उनमें से 3–4 को छोड़कर बाकी को काट दिया जाय। इन शाखाओं पर फलियाँ लगती है जिन्हें पकने पर तोड कर बीज अलग कर लिया जाता है। इस बीज को सख्त डाट वाली शीशीयों मे रख दिया जाता है।

कटाई—लगभग 3½ मास में फसल तैयार हो जाती है। फूल बाजार की माँग के अनुसार पूर्ण विकसित होने पर गडासे की सहायता से काट लिये जाते है।

उपज:—अगेती व पछेती में मुख्य फसल की अपेक्षा कम उपज मिलती है वैसे फूल गोभी की औसत उपज 200 कुन्टल तक होती है।

पोषक मूल्य—इसमें पोषक तत्त्वों की मात्रा निम्न प्रकार होती है।

जल 91·7 प्रतिशत, प्रोटीन 2 4 प्रतिशत, शर्करा 4 9 प्रतिशत, इनके अलावा मैगनिशयम, कैलशियम, पोटाश, लोहा, फासफोरस, विटामिन ए. बी सी. पाये जाते हैं।

बन्द या पात गोभी (कैबेज)

बनस्पति विवरण:—बन्द गोभी का बनस्पतिक नाम ब्रेसिका ओलिरेशिया तथा जाति केपिटाटालिन है। इसका खाया जाने वाला भाग पत्तिया है।

जलवायु:—फूल गोभी के समान ही आवश्यकता होती है। परन्तु पात गोभी के लिये ओसत तापक्रम 60 से 70° का उपयुक्त रहता है।

भूमि व उसकी तैयारी.—भूमि व उसकी तैयारी फूल गोभी के समान ही होती है। परन्तु इसको 5·5 से 6:5 पी एच. वाली भूमियों में आसानी से पैदा किया जा सकता है।

जातियां:—पात गोभी की जातियों को विभिन्न आधार पर वर्गीकृत किया गया है जैसे बन्द के आधार व बौने के आधार पर। बौने के आधार पर पात गोभी की जातियों को विभिन्न वर्गों में रखा गया है। जैसे:—

1. शीघ्र बोयी जाने वाली:— प्राइड आफ इंडिया, गोल्डन एकर, अर्लीडयूरमहैड व कोपन हैगन मार्केट।

2. मध्यम.—जर्सी तथा वेकफिल्ड।

3. देर से बोयी जाने वाली जाति:—ड्रमहेड लेट, डेनिश बाल हेड व ग्लोरी आफ इन्क्वीजीन।

बुवाई:—बुवाई में मुख्य रूप से बीज, मात्रा व बुवाई का समय इस प्रकार से है—

बीज.—फूल गोभी की तरह इसका बीज भी छोटा होता है तथा विदेशो से भी मंगाया जाता है।

समय व मात्रा·—बोने के समय अनुसार बीज की मात्रा

1. जौलाई अगस्त —500 ग्राम प्रति हैक्टर।

2. सितम्बर —450 ग्राम बीज प्रति हेक्टर।

3. अक्टूबर —375 ग्राम बीज प्रति हेक्टर।

बुवाई 'का ढंग.—फूल गोभी की तरह नरसरी में पौधे तैयार करके खेत में लगाये जाते है।

खाद·—फूल गोभी की तरह ही पात गोभी भी अधिक खाद चाहने वाली फसल है। इसके लिये तत्त्वों की मात्रा, खाद व समय इस प्रकार है:—

खाद्य तत्त्वों की मात्रा·—एक प्रयोग के अनुसार पात गोभी को 100 कि. ग्राम नाइट्रोजन, 25 कि. ग्राम फासफोरस तथा 100 कि. ग्राम पोटाश की मात्रा उपयुक्त रहती है। इनके अलावा दूसरे प्रयोग में 'इवाल कर' ने 1962 मे इस मात्रा को उपयुक्त बताया।

आठ गाड़ी गोबर की खाद, 120 पोंड नाइट्रोजन (600 पौंड अमोनियम सल्फेट) 40 पोड फासफोरस (250 पोंड सुपर फासफेट) व 40 पोंड पोटाश (68 पोंड म्यूरेट आफ पोटाश) प्रति एकड़ देना चाहिये।

खाद व समय—फूल गोभी के अनुसार ही दिया जाता है।

सिंचाई व निकाई गुडाई—फूल गोभी के अनुसार करनी चाहिये।

कीड़े व बीमारियाँ—सभी कोल क्रोप्स में लगभग समान कीड़े व बिमारियाँ लगते हैं। इनका वर्णन फूल गोभी में किया जा चुका है।

कटाई—पूर्ण विकसित व कडे फूलों की कटाई करनी चाहिये। इस समय अधिक नमीं होने से बन्द फट जाते हैं अतः भारी सिंचाई नही करनी चाहिये। बाकी क्रियायें फूल गोभी की तरह ही की जाती है।

उपज—एक हेक्टर मे 12500 से 15000 गोभियाँ निकल आती हैं। अगेती फसल की उपज कम होती है। जबकि इसकी औसत उपज 250 कुन्तल प्रति हेक्टर होती है।

विपरीत मोसम दशाओं का प्रभाव—कभी 2 पात गोभी मे बन्द बनने से पूर्व ही पुष्प शाखा बन जाती है या पत्ते छितरा कर बन्द नहीं बन पाते ऐसा निम्न कारणों से होता है।

(1) समय से पूर्व बोने पर।
(2) तापमान में अत्याधिक उतार व चढ़ाव होने से।
(3) कमजोर बीज से उगायी गयी फसल मे।
(4) पर्याप्त मात्रा में नाईट्रोजन न मिलने से।

बीज बनाना—सभी क्रियायें फूल गोभी की तरह की जाती है परन्तु इसमें बन्दो की शीर्ष कली बचा कर काट दिया जाता है। दराती की सहायता से दो तीन तरफ से काटा जाता है।

पौषक मूल्य—पात गोभी में पोषक तत्वों की मात्रा निम्न प्रकार से होती से होती है। जल 92 प्रतिशत, प्रोटीन 1 8 प्रतिशत तथा शर्करा 5 प्रतिशत। इनके अलावा सोडीयम, पोटाश, कैल्सियम, मैगनिशयम व विटामिन ए० बी० सी० पाये जाते है।

गांठ गोभी (नोल खोल)

बनस्पतिक विवरण—गांठ गोभी का बनस्पतिक नाम ब्रेसिका कोलोरापा तथा जाति गोंगी लोडस है। इसका तना खाने के उपयोग मे लाया जाता हैं।

जलवायु—पात गोभी के समान।

भूमि व उसकी तैयारी—पात गोभी के समान परन्तु कुछ हल्की दोमट भूमि अच्छी रहती है।

जातियाँ—गांठ गोभी की जातियों को बोने के समय के अनुसार दो भागो में बांटा गया है–

अ. अगेती—अर्लियेस्ट ह्वाइट व ह्वाइट वियना।

ब पछेती—पर्पिल वियना व ग्रीन वियना।

बुवाई—गाठ गोभी को अगस्त से अक्टूबर तक बोया जाता है, तथा 1 से $1\frac{1}{2}$ किलो ग्राम बीज प्रति हेक्टर आवश्यक होता है। दूसरी नरसरी व पौधे लगाने सम्बन्धी क्रियाये फूल गोभी के समान होती हैं।

खेत में पौधे 3-4 सप्ताह की आयु में 30×22 से० मी० की दूरी पर लगाये जाते है।

खाद—गांठ गोभी के लिये 100 कि० नाइट्रोजन, 85 कि० फासफोरस तथा 170 कि० ग्राम पोटाश प्रति हेक्टर उपयुक्त रहता है जिसको बन्द गोभी के अनुसार खेत में दिया जाता है।

निकाई गुडाई व सिंचाई—पात गोभी के समान।

कीड़े मकोड़े व बिमारियाँ—सभी कोल क्रोप्स मे समान कीडे व बिमारियाँ लगते है। जिनका वर्णन पहले फूल गोभी मे दिया हुआ है।

कटाई—जब गाठ 5 से 8 से० मी० के हो जाय तो काट लेना चाहिये। क्योंकि अधिक देर तक रखने में गाठें कड़ी व स्वाद हीन हो जाती हैं।

उपज—200 कुन्तल प्रति हेक्टर ओसत उपज होती हैं।

बीज तैयार करना—लगभग पात गोभी की तरह ही तैयार किया जाता है।

पोषक मूल्य—गाठ गोभी में खाद्य तत्त्व निम्नानुसार पाये जाते हैं—

जल 92·7 प्रतिशत प्रोटीन 1·2 प्रतिशत व शर्करा 3·8 प्रतिशत इनके अलावा विटामिन ए., बी, सी. तथा खनिज लवण भी पाये जाते हैं।

REFERENCE

1.	Anonynous.	67-68	Winter Vegetable chart. Directorate of Extension Ministry food & Agriculture Community development & Co-operation Government of India New Delhi.
2.	Arora, B.P.N.	1966	Improved cultural practices for raising Vegetables yields. Indian Horti culture. IX (2) : 44-48.
3.	Bhan, K. C.	1966	West Bangal releases New Varities Indian Horticulture. X (2) 68-60
4.	Chatterje, S S. & Sharma, Dr. R.R.	1970	All about Cole Crops. Indian farmer digest. III (8) 34-37.
5.	Chaudhary, B.	1967	Improved agriculture practices in cabbage. Vegetable. 68-72.
6.	Kurobi T.	1970	It is paying to grow cabbage & Cucumber in Summer. Indian farmers digest III (8) 41-42.
7.	Lal, N. & Son, S.	1971	Sardi ki Sabji fool gobbi Khethi. XXIV (8) : 22-25.
8.	Madan S. P. S., Kaler, O. S. & Prihar, R. S.	1969	Early cauliflower earn him a good profit. Intensive Agriculture. VII (9) : 6.
9.	Mathai, Dr. P. J.	1970	An introduction to Vegetable seed production Indian Farmer digest. III (12) : 11-14.
10.	Murthy, C. N. N.	1968	Keep those uncommen maladies off your cauliflower. Intensive Agriculture. VI (3) : 18.
11.	Pandd, P.	1969	More Vegetable this winter, Indian Farmer Digest. II (12) : 11-14.
12.	Parchylaneaster, P. N.	1969	Who introduced the Vegetable. Indian Horticulture XIII (4) 31.
13.	Patnair, B. P.	1969	Multiple heads of Cabbage form single plant Indian Horticuture. XIII (3) : 23-25.

14. Purewall, S. S. 1962 Cultivation of caulıflower. Vegetable production in northen India. P. 67.

15, Radd, B. R. 1968 Disease & pest of caulıflower & cabbage. Disease & pest of Vegetable & their control, Page No. 43.

16. Singh, K. & Jazar, S. 1962 Cauliflaver, Vegetable growing in Punjab. P. 21.

17. Singh, K. 1972 Vegetable Research ın Hariyana. Intensive Agriculrure. IX (1) : 18-19

18. Singh, N. 1972 Patt gobbi kı dusri fasal; Kishan Bharti III (5) : 11-12.

19. Singh R. R. 1972 Feeding Vegetable crop for producing higher yield Indian Formers Digest X (1) : 25-26.

20. Singh, S 1971 Sarad Kalın Sabjıya. Kishan Bharti. III (3) : 48-52.

21. Singh, T. 1971 Production of field & vegetable crops P. 260-62.

22. Srivastva, D.C, Pujari. M. M. & Surana, R. K. 1971 Vegetable the rıch source of vıtamins. Indian farmer's Dıgest. IV (5) 7-8.

23. Srivastva, S.S. 1969 Cauliflower. Selection of suitable varieties of Vegetable. P. 5.

24. Srivastva, S.S. 1970 Varıetıes of caulıflower. Selection of suıtable varities of vegetable P. 5.

25. Srivastva, S.S. 1970 Varieties of cabbage. Selection of suitable varieties of Vegetables. P. 50.

26. Tiwari R. S. 1969 Gobbı dar Gobbi. Kishan Bhartı, I (3) : 40-42.

27. Yawalkar, K. S. 1965 Cauliflower. Vegetables crops of India. P.P. 68.

टमाटर एवं बैंगन की उन्नति खेती

दिग्विजय सिंह चतुर्वेदी, बी.एड., (कृषि)

[1] टमाटर.—

मनुष्य जीवन मे विटामिन्स का बहुत अधिक महत्त्व है और यह सबसे ज्यादा सब्जियों में पाये जाते है टमाटर और बैंगन का भी सब्जियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

टमाटर—लाइकोपरसीकम एसकूलेन्टम

वानस्पतिक नाम—लाइको परसीकम एसकूलेन्टम

महत्त्व—संसार के प्रत्येक जीवधारी को कुछ न कुछ कार्य अपने जीवन यापन के लिए करना पडता है। उसके लिए शक्ति की आवश्यकता पडती है। तथा साथ ही साथ मुख्य रूप से छः तत्वों की आवश्यकता पड़ती है।

(1) कार्बोहाईड्रेड (2) विटामिन (3) प्रोटीन (4) वसा (5) लवण और (6) पानी।

टमाटर के अन्दर लगभग सभी तत्व पाये जाते है। इसी लिए टमाटर टी बी. जैसी बीमारी में भी प्रयोग किया जाता है। कहावत है, कि एक टमाटर प्रतिदिन खाने वाले व्यक्ति को डाक्टर के यहाँ जाने की जरूरत नहीं पडती है।

जिस व्यक्ति का वजन 70 किलो ग्राम हो उसे प्रति दिन निम्न तत्वों की आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति काफी हद तक टमाटर से हो जाती है—

सारणी नं. 1 मनुष्य के प्रतिदिन के भोजन में आवश्यक तत्व

क्र. सं	आवश्यक तत्व	मात्रा
1.	शक्ति	3,000 कैलोरी
2.	प्रोटीन	70 ग्राम
3.	कैल्शियम	100 ग्राम
4.	विटामिन 'ए'	500 आई. यू
5.	एस्कोरबिक अम्ल	75 मि. ग्रा.
6.	थाईमिन	1·5 मि. ग्रा.
7.	राईवोफ्लोविन	1·8 मि. ग्रा.
8.	नियासिन	15 मि. ग्रा.

जैसा कि ऊपर की सारणी में दर्शाया गया है। उसी प्रकार अब हम निम्न सारणी मे यह दर्शाएगें कि 100 ग्राम टमाटर में कितने तत्व पाये जाते है।

सारणी न० 2.

"100 ग्राम टमाटर में तत्वों की मात्रा

क्र. स.	तत्व का नाम	मात्रा
1.	पानी	94·1 प्रतिशत
2	शक्ति	23 कैलोरी
3.	प्रोटीन	1·0 ग्राम
4.	कैल्शियम	7 मि. ग्रा.
5.	विटामिन 'ए'	1000 आई. यू.
6.	विटामिन 'सी'	31 मि. ग्रा.
7.	एसकोरबिक अम्ल	22 मि. ग्रा.
8.	रेशा	0·6 ग्राम
9.	थाईमिन	0·09 मि. ग्रा.
10.	रायबो फ्लोबिन	0 03 मि. ग्रा.
11.	नियासिन	0·8 मि. ग्रा.
12.	वसा	0·1 ग्राम
13.	लोहा	18 मि. ग्रा.
14.	आक्जेलिक अम्ल	2 मि. ग्रा.
15.	फास्फोरस	36 मि. ग्रा.

टमाटर से अनेकों आवश्यक पदार्थ भी बनाये जाते हैं—जैसे 1. कचप, 2. सलाद 3. पिकल्स, 4. सूप 5. पूड़ी तथा इसकी सब्जी भी काफी स्वादिष्ट होती है। अब हम आपको इसकी खेती के बारे में बतायेंगे।

जलवायु.—टमाटर गर्म मौसम का पौधा है इसके लिए पाला अधिक हानिकारक है। तापक्रम 21° सेण्टीग्रेट से 23° सेण्टीग्रेड उत्तम होता है। लेकिन व्यापारिक दृष्टिकोण मे यह 18° से 21° सेण्टीग्रेड तक अच्छी उपज देता है।

भूमि—बलुई दोमट (सेण्डी लोम) में टमाटर अच्छी उपज देता है, जहाँ पर जल निकास का उचित प्रबन्ध हो वहाँ पर कम जीवाश युक्त भूमि मे भी अच्छी उपज दे सकता है। जिस भूमि का पी एच. 6·0 से 7·0 तक होता है। उसमे अच्छी उपज देता है।

भूमि की तैयारी:—भूमि में 100 कुन्टल प्रति हेक्टेयर के हिसाब से सड़ी हुई गोबर की खाद डाल कर सर्व प्रथम एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा फिर 3-4 जुताई देशी हल से कर देना चाहिए। जिससे भूमि भुरभुरी हो जाय और जड़ें पूर्ण रूपेण विकसित हो सके इसके बाद पूरे खेत को छोटी-छोटी क्यारियो में विभाजित कर लेना चाहिए ताकि निकाई गुडाई आसानी से हो सके।

बोने का समय—नर्सरी में बीज बोने का समय जून से नवम्बर तक का है, लगातार फसल लेने के लिए निम्नविधि से नर्सरी में बीज बोना चाहिए।

(अ) मैदानों मे सबसे पहली फसल जून से मध्य जौलाई तक और इसके बाद वाली फसल जून से मध्य अगस्त तक बोते है।

(ब) पिछाही अथवा लेट इसके लिये नर्सरी में मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक बोते हैं।

(स) अगाही (अर्ली)—इसके लिए पहाड़ी क्षेत्रो में नर्सरी में बीज मार्च अप्रैल मे बो देते है। तथा मैदानों में मई-जून के महीनें में बो देते है। अगाही (अर्ली) फसल के लिए नर्सरी ऊँची बनानी चाहिए जिससे कि आस-पास का पानी नर्सरी में न जा सके। नर्सरी एक तरफ से ढालू होनी चाहिए ताकि वर्षा अथवा सिंचाई पानीं रुक कर पौधों को न सड़ा सके, और फफूँद द्वारा उत्पन्न होने वाली बीमारीयाँ, (डेम्पिग आफ सीडलिंग आदि) उत्पन्न न हो जाँय। टमाटर की पौध तैयार करने के लिए एक नर्सरी का आकार 6 फुट × 3 फुट अथवा 150 से० मी० × 100 से० मी० का होना चाहिए। इस प्रकार की 25-30 क्यारियाँ एक एक हेक्टेयर के लिए उपयुक्त होती हैं।

बीज की मात्रा:—400 से 600 ग्राम टमाटर के बीज को $2\frac{1}{2}$ ग्राम एग्रोसिन, जी एन. में (प्रति 1 किलो ग्राम के हिसाब से) उपचारित करके छिटकवाँ विधि से बो देना चाहिए। बीज को $\frac{1}{4}$ इंच बालू की महीन पर्त से पत्ती की खाद को बराबर मात्रा मे मिलाकर ढक देना चाहिए। तथा बीज बोने के बाद समय-समय पर फब्बारे से सिंचाई करते रहना चाहिए पौधे जब 3 से 4 सप्ताह के हो जाय तब इन पौधों को 75 से 60 से. मी. पंक्ति से पंक्ति के फासले तथ, 60 से 90 से. मी. पौधे से पौधे की दूरी पर तैयार की हुई क्यारियों मे रोप देना चाहिए। नर्सरी की पौध उखाड़ने से एक दिन पहले सिंचाई कर देना चाहिए। जिससे पौध क्यारी में अच्छी तरह मिट्टी को पकड लें, पौध को खेत में रोपने का समय सांयकालीन रखना चाहिए।

खाद तथा उर्वरक:—टमाटर की खेती मे खाद के तीनो मुख्य अंशों में यथार्थ नाइट्रोजन अंश सबसे अधिक महत्त्वशाली हुआ है। टमाटर की फसल जिसकी उपज 375 क्विन्टल/हेक्टयर हो तो उसके लिए

101·4 किलो ग्राम नाइट्रोजन, 72 किलोग्राम फास्फोरस तथा 142.70 किलो ग्राम पोटाश की आवश्यकता पडती है ।

ये उपरोक्त अश हम इस प्रकार दे सकते हैं.—

250 किलो ग्राम अमोनियम सल्फेट/हेक्टयर

450 किलो ग्राम सुपरफास्फैट/हैक्टयर

150 किलो ग्राम म्यूरेट आफ पोटाश/हेक्टयर

नाइट्रोटजन की पूरी मात्रा का तीन चौथाई रोपाई करते समय, और बाकी मात्रा फूल आने के पहले दे देनी चाहिए । इसके अलावा 100 क्विन्टल प्रति हेक्टेयर के हिसाब से गोबर की सडी हुई खाद खेत की आखिरी जुताई करते समय डाल देनी चाहिए ।

जातियाँ·—टमाटर की मुख्य-मुख्य जातियाँ जो कि आई. ए. आर. आई. द्वारा प्रचलित है वह निम्नलिखित है ।

1. पूसा अर्ली ड्वार्फ :

यह पूसा रूबी से जल्दी तैयार होने वाली फसल है । उपज पूसा रूबी के बराबर ही होती है, लेकिन इसके फल पूसा रूबी से अच्छे होते है ।

विभिन्न स्थानों के लिए

यू. पी.	—	पोडी रोसा, पिटचर्ड
बिहार	--	मारग्लोव, ओक्स हार्ड
पंजाब	—	डेवीलिन च्वास, रेड क्लाउड, देशी दक्खन
महाराष्ट्र	—	मारग्लोब, सोलिड रेड, एस 48
पहाड़ी क्षेत्र	—	पूसा रूवी, मारग्लोब, कल्याणपुर न. 1 एस. 12 आदि ।

पूसा रूबी:—यह भी जल्दी तैयार होने वाली किस्म है 60 दिन पश्चात् फल देने लगती है । इसके फल मध्यम आकार के होते है ? इसको जुलाई, फरवरी तथा नवम्बर में बोया जाता है ।

बेस्ट आफ आल·—यह लेट जाति है । इसके फल मध्यम आकार के होते है । इसकी उपज और जातियो की अपेक्षा अधिक होती है ।

इम्प्रूव्ड मेरठी·—यह जाति बीमारी–रोधक और बरसात के समय में गर्मी रोधक अधिक गीलेपन को सहन करती है ।

एस 12.—पौधे झाडीदार होते है जल्दी तैयार होने वाली किस्म है । फल मध्यम आकार के और समान रंग वाले होते है । उपज 250 क्विन्टल प्रति हेक्टर होती है । तथा क्रेकिंग के लिए प्रतिरोधक है—

अन्य किस्में—मारग्लोव, इटेलियन रेड, पूसा रेड प्लम, इन्डियन रेड, इम्प्रूव्ड मेरठी पीयर, रोमा, एस. आई. 120, फाइरबाल सी ओक्स, यू. पी. ओ. टी: 1, दोन्ड्रोला. प्राइड चार्ड, बिहार मेग्लो, ओक्स हार्ट, देवलिन्स च्वाइस, रेड क्लाउड, देशी डाइक्सोन, पी. बी. 12 सोलिड रेड मेच केस, वोनी वेस्ट ।

सिंचाई:—सर्द मौसम में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। गर्म मौसम में प्रति महीने में 10 दिन के अन्तर से सिंचाई करते रहते है जिस समय तुषार पड रहा हो उस समय सिंचाई करना अति आवश्यक है। क्योंकि वह गिरते हुए तापक्रम से रक्षा करता है तथा सिंचाई रोपाई के तुरन्त बाद करना चाहिए, जहाँ तक सभव हो रोपाई सांयकालीन समय में करना चाहिए।

निकाई गुड़ाई—खरपत वार अलग करने के लिए जड़ों तक ताप पहुँचाने के लिए निकाई गुड़ाई अति आवश्यक है। ज्यादा गहरी गुड़ाई करना जड़ो के लिए हानिकारक है।

सहारा देना (स्टेकिंग):—पौधे जब ज्यादा लम्बे हो जाते है तब उनको लकड़ी इत्यादि से सहारा दे देना चाहिए ताकि फल खराब न हो पाये और उनकी वृद्धि सुचारु रूप से हो सके।

कटाई या फल तोड़ना:—फलों के पकने पर उन्हें अँगूटे की सहायता से तोड लेना चाहिए ताकि पौधे को हानि न पहुँचे। 125 दिन से 150 दिन तक तैयार हो जाता है।

केनिंग और प्रोसेसिंग के लिए पूर्ण रूपेण पके तथा लाल फल लेना चाहिए।

बाजार में बेचने के लिए कुछ बैंगनी रंग के फल तोडना चाहिए ताकि जल्दी खराब न हो सके।

उपज:—प्रति हे. 160 क्विन्टल से 240 क्विन्टल औसत उपज होती है।

बीमारियाँ व कीट:—फ्रूट बोरर टमाटर का सबसे हानिकारक कीट है जिसको नष्ट करने के लिए 5 प्रतिशत डी. डा. टी. का डस्टिंग फल लगने के शुरू मे कर देना चाहिए।

फ्यूजेरियम विल्ट, अर्ली ब्लाइट, लेट ब्लाइट लीफ मोल्ड, बेक्टरीयल केन्कर लीफ कर्ल मोजेक, फर्नलीफ—

कीडे रूपी केन्चा वीटल—

रोगी पौधों को उखाड कर नष्ट कर देना चाहिये।

---

[2] बैंगन:—

वानस्पतिक नाम	—	सोलेनम मोलिन्जोना
नेचुरल आर्डर	—	सोलेनेसी
जाति	—	एस्कूलेन्टम
वर्नीकुलर नाम	—	एगप्लान्ट, ब्रैन्जिल, बेगन, बेटून।

बैंगन का महत्व.—

बैंगन के बारे मे कहावत है कि—

"काहू को बैंगन बाबरे काहू को बैंगन पत्थ" लेकिन फिर भी बैंगन हमारे जीवन का महत्व पूर्ण खाद्य है।

शतांश-नमक पड़े हुए पानी में बैंगन को 2 मिनट के लिए उबाल लेते है। फिर इसे खाने में लाभ होता है।

यह गर्म, अग्नि दीपक, वीर्य वर्धक, और कफ नाशक होता है छोटे सफेद अण्डा कृत वाले बैंगन बबासीर में हितकारी माने गये हैं।

इसमें निम्न तत्व पाये जाते हैं। जो मानव जीवन मे हितकारी है !

सारणी संख्या 2 प्रति 100 ग्राम मे

	तत्वों के नाम	मात्रा
1.	पानी	92 7 ग्राम
2.	प्रोटीन	1·4 ग्राम
3.	वसा	0,3 ग्राम
4.	शक्ति	24 कैलोरी
5.	कैल्शियम	18 मि.ग्रा.
6.	औक्जैलिक अम्ल	18 मि. ग्राम
7.	फोस्फोरस	47 मि. ग्राम
8.	लोहा	0.9 मि ग्राम
9.	विटामिन 'ए'	124 आई. यू.
10.	विटामिन 'सी'	12 0 मिली ग्राम
11.	राइबोफ्लाबिन	0.11 मि. ग्राम
12.	थाइमिन	0.04 मि. ग्राम
13.	सल्फर	.44 मि. ग्राम

1, **जलवायु**:—बैगन पाले से बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है इसके लिए 21° सेण्टी ग्रेड से 27 डिगरी सेण्टीग्रेड तापक्रम की आवश्यकता होती है, यह गर्म मौसम का पौधा है।

2. **भूमिः**—बलुई दोमट भूमि मे अच्छी उपज देता है, इसे टमाटर की तरह खेत को भुरभुरा करके बोना चाहिए।

3. **खादः**—37 से 50 क्विन्टल गोबर की खाद

+ 3 क्विन्टल सुपर फास्फेट

+ 2.12 क्विन्टल अमोनियम सल्फेट

+ 87 क्विन्टल पोटेशियम सल्फेट का मिश्रण एक हेक्टेयर खेत में डालनें से अच्छी उपज देता है। उपज 140 से 190 क्विन्टल प्रति हेक्टर।

4. **बोबाई का समय व बीज की मात्रा**—

मैदानों में वर्ष मे तीन बार बोते है।

प्रथम—मध्य फरवरी से मार्च तक

द्वितीय—मध्य मई से मध्य जुलाई तक

तृतीय—अक्टूबर के प्रथम सप्ताह से शुरू नवम्बर तक।

375 से 500 ग्राम तक बीज नर्सरी में पौध तैयार करने के लिए बोने है। यह पौध एक हेक्टर के लिए काफी होगी।

5. **पौध लगाने व बोने को विधि.**—इसके बीजों को क्यारियों में बोते हैं। 20 क्यारियां 3·25× 1.25 मीटर की बनाते है। फिर 5 – 6″ के पौधे हो जाने पर इसकी रोपाई अच्छी तरह तैयार किए हुए खेत मे 75 से 90 से. मी. पक्ति से पंक्ति और 60 से. मी. से 70 से. मी पौधे पौधे की दूरी पर कर देते हैं।

6. **सिंचाई**—पहली सिंचाई फसल रोपने के तुरन्त बाद तथा फिर जरूरत के मुताबिक सिचाई करते रहते है।

7 **जातियां** पी. बी. न. 8—जिसके फल अण्डाकार गोल मध्यम आकार के होते हैं। तथा अन्य जातियाँ-मुक्त केसी, पूसा अनमोल गहरे बैंगनी रंग की गोल फल वाली तथा जल्दी पकनें वाली फसल है।

पूसा परबल, 4 एस. टी. 1, एस. टी 2, टी. 3, राउन्ड पर्पिल, एस. ई. आई., मंजरी गोटा आर. 34. पी 34, अमरीकन, पर्पिल एस. 11 ए, पूसा क्रान्ति, हैदरपुर, सलेक्शन 11 ए. हरा, एस. 79, एस. 51-1 बैंगनी, एस. 51-1 हरा, एस. 96-4 सफेद, एस. 83-2 जापानी अण्डाकार, एस. 43-2 हरा गुच्छित, फ्लोरिडा मार्केट।

8. **कटाईः**—90 दिन बाद फल तोड़ने योग्य हो जाते है। पके हुए फल हरे रंग के हो जाते हैं। उन्हें बीज तैयार करने के लिये छोड़ देते हैं।

9. **पेड़ी (रेटून)**—एक फसल लेने के बाद फिर इन पौधों को ऊपर से काट देते हैं। और उपयुक्त खाद देते रहते हैं। तथा उनकी निकाई गुड़ाई करते रहते है। और यह फिर फल देना शुरू कर देते हैं।

10. **निकाई गुड़ाई**—सिचाई के तुरन्त बाद जब पौधे 10″ या 12″ के हो जाँय तब इनकी निकाई गुड़ाई कर देना चाहिए।

11. उपज:—140 से 190 क्विन्टल प्रति हेक्टर।

12. **बीमारियाँ और कीट:**—1 डेम्पिग ओफ 2. फोमोप्टिसस ब्लाइट।

प्रथम बीमारी फायटोपथोरा या पीथियम द्वारा फैलती है। दूसरी—फोमो पोसिस वैक्सेनस द्वारा फैलती हैं।

13. **रोक थाम:**—

(1) रोग रहित बीजों को बोना चाहिए।

(2) रोग रोधक जातियों को बोना चाहिए।

(3) बीजों को 50° सेन्टीग्रेड तापक्रम वाले पानी से 30 मिनट तक शोधित करना चाहिए।

इस प्रकार टमाटर और बैंगन की खेती को उपरोक्त उन्नति शील विधि से करना चाहिए। दोनों ही फसलें शर्दी से मतलब तुषार से जल्दी नष्ट होने वाली है। अत: उन्ही क्षेत्रो मे उगाई जाँय जहाँ पर पानी की सुविधा हो। इनकी देख भाल की बहुत आवश्यकता होती है।

REFERENCES

1. Anonymous, 1971 Brinjal crop production N. S. C. Ltd. leaflet.
2. Chaudhary, B. 1970 Brinjal, Vegetables : 50-58.
3. Chaudhary, B. 1965 Cultivation Practices, Cultivation of Tomato & Brinjal. 12-17.
4. Chaudhary, B. 1967 Taxonomy & varieties Vegetables the **Seetry** Nation Book in India—42.
5. Chaudhary, V. J. 1968 Brinjal, Sabjian : 46-54.
6. Deshi, N. S. Nandpuri, K. S. 1971 Brinjal, Vegetable Growing in India. (Punjab Agricultural University Publication) 45-47.
7. Deshi, N. S. 1970 Summar season vegetable, vegetable growing in Punjab. 40-44.
8. Kalar, D. S. etal, 1970 S–12 Tomato for Bumfer yield Progressive Farming VI (5) : 13.
9. Kasahdi, A Martin 1969 Sabji ki Podh Kasi Tayiar Karan, Unnat Krishi VII (8) : 17-18.
10. Lal, G. Siddapa, G. S. Tandon, G. L. 1967 Tomato Products Preservation (Indian Council of Agri. research P.P. 186.
11. Mukhrjee, A. L. Chattejee, D. K. 1971 Experiment with Sonia new insecticides. V (7) : 16-17.

12. Nandpuri, K. S. 1972 Vegetable Improvement in Punjab, Intensive Agriculture. IX (12) ; 31.

13. Shrivastva, S. S. 1970 Choosing Suitable Varieties of Vegetables and their Characteristics, Improving Agriculture Education in India. 46 R. C. E. Ajmer (Raj.) Ag. Dep.

14. Singh, Arvind Kumar. 1970 Tamatar Ugakar Amdani Badhaiya. Unnat Krashi. VII. (12) : 8-9.

15. Singh, D. P. 1971 Brinjal, Agriculture Digest II (10) : 6-9.

16. Singh, N. P. 1971 Adhik Badhwar ke Tamatar ko Sahara Den, Kishan Bharti II. (10) : 30.

17. Thompson, Hamer, C & Kelley, W. C. 1957 Brinjal, Vegetable crops : 500-503.

18. Yadava, A. S. 1965 Indian Vegetables, Kailash Pustak Bhavan Patan ka Bazar, Gwaliar : 45-47.

मिर्च और भिण्डी की खेती

बलराम त्रिपाठी बी० एड० (कृषि)

(1) मिर्च की खेती—

परिचयः—

मिर्च भारत की एक अति महत्वपूर्ण फसल है। यह भारत के प्रायः हर भाग मे उगाई जाती है। बडे पैमाने पर मिर्च उगाने वाले चार राज्य है—आध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर और मद्रास, जिनके आधीन मिर्चों की कुल खेती की ³⁄₄ क्षेत्र है। बड़े पैमाने पर मिर्च उगाने वाले अन्य राज्य है—मध्य प्रदेश, पंजाब और बिहार। मिर्च का प्रयोग हम साग सब्जी, मसाले चटनी और अचार आदि विभिन्न रूपों में करते हैं। इसमें विशेषत. विटामिन 'ए' और 'सी' काफी होता है। मिर्च मे तीखापन एक वाष्पी अल्कलायड की उपस्थिति के कारण होता है। थ्रेस नामक वैज्ञानिक ने इस तीखेपन को कैप्सेसिन बतलाया है। कैप्सेसिन की मात्रा फल की प्लेसेंटा में सबसे अधिक होती है। फलावरण में तीखापन नही के बराबर होता है किन्तु बीज प्लेसेंटा के साथ होने के कारण तीखापन गृहण कर लेते है।

वर्गीकरणः—

मिर्च का कुल सोलेनेसी और वंश कैप्सीकम है। मिर्चों की केवल चार जातियाँ उगाई जाती है, जिनमें से दो-सी० पेन्डुलम और सी० प्यूबेसेन्स केवल दक्षिण और मध्य अमरीका में ही उगाई जाती है। अन्य दो जातियाँ सी० एनुअम और सी० फ्रूटेसेन्स की सारे ससार मे व्यापारिक खेती की जाती है। बाजार में मिलने वाली अधिकाश हरी और सूखी मिर्चें मुख्यतः सी० एनुअम जाति की है। यह आकार में छोटी और बहुत तीखी होती है।

जलवायुः—

मिर्च की खेती गर्म तथा हल्की ठंडी दोनों ही प्रकार की जलवायु में सफलता पूर्वक होती है। इसके लिए सामान्यत. 70-80° F. तापमान तथा 60 से 120 से. मी वार्षिक वर्षा उपयुक्त है। इसके पौधे लम्बे अरसे तक पाला वर्दास्त नही कर सकते। फूल आने पर मूसलाधार वर्षा का होना अति हानिकारक है।

भूमिः उसकी तैयारीः—

लवणीय भूमि को छोडकर जल निष्काषित और अच्छे वायु संचार वाली सभी भूमियों में भलीभांति उगाई जा सकती है किन्तु अच्छी पैदावार के लिए हल्की दोमट और बलुई भूमि उत्तम है। भूमि की अम्लता का मिर्चों पर ज्यादा असर नही होता लेकिन अत्यधिक अम्लता कम करने के लिए चूने का प्रयोग वाछनीय हैं।

मिर्च के लिए एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 3-4 बार क्रास हैरोइंग करके भूमि को भुर-भुरा बना लेना चाहिए। यदि खेत ऊँचा नीचा हो तो समतल कर लेना चाहिए।

बुवाई का समय —

महाराष्ट्र, आंध्र और मद्रास में मई के तीसरे सप्ताह से जुलाई के मध्यतक नरसरी की क्यारियों मे बीज बोये जाते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों मे बीजों की बुवाई मार्च-अप्रैल मे की जाती है।

बीज की मात्रा:—

मिर्च की किस्म के अनुसार 1-1½ कि० ग्राम बीज प्रति हैक्टर की आवश्यकता पड़ती है।

पौध की रोपाई:—

बुवाई के मौसम के अनुसार जब पौध 4 से 8 सप्ताह की हो जाय तो उसे आसानी से जड सहित उखाड कर भली प्रकार तैयार किए हुए खेत में 60 × 45 से. मी. की दूरी पर रोपाई कर देना चाहिए। यह कार्य विशेषत शाम के समय करना चाहिए। इस प्रकार इसकी रोपाई के दो समय उपयुक्त है।

(1) जुलाई से सितम्बर।

(2) अक्टूबर से नवम्बर।

सिंचाई:—

प्रथम सिंचाई पौध लगाने के तुरन्त पश्चात् कर देनी चाहिए फिर वर्षा के अभाव में समय समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए इस प्रकार 1 से 1½ सप्ताह बाद सिंचाई कर देना चाहिए। इस प्रकार 8-9 सिंचाई उपयुक्त होती हैं।

खाद तथा उर्वरक:—

150 से 200 कुन्टल अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद बुबाई के एक माह पूर्व खेत मे मिला देना चाहिए इसके उपरान्त 350 कि. ग्रा. अमोनियम सल्फेट, 175 कि. ग्रा. सुपरफासफेट सिंगिल और 100 कि ग्राम पोटेशियम सल्फेट प्रति हैक्टर का प्रयोग करना चाहिए। अमोनियम सल्फेट का ⅔ भाग तथा अन्य दोनों उर्वरक रोपाई के कुछ समय पूर्व देना चाहिए तथा अमोनियम सल्फेट का ⅓ भाग रोपाई के एक माह बाद देना चाहिए।

निकाई गुड़ाई:—

अन्तराकृषि क्रियायो द्वारा खरपतवारो पर नियत्रण एवं मिट्टी भी ढीली करते रहना चाहिए। इस प्रकार 3-4 बार निकाई गुडाई करना उचित है। ई. पी. टी. सी. और डिनोवेन जैसे कुछ खरपतवार नाशकों का विदेशों में सफलता पूर्वक प्रयोग किया जा रहा है।

फल तोड़ना तथा उपज:—

फल तोड़ने का समय फल प्रयोग करने के समय पर आधारित रहता है क्योंकि यह हरी और सूखी दोनों अवस्थाओं में तोड़ी जाती है। इस प्रकार इसकी उपज निम्न है।

(1) हरी मिर्च—80 से 100 क्विटल प्रति हैक्टर ।

(2) सूखी मिर्च—8 से 15 क्विंटल प्रति हैक्टर ।

कीड़े तथा बीमारियां—

(1) **थ्रिप:**—

ये छोटे छोटे कीडे पत्तियो का रस चूसते रहते है । इनका प्रकोप फूल आने पर अधिक होता है ।

रोकथाम—

(1) 18-25 कि. ग्राम प्रति हैक्टर की दर से **5** प्रतिशत बी. एच. सी. चूर्ण का प्रयोग उपयुक्त है।

(2) क्लोरेडोन की 30 मिली लिटर मात्रा 25 लिटर पानी में मिलाकर 15-15 दिन के अन्तर पर कई बार नरसरी मे छिडकना चाहिए ।

(2) **एफिड:**—

ये विषाणु रोगों का संचार करते है और पौधो का रस चूस कर बडी हानि पहुँचाते है ।

रोकथाम—पैराथियान मैलाथियान या निकोटिन सल्फेट के छिड़काव से इसके प्रकोप को रोका जा सकता है ।

उन्नति शील जातियां—

ऐन. पी. 46 ए, एन. पी. 31, एन. पी. 36, एन. पी. 41, हाइब्रिड 5-1-5, हाइब्रिड 17-1-1 जी. 1, जी. 2 सी. ए. 452-1 पटना रेड, पटना सुखा, वर्ल्ड वीटर, कैलीफोर्निया वण्डर, फैजावादी, बुलनोज विभिन्न राज्यों में उगाई जाने वाली उन्नति शील जातियां निम्न प्रकार है ।

(1) **आंध्र प्रदेश**— गुण

(i) **पीली**—मध्यम लम्बी, अधिक बीज एव बहुत तीखी ।

(ii) **मुंडू**—गोल या शुँडाकर, मोटा छिलका अधिक बीज एव तीखी ।

(iii) **लंका या वारंगल**—लम्बी, चौडा सिरा, मोटा छिलका, कम बीज एवं कम तीखी ।

(2) **मैसूर**—

(i) **गौरी विदनूर**—5-6 से. मी. मोटा छिलका अधिक बीज बहुत तीखी ।

(ii) **जवागल**—7.5 से 10 से से. मी लम्बी, लाल नुकीली, बहुत लम्बी एव तीखी ।

(iii) **ज्वारी**—10-12·5 से. मी लम्बी, गोलाकार काफी बीज कम तीखी ।

(3) **तामिल नाडू**—

(i) **सांवा**—मध्यम लम्बी, अधिक बीज व तीखी ।

(ii) **रामानन्द मुंडू**—छोटी एवं नुकीली, मीठी ।

(4) **मध्य प्रदेश**—

(i) **एलिचपुर**—पीली सी लाल, पतला छिलका तीखी ।

(ii) **इंदौरी**—लाल, मोटी एव लम्बी ।

(iii) **भीवापुरी**—छोटी एवं लाल, मोटी, हल्की तीखी ।

(2) भिण्डी की खेती:—

परिचय

भिण्डी सम्पूर्ण भारत मे अपने कच्चे फलों के लिए उगाई जाती है जिन्हे मुख्य रूप से सब्जी के रूप में पकाकर खाया जाता है। परिपक्क भिण्डी के काली या भूरी आँखों वाले बीजों को भून कर भी कभी-कभी काफी के रूप मे प्रयोग किया जाता है। भिण्डी का उपयोग कागज उद्योग में होता है और तने रेशे निकालने के काम आता है।

वर्गीकरण:—

भिण्डी का वंश एवेलमोशस तथा जाति ऐसक्युलेन्टस है। यह वंश हिविसकस से भिन्न है क्योंकि इसका वाह्य दलपुंज पतझडी होता है, जब कि हिविसकस में बना रहता है। भिण्डी की अनेक किस्में है जिन्हें पौधों की ऊँचाई एव फली के गुणो के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है।

जलवायु:—

भिण्डी गर्मी के मौसम की सब्जी है जिसके लिए एक लम्बे उष्ण मौसम की आवश्यकता होती है। बीजों के अंकुरण के लिए तापक्रम 20° से. से कम नही होना चाहिए क्योंकि इसमे कम तापमान पर इसका अंकुरण नही होता। लगातार अधिक सर्दी व पाले का असर इस पर पडता है।

भूमि तथा उसकी तैयारी —

भिण्डी सब प्रकार की भूमि में उगाई जा सकती है किन्तु अच्छे जल निकास वाली लोम (दोमट) भूमि सबसे उपयुक्त रहती है। खेत की तैयारी के लिए 3-4 जुताइयाँ करके मिट्टी को भुराभुरा बना लेना चाहिए और अन्तिम जुताई के पूर्व गोबर या कम्पोष्ट खाद डाल कर उसे मिला देना चाहिए और खेत को समतल बना देना चाहिए।

खाद तथा उर्वरक:—

(1) 100–150 कुन्टल गोबर या कम्पोष्ट प्रति हैक्टर मिला देना चाहिए।
(2) अमोनियम सल्फेट या कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट—2.5 कुन्टल।
(3) सुपर फासफेट (सिंगिल)—3 कुन्टल प्रति हैक्टर।
(4) म्यूरेट आफ पोटास—1 कुन्टल प्रति हैक्टर।

इस उर्वरक मे से आधा अमोनियम सल्फेट एवं सम्पूर्ण सुपर फासफेट व सम्पूर्ण म्यूरेट आफ पोटास बुवाई के पूर्व दे देना चाहिए और शेष आधी अमोनियम सल्फेट बुवाई के 40 दिन बाद देना चाहिए।

बुवाई का समय:—

उत्तर भारत के मैदानो मे इसकी बुवाई दो बार की जाती है। प्रथम गर्मी की फसल के रूप मे और दूसरी वर्षात की फसल के रूप मे अत: इसकी बुवाई का उचित समय निम्न है—

(1) फरवरी-मार्च (गर्मी की फसल)।
(2) जून जुलाई (वर्षात की फसल)।

बीज की मात्रा.—

भिण्डी की बुवाई के समय की भिन्नता के अनुसार इसके बीज की मात्रा भी भिन्न भिन्न है अतः प्रति हैक्टर बीज की मात्रा निम्न है।

(1) गर्मी की फसल—15-20 किलो ग्राम।

(2) वर्षात की फसल—8-10 किलो ग्राम।

बुवाई का ढंग व दूरीः—

भली प्रकार तैयार किए हुए खेत मे इसकी बुवाई लाइनो में की जाती है। बुवाई के समय के अनुसार ही इसकी पंक्ति से पंक्ति व पौधे से पौधे की दूरी में भिन्नता निम्न प्रकार रखी जाती है।

(1) पंक्ति से पंक्ति की दूरी—45 से० मीटर } (गर्मी की फसल)
(2) पौधे से पौधे की दूरी—30 से० मीटर }

(1) पंक्ति से पंक्ति की दूरी—50 से० मीटर } (वर्षात की फसल)
(2) पौधे से पौधे की दूरी—40 से० मीटर }

सिंचाईः—

यदि बुवाई करते समय भूमि में नमी न हो तो सिंचाई करने के बाद बुवाई की जानी चाहिए उसके बाद गर्मी की फसल में प्रति सप्ताह एक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है और वर्षात मे यदि वर्षा न हो तो आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई कर देते हैं।

निकाई गुड़ाईः—

भिण्डी की फसल मे निकाई गुडाई का अत्यधिक महत्व है अतः इसकी 3-4 बार निकाई गुड़ाई करके खरपतवारों को निकालते रहना चाहिए तथा पौधों की जडों पर मिट्टी चढ़ाते रहना चाहिए क्योंकि पौधो के गिरने से उत्पादन में भारी कमी आ जाती है।

कटाईः—

प्रारम्भिक फलियों के प्रकट होते ही लगातार हर दूसरे या तीसरे दिन फलियों की चुनाई करली जाती है।

उपजः—

(1) गर्मी की फसल—50-60 कुन्टल प्रति हैक्टर।

(2) वर्षात की फसल—80-100 कुन्टल प्रति हैक्टर।

औसतन उपज 60 कुन्टल, प्रति हैक्टर तथा औसतन बीज उत्पादन 12 कुन्टल प्रति हैक्टर होता है।

हानिकारक कीट तथा बीमारियाँ:—

(1) **हानिकारक कीट:—**

(अ) **जैसिड—**

इनके प्रकोप से पत्तियाँ मुड़ जाती हैं तथा उनके किनारे झुलसे हुए से हो जाते हैं।

उपचार:—(i) सेवीन 50 w p. की 1 किलो मात्रा 650-750 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

(ii) मेटासिस्टाक्स 25 ई० सी० के० 1% तथा सेवीन 50 w. p की 1 किलो मात्रा 650-750 लिटर पानी में मिलाकर छिडकाव करना चाहिए।

(ब) **फल वेधक:—**

यह कीडा फलो में मुखाग चुभोकर उनका रस चूस लेता है।

उपचार—0·04% फोलिडाल या .05% एन्ड्रीन घोल का 700-800 लिटर प्रति हैक्टर छिडकाव करें।

(स) **सफेद मक्खी—**

यह मक्खी भी फली को नुकसान पहुँचाती है।

उपचार—मेटासिस्टाक्स 25 ई० सी० के एक लिटर मात्रा को 1000 लिटर पानी में घोल कर 15-15 दिन के अन्तर पर छिडकाव करना चाहिए।

(2) **बीमारियाँ:—**

(अ) **यलोवेन मुजेक (पीतशिरा मुजेक)**

यह एक सिरा रोग है इसका प्रकोप होने पर पत्तियाँ और फल पीले पड़ जाते है। इस रोग का संचार सफेद मक्खी के द्वारा होता है अतः कीट प्रसारक को रोकने के लिए निम्न उपचार करते हैं।

300 मि० लिटर मेलाथियान 50% ई० सी० घोल + 300 लिटर पानी में घोलकर छिडकाव करें।

(2) इसको रोकने के लिए रोग रोधी किस्मों जैसे—पूसा सावनी आदि की बुबाई करना चाहिए।

(व) **जड़ ग्रंथि रोग.—**

इन रोगों से बचाव के लिए निम्न उपचार करना चाहिए।

(अ) कटाई के बाद जडो तथा अन्य अवशेषो को गहराई तक निकाल देना चाहिए।

(व) बोने के लगभग 35 सप्ताह पूर्व 2 कु० लकड़ी का बुरादा प्रति हैक्टर के हिसाब से डाल देना चाहिए तथा बोने के समय नाइट्रोजन युक्त खाद का प्रयोग करें।

(स) 3-4 वर्ष के लम्बे फसल चक्र अपनाना चाहिए।

जातियाँ:—

(1) पूसा सावनी, पूसा मखमली, पर्किन्स लोंग ग्रीन, हरी चिकनी, रेड वन्डर, वैशाली वधू।

(2) यू० पी० टाइप 1।
यू० पी० टाइप 2।

REFERENCE

1.	Chahal, B. S.	1969	Save chillis from pest and diseases, Progresive farming. V (7) : 6-14.
2.	Dhulappanoar, C. V.	1966	Chillis in Mysore, Indian farming. XVI (9) : 12-14.
3.	Kaliappan, R. & Raja Vopal A.	1970	Germination and early vigour of chilli, The Medras Agriculture General, XXXXXVII (4) : 4-231
4.	Katiyar, Q. Pra	1969	Bhindi ka Phul Chhedak, Kheti XXII (3) : 6-26.
5.	Mahta, Y. Are	1972	Subji ki Phusalo per Niryat Abhimukh Anusandhan, N. S. C. Bulletin, VIII (3-4) : 3-4-5
6.	Pachori, R. S.	1972	Bhindi Se Amdani Men Ejapha, Uttam Krisi X (4) : 6-5.
7.	Pachori, P. S.	1972	Why not a better Bhindi crop, Intensive Agriculture, X (4) : 6-14.
8.	Padda, D. S., Saimbhi M. S.	1969	Bhindi on ridges germenates better, Progresive farming. V (7) : 6-7.
9.	Pathak, Madan Mohan or Lal Shanker	1969	Subjio ke Beej Bhandaranaur Uttpadan Kheti XXII (3) : 6-18
10.	Rama Lingam, M. and Krishna Murthy C. S.	1966	Die back of chilli, Indian farming, XVI (5) : 8-24
11.	Sexsena, Mahesh Sharan aur Singh Shankra Prasad	1971	Bhindi ki Ageti Phusal, Kheti, XXIV (11) : 2-34.
12.	Sharma, A. N.	1972	Vegetable cultivation in paying, Indian farmers Digest, V (5) : 5-23.
13.	Sharma, A. N. Sharma P. K. Singh R. S.	1971	Subjia ki jaron ki Granthe Rog ka upchar, Kheti, XXIV (2) : 5-14.
14.	Singh, J. P.	1971	Subjio ki Rongon se chhutabara, Kheti, XXIV (8) : 11-4
15.	Singh, Kirti & Thabur M. R.	1966	Vegetable in your diet, Progresive farming, XI (13) : 1-17.

16. Singh, Kirti Pandey 1970 Growing chillies assums importance in Haryana, Progre. Umash Chandra farming, VI (6) : 2-3.
17. Singh, Sheshu Pal 1971 Mirch Kaise Ugayen, Kisan Bharti, III (3) : 3-13.
18. Sitaramaiah K. & Sikara, A. Rechord 1972 Nonvirus diseases of Vegitable crop, Indian farming Digest, V (1) : 1-8.
19. Tewari, V. P. 1970 Mirch ki Kheti. Kheti, XXII (10) : 2-7
20. Tewari, V. P. 1970 Mirch men Tikhapan Kyon, Kheti, XXXIII (3) : 6-22.
21. Tewari, V. P. 1970 Mirch Ka Vargikaran, Kheti, XXIII (6) : 9-26
22. Tewari, V. P. 1970 Mirch Bhi Bemar Hoti hie, Kheti, XXIII (9) : 12-30
23. Tewari, Ved Prekash 1971 Mircho Se Videshi Mudra, Kheti, XXIV (8) : 11-20
24. Vansal, Ach. Se. 1971 Utperivartan Se Mirch men Anuvansik Sudhar, Kheti, XXIV (5) : 8-34

कन्द वाली फसलें

भाग 'अ'

(गाजर, मूली, शलजम)

भगवन्त सिंह यादव
बी० एड० (कृषि)

ऐसी फसलें जिनकी खेती भूमिगत, रूपान्तरित कन्दो के लिए की जाती है जड़ वाली फसलें कहलाती है। यही रूपान्तरित जडे खाने के काम आती है। जैसे शलजम, मूली, गाजर इत्यादि। ये फसलें व्यापारिक कहलाती हैं। और इनकी खेती सारे भारतवर्ष में की जाती है। जब किसान की भूमि थोड़े समय के लिए खाली रहती है अर्थात उसमें कोई फसल नही उगाई जाती तो ऐसे समय मे किसान कन्द वाली फसलों को उगा कर खाली भूमि का सदुपयोग कर लेता है। ये फसलें 30 से 40 दिन मे तैयार हो जाती है। किसान इन फसलों को कैच क्रोप के रूप में भी उगा सकता है।

(1) महत्व—

मूली—इसकी जडें, पत्तियाँ, तथा चुहापुच्छ जाति की फलियों की सब्जी बना कर खाते है। इसके अतिरिक्त सलाद तथा अचार बनाकर भी खाते हैं। मूली में खनिज पदार्थ, विटामिन 'ए' और 'सी' अधिक पाये जाते है। इसके खाने से कब्ज, बवासीर, तिल्ली और पीलिया आदि रोग दूर हो जाते है।

गाजर:—इसका प्रयोग कच्चे रूप में, मिठाई, मुरब्बा हल्वा अचार आदि में किया जाता है। सन्तरे के रग वाली गाजर में कैरोटिन (परोविटामिन 'ए') अधिक पाया जाता है। कुछ मात्रा में विटामिन 'बी' और 'सी' भी पाया जाता है। इसके खाने से पथरी पिताशय और दिल के रोगो को लाभ होता है। यह घोड़ो को भी खिलाई जाती है।

शलजम—इसका प्रयोग भी सब्जी, सलाद, और अचार बना कर करते है। इसमें विटामिन 'ए' 'बी' और 'सी' पाये जाते है। इसमे कैलशियम तथा लोहा भी पाया जाता है।

इसके अतिरिक्त कन्द वाली सब्जियों में अग्रलिखित पौष्टिक तत्व भी पाये जाते हैं।

तालिका संख्या 1

कन्द वाली सब्जियों में पाये जाने वाले विभिन्न पौष्टिक तत्व

क्र.सं.	भोज्य पदार्थ	गाजर प्रति 100 ग्रा पदार्थ	मूली प्रति 100 ग्रा. पदार्थ	शलजम प्रति 100 ग्रा. पदार्थ
1	नमी	86· ग्रा	94·4 ग्रा.	91·6 ग्रा.
2	प्रोटीन	0·9 ,	0·7 ,,	0·5 ,,
3	वसा	0·2 ,,	0·1 ,,	0·2 ,,
4	खनिज	1·1 ,,	0·6 ,,	0·6 ,,
5	रेशा	1·2 ,,	0·8 ,,	0·9 ,,
6	कार्बोहाइड्रेट	10·6 ,,	3·4 ,,	6·2 ,,
7	ऊर्जा	47 कैलोरी	17 कैलोरी	29 कैलोरी
8	कैलशियम	80 मि. ग्रा	50·0 मि. ग्रा.	30 मि. ग्रा.
9	फासफोरस	30 ,,	22·0 ,,	40 0 ,,
10	लौहा	2·2 ,,	0·4 ,,	0·4 ,,
11	सोडियम	35·6 ,,	33·0 ,,	—
1.	पोटेशियम	108 0 ,,	138·0 ,,	—
13	विटमिन 'ए'	3150 आई. यू.	5 आई. यू	—
14	थियामाइन	0 04 मि. ग्रा.	0·06 मि. ग्रा.	0·04 मि. ग्रा.
15	रिवोफ्लेविन	0·02 ,,	0·02 ,,	0·04 ,,
16	विटामिन 'सी'	3·0 ,,	15 ,,	43·0 ,,

(2) **जलवायु :—**

गाजर—यह ठडी जलवायु की फसल है। यह पाले और सर्दी को भी सहन कर सकती है। अधिक तापक्रम मे इसकी बढ़वार रुक जाती है तथा रंग खराब हो जाता है और गाजर लम्बी

व पतली हो जाती है। 10°-15° से० पर रंग खराब हो जाता है, 15°-20° से० पर अच्छा रंग आता है 20°-25° से० पर रग कम चमकीला हो जाता है।

मूली:—यह भी ठडी जलवायु वाली फसल है, परन्तु पूरे वर्ष उगाई जाती है, गर्मी के कारण मूली की जड़ें कड़ी तथा चरपरी हो जाती है। इस अवगुण को दूर करने के लिए मूली को जल्दी कच्ची अवस्था मे उखाड़ कर प्रयोग मे लाना चाहिए। इसकी उचित बढवार के लिए 10°-50° से० के बीच तापक्रम होना चाहिए।

शलजम:—यह फसल भी ठंडी जलवायु में फलने फूलने वाली फसल है। इसमें पाले को सहन करने की क्षमता होती है। इसलिए उत्तरी तथा पहाड़ी भागो मे शलजम उत्तम किस्म का होता है। इसके लिए भी 10°-50 से तापक्रम की आवश्यकता होती है।

(3) **भूमि का चुनाव**.—कन्द वाली सभी फसलों के लिए कडी भूमि के अतिरिक्त सभी प्रकार की भूमियाँ अच्छी मानी जाती है, परन्तु गहरी बलूही दोमट जो काफी उपजाऊ हो और जिसमे जल निकास का उचित प्रबन्ध हो, उतम रहती है। मूली बोये जाने वाले क्षेत्रो में ढेले नही होने चाहिए, ढेलों से मूली की कन्द खराब हो जाती है, तथा विकास रुक जाता है।

(4) **भूमि की तैयारी**.—यह तीनों फसले भूमिगत होती हैं जिनकी बढवार के लिए भूमि भरभुरी तथा मुलायम होना अति आवश्यक है। दो जुताइयाँ मिट्टी पलटने वाले भारी हल से करके खेत खुला छोडना चाहिए। भूमि 20-30 से० मी० गहरी जोतनी चाहिए। बुवाई से पहले 3-4 जुताइयाँ देशी हल से करके पाटा लगाकर समतल कर देनी चाहिए। इसी समय देशी खाद भी डालते है, जिससे वह खेत में आसानी से मिल जाय और पौधों के काम आ जाय।

तालिका संख्या 2

(5) **बुवाई का समय**:—समय, स्थान और जलवायु के अनुसार बुवाई का समय अग्रलिखित है।

क्रमांक	सब्जियाँ	समशीतोष्ण जलवायु वाले मैदानो में देशी बीज	उष्ण जलवायु वाले मैदानों मे देशी बीज	पहाड़ों पर
1.	गाजर	अगस्त से अक्टूबर तक	मार्च से जुलाई तक	सितम्बर-नवम्बर
2.	मूली	जून से जनवरी तक	सितम्बर से मार्च तक	मार्च-अक्टूबर
3.	शलजम	जुलाई से सितम्बर तक	अक्टूबर से दिसम्बर तक	15 मार्च-मई

तालिका संख्या 3

(6) **बीज की मात्रा:**—स्थान, अंकुरण प्रतिशत और उसमे पाये जाने वाले पदार्थों की मात्रा पर बीज की मात्रा निर्भर करती है। 90-95% वाला निम्न बीज चाहिए।

क्रमांक	सब्जियाँ	यूरोपियन टाइप	एशियन टाइप
1.	गाजर	7 कि० ग्राम प्रति हैक्टयर	5 कि० ग्राम प्रति हैक्टयर
2.	मूली	12 ,, ,, ,,	10 ,, ,, ,,
3.	शलजम	6 ,, ,, ,,	4 ,, ,, ,,

(7) **बुवाई की विधि : गाजर**—इसे छिटकवाँ, मेढों पर या कूडों में बोया जाता है। छिटकवाँ विधि में गाजरे एक सी नही होती। बोने से पहले बीज को भिगो कर अकुरित कर लेते है। ज्यों ही सफेद अंकुर दिखाई दे 30 से० मी० की दूरी पर बनी हुई मेढों के ऊपर तथा 2 से० मी० के अन्तर मे 2 से० मी० गहरा बीज डाल कर मिट्टी से ढक दिया जाता है। जमने पर पौधों की 8-10 से० मी० दूरी कर देनी चाहिए।

मूली—बुबाई 22-30 से० मी० की दूरी पर बनी पंक्तियों में 1½ से० मी० बने कुण्ड मे 2 से०मी० की दूरी पर बोते हैं। मेढों की ऊँचाई 10-12 से० मी० रखते है। पौधे उगने पर 8-10 से० मी० अन्तर रखना चाहिए।

शलजम:—इस फसल की 30-45 से० मी० की दूरी पर बनाई गई मेढो की 15 से० मी० ऊँची चोटी पर 4 से० मी० गहरा कुण्ड बनाकर 1½ से० मी० की दूरी पर बीज बोना चाहिए, तथा तुरन्त बाद पानी दे देना चाहिए। जब पौधे 5 से० मी० के हो जाय तो पौधों की छटाई कर देनी चाहिए। इस समय इनकी दूरी 10-15 से०मी० कर देते हैं। छिटकवाँ विधि की अपेक्षा मेढ़ो पर परिणाम अच्छे पाये गये हैं।

(8) **खाद तथा उर्वरक**—पहले खेत में जुताई के समय 15-20 गाडी गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट डाल कर हल द्वारा भूमि में मिला देनी चाहिए, फिर प्रति हैक्टयर अग्र लिखित उर्वरक की पूर्ति करनी चाहिए।

तालिका संख्या 4

क्रमांक	नाम सब्जियाँ	नत्रजन	फास्फोरस	पोटाश
1.	मूली	120 कि० ग्रा०	65 कि० ग्रा०	100 कि० ग्रा०
	गाजर	40 कि० ग्रा०	120 कि० ग्रा०	22·5 कि० ग्रा०
	शलजम	35 कि० ग्रा०	50 कि० ग्रा०	25 कि० ग्रा०

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नैनीताल की सिफारिश के अनुसार अग्रलिखित खाद देनी चाहिए।

मूली.—गोबर की खाद 150 क्विन्टल, सुपर फासफेट 1 क्विन्टल, प्रति हैक्टर के हिसाब से अन्तिम जुताई के समय कूँड मे देनी चाहिए। अच्छी उपज के लिए इन खादो के साथ 50 कि० ग्रा० अमोनियम सल्फेट देना चाहिए।

शलजम:—45 कि० ग्रा० नाइट्रोजन 50 कि० ग्रा० फासफोरस 60 कि० ग्रा० पोटाश प्रति हैक्टयर देनी चाहिए। शलजम को पोटाश कम चाहिए। 100 क्विन्टल गोबर या कम्पोस्ट, 1 क्विन्टल अमोनियम सल्फेट, 2 क्विन्टल सुपर फासफेट ½ क्विन्टल म्यूरेट आफ पोटाश क्रमशः बुवाई के एक माह और एक सप्ताह पूर्व देना चाहिए। 50 किलो सोडियम नाइट्रेट शलजम की कन्द बनने के समय देना चाहिए।

गोबर की कच्ची खाद कन्द वाली सब्जियों को नहीं देनी चाहिए क्योंकि कन्दो का ब्रान्चिग शुरू हो जाता है जिससे उनके गुण बिगड जाते है।

(9) **उन्नतशील जातियाँ** —

(1) **गाजर** :

(1) पूसा केसर – यह जाति एशियाटिक और यूरोपियन जातियो को क्रोस करके निकाली गई है। इसका रंग केसरिया होता है और परो विटामिन 'ए' (कैरोटिन) अधिक मात्रा मे पाया जाता है। इस जाति का स्वभाव एशियाटिक जैसा है। स्वाद भी अच्छा होता है।

(2) टी 29– यह नारंगी रंग की होती है, जो काफी लम्बी हो जाती है। यह जाति पजाब क्षेत्र के लिए काफी उपयुक्त मानी गई है।

(3) देशी काली।
(4) देशी लाल।

विदेशी जातियाँ—अर्लि नैन्टिस, अमेरिकन ब्यूटी, स्कार्लेट हार्न, चैंटन, आक्स हर्ट, डेम्बर्स आफ लाँग।

(2) **मूली**:—**देशी**

(1) पूसा हिमानी जो 40-50 दिन में तैयार हो जाती है।

(2) कल्यानपुर न० 1, कल्यानपुर न० 2, जौन पुरी, कन्नोज, जापानी सफेद, व्हाइट लोंग, रैड लोंग।

विदेशी जातियां—व्हाइट आइस वाल, रैपिड रैड, स्कार्लेट ग्लोब, फ्रेन्च ब्रेक फास्ट, चाइनीज जाइन्ट।

(3) **शलजम** :

देशी जातियाँ

[अ] सफेद और लाल शलजम।
[ब] देशी रेड राउन्ड।

[स] पूसा कंचन ।
[द] पंजाब 4 रैड तथा 4 सफेद ।
[य] पूसा श्वेती, (यह अधिक आकर्षक जड़ों वाली जाति है)

विदेशी जातियाँ

[अ] स्नोवाल यह कतरई उपकेन्द्र से निकाली गई है ।
[ब] पूसा चन्द्रिमा ।
[स] गोल्डन बाल ।
[द] पर्पिल टाइप, व्हाइट ग्लोब इत्यादि है ।

नई जाति : शलजम सरसों :—

29 जनवरी 1973 हिन्दुस्तान, पेज न० 4 पर एक नई जाति का उल्लेख मिला है, जिसका नाम **शलजम सरसों** है । यह जाति सोलन स्थित कृषि अनुसंधान शाला, शिमला से डा० सैनी द्वारा निकाली गई है । यह संकर किस्म सरसो की एक विदेशी किस्म तथा बैंगनी सफेद शलजम को संकरण करके निकाली गई है । इसकी नीचे की जड शलजम होगी तथा ऊपर के पत्ते सरसों के पत्ते होंगे । खाने में दोनो का स्वाद अलग-अलग होगा । संकर सरसो की पत्तियाँ नर्म तथा शीघ्र पकने वाली होगी । शलजम में विटामिन तथा खनिज देशी से अधिक होंगे ।

(10) **सिंचाई** :—पहली सिंचाई बीज बोने के तुरन्त बाद करनी आवश्यक है, क्योंकि अंकुरण होने के लिए नमी का होना बहुत आवश्यक है । दूसरी सिंचाई एक सप्ताह बाद करके अन्त की सिंचाइयाँ प्रत्येक 15-20 दिन बाद करते रहना चाहिए परन्तु गर्मियो में 7-8 दिन बाद सिंचाई करनी चाहिए । जल्दी २ सिंचाई करने से पत्तियो की वृद्धि अधिक होती है, तथा कन्द देर मे तैयार होती है, जो घटिया किस्म की होती है ।

पानी खेत मे इतना भरा जाय कि मेंढ पूरी नही डूबने पावे अर्थात् सिंचाई हल्की करनी चाहिए । अन्तिम सिंचाई कन्द उखाडने के कुछ दिन पहले करनी चाहिए । कुल 5-6 सिंचाईयाँ काफी होती है ।

(11) **निराई गुड़ाई**:—जब पौधे छोटे होते है तथा बढ़वार का समय होता है, निराई करके खेत साफ रखना चाहिए, क्योंकि मुख्य फसल की बढवार खरपतवारों की अपेक्षा धीरे-धीरे होती है । अन्त मे भी समय-समय पर निराईगुड़ाई करते हैं । कन्दो पर अच्छा रंग लाने के लिए गुड़ाई करते समय उन पर मिट्टी चढानी चाहिए ।

(12) **खुदाई** :—जब कन्दों की मोटाई 3-4 से० मी० हो जाय और वह नर्म तथा कोमल हो तो उन्हें खोद लेना चाहिए क्योंकि मोटी और अधिक समय में तैयार कन्द खोखली तथा स्पंज के समान हो जाती है । खुदाई करने से पहले हल्की सिंचाई कर लेनी चाहिए ताकि कन्द आसानों से खोदी जा सकें ।

(13) **उपज** :

(1) मूली — 250 से 300 क्विन्टल प्रति हैक्टर ।

(2) गाजर — 150 से 200 क्विन्टल प्रति हैक्टर।

(3) शलजम — 200 से 350 क्विन्टल प्रति हैक्टर।

(14) **बीज तैयार करना:**—यूरोपियन जातियो का बीज केवल पहाड़ो पर तथा एशियाटिक जातियों का मैदानों मे तैयार किया जाता है। जापानी व्हाइट मूली जाति का बीज मैदानो में तैयार किया जाता है, परन्तु पैदावार अधिकतर पहाड़ों पर ली जाती है।

बीज लेने के लिए स्वस्थ कन्द छाँट कर जड का निरीक्षण करके दूसरे स्थानों पर लगा देते है। सामान्यत: अच्छी पैदावार लेने के लिए कन्द का लगभग $\frac{1}{3}$ या $\frac{3}{4}$ भाग काट कर अलग कर देते है, और नई-नई पत्तियो को छोड कर शेष पत्तियो को भी काट देते है। ऐसा करने से पानी वाष्पीकरण द्वारा अधिक नहीं उड पाता। फिर पहले से तैयार खेत में बने हुए 60 × 60 से० मी० की दूरी के गड्ढो मे कन्दो को लगा देते है, तथा पानी लगा देते है। कुछ दिन बाद पुष्प शाखा निकल आती है जिस पर फलियां लगती है। फलियों के पकने पर बीज निकाल कर सुखा लेते हैं।

(15) **रोग तथा कीट:**—इन फसलों को अधिकतर माहू नामक कीट लगता है जिसके नीम्फ पत्तियों के रस को चूस कर पौधों को नष्ट कर देते है। इसके लिए—

(1) 800 मि. ली. 50 ई सी. मेलाथियान को 800 लीटर पानी मे मिलाकर प्रति हैक्टर छिड़कते हैं। 8-10 दिन के अन्तर से दुबारा छिड़कते है, यदि आवश्यक हो तो।

(2) 750 लीटर 0.250% मिथाइल डेमेटान या .035% मोनोजोन घोल कीट दिखाई देते ही छिड़क देना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो 20-20 दिन बाद दुबारा छिडक सकते हैं।

(3) निकोटिन सल्फेट का घोल भी एफिड को समाप्त करने के काम में लाया जाता है।

(4) फोलीडोल का प्रयोग भी किया जाता है।

(5) कभी-कभी कन्द वाली सब्जियों को मोजैक और रस्ट का प्रकोप भी होता है।

कन्दवाली फसल भाग (ख)

(शकरकन्द)

रघुवीर सिंह (बी० एड० कृषि)

परिचय.—कन्द वाली फसले खाद्य पदार्थों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। कन्द वाली फसलों में से एक फसल शकरकन्द है। जिसका नम्बर आलू के बाद आता है।

शकरकन्द अफ्रीका, भारत, चीन, जापान दक्षिणी अमेरिका तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी भागों में उगायी जाती है। यह पौधा 'कल बोल बूलेसी' फेमली का है। 1960-61 के आकड़ों के

अनुसार भारत में शकरकन्द की खेती 459646 एकड भूमि में उगायी गयी तथा उत्पादन 1311120 टन हुआ । आध्र प्रदेश (16230 एकड), आसाम (16000 एकड), बिहार (180069 एकड), मध्य प्रदेश (17453 एकड), मद्रास (12900 एकड), महाराष्ट्र (15600 एकड), मैसूर (17566 एकड), उडीसा (29420 एकड), उत्तर प्रदेश (117600 एकड) ओसतन उत्पादन प्रति एकड 2·8 टन था ।

भारत में शकरकन्द मुख्यत. मानव उपभोग के लिये उगायी जानी है । लेकिन अमेरिका आदि देशो मे इससे स्टार्च, एलकोहल, आदि बनाया जाता है । अमेरिका मे इसे पोटेटो के नाम से तथा आलू को व्हाइट पोटेटो के नाम से पुकारते है । शकरकन्द मे कार्बोहाइड्रेट आलू की अपेक्षा अधिक पाया जाता है ।

अकाल के समय शकरकन्द का प्रयोग भोजन के स्थान पर किया जा सकता है । यह एक पूरक खाद्य पदार्थ ही नही है अपितु इसकी अपनी न्यूट्रेटिव वैल्यू है । तथा एक सस्ता खाद्य पदार्थ भी है ।

शकरकन्द भोज्य तत्वो की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है । इसमे विटामिन 'ए' पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है । विटामिन 'सी' तथा थोडी मात्रा में विटामिन 'बी कोम्पलैक्स' पाया जाता है । एक मध्यम आकार के कन्द से 150 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है ।

(केन्द्रीय खाद्य तकनीकी अनुसन्धान शाला मैसूर राज्य)

जाति	पानी %	प्रोटीन %	वसा %	तन्तु %	खनिज %
भारतीय	65 6	1·5-2 6	3- ·4	1·6-1·7	1·0·1 3
अमेरिका	70·4-73·2	2 6-3·1	0 2-0·3	1·3-1·4	9-1·0

जलवायु—शकरकन्द के लिये गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है । जहाँ पर 4-5 माह दिन रात गर्म रहते है ऐसी जलवायु शकरकन्द के लिये उपयुक्त रहती है । उसे 5000-6000 फीट की ऊँचाई तक उगाया जा सकता है । जहाँ अधिक वर्षा होती है वहाँ शकरकन्द की वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है तथा कन्द विकसित नही हो पाते उस पर पाले का भी प्रभाव पड़ता है । 25-40" वर्षा वाले क्षेत्र में इसे आसानी से उगाया जा सकता है ।

भूमि—शकरकन्द को सभी प्रकार की भूमियों में उगाया जा सकता है लेकिन अच्छे उत्पादन के लिये बलुई दोमट या दोमट भूमि उपयुक्त रहती है । इसे हल्की बलुई एवं चिकनी मिट्टी युक्त भूमि मे भी उगाया जा सकता है लेकिन भारी एवं काली मिट्टी इसके लिये उपयुक्त नहीं है क्योंकि इन भूमियों मे कन्द अच्छी तरह विकसित नहीं हो पाते तथा वे अनियमित आकार के हो जाते है । भूमि मे जीवांश पदार्थ की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिये । भूमि का पी एच 5-8 से 6-8 तक होना चाहिये । भूमि का तापक्रम 20°–30° से. होना चाहिये ।

खाद—भारत में कृषक शकर कन्द को बहुत थोड़ी मात्रा में खाद देते हैं, भारत मे खाद के ऊपर

बहुत से प्रयोग किये गये है, जिनसे विदित हुआ है कि गोबर की खाद से अच्छे परिणाम मिलते हैं 60 किग्राम नाइट्रोजन 60 किलो ग्राम फासफोरस तथा 120 किलो ग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है। फासफोरस एवं पोटाश की मात्रा खेत की अन्तिम तैयारी के समय देदी जाती है नाइट्रोटन की आधी मात्रा रोपाई के समय तथा आधी मात्रा रोपाई के 25-30 दिन बाद दे दी जाती है।

भूमि की तैयारी:—एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 3-4 जुताई देशी हल से करनी चाहिये। अधिक गहरी जुताई उपयुक्त नहीं होती क्योंकि अधिक गहरी जुताई होने पर कन्द गहराई पर बनेंगे तथा आकार के लम्बे होंगे अन्तिम जुताई के बाद 45 से. मी. के अन्तर पर नाली एव मेढ बना ली जाती है। मेढों की ऊँचाई 10-12 से मी. रखने हैं। जुताई 6-8'' गहरी करनी चाहिये।

जातियाँ.—आई. ए. आर. आई ने निम्न जातियाँ निकाली है।

(1) **पूसा सफेद**—अधिक पैदावार देने वाली जाति है। कन्द का आकार मध्यम होता है। छिलके का रंग सफेद होता है तथा गुदे मे रेशे नहीं होते इसका चुनाव 'एफ. ए. 17' (ताईवान) से किया गया है।

(2) **पूसा लाल**:—इसका चुनाव जापानी जाति 'नोरिन' से किया गया है कन्द मध्यम आकार के होते हैं तथा बीच में मोटे होते हैं छिलके का रंग लाल किन्तु गूदे का रंग सफेद होता है।

(3) **पूसा संकरी** —इसके गूदे का रग हल्का नारंगी तथा छिलके का रंग हल्का पीला होता है इसमे कैरोटिन की मात्रा अधिक पायी जाती है। इसकी 'कीपिंग क्वालिटी' अधिक होती है।

(4) **बी० 4306**:—यह अमेरिकन जाति है कन्द छोटे एव मोटे होते है त्वचा का रंग हल्का पीला तथा कन्दो में रेशा नही पाया जाता।

(5) **एफ० बी० 4004**:—अमेरिकन जाति है जो भारत के अनेक राज्यो में उगायी जाती है, जैसे–महाराष्ट्र, पंजाब, केरल आदि।

(6) **रेन्जर**:—छिलके का रंग बैंगनी, अमेरिकन जाति है तथा बिहार के लिये अधिक उपयुक्त है।

बोने का समय.–भारत मे शकरकन्द बोने का समय भिन्न २ स्थानो पर भिन्न भिन्न है। उडीसा में जून जुलाई, मद्रास मे तथा आन्ध्र प्रदेश में सितम्बर–नवम्बर तक, मैसूर में पहली फसल मई तथा दूसरी फसल नवम्बर में रोपी जाती है।

उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, मध्य प्रदेश में जून जुलाई में रोपाई की जाती है लेकिन सिचाई की सुविधा होने पर उसे मई मे भी रोपा जा सकता है।

बीज की मात्रा—एक हैक्टर के लिये 45 से. मी. के 40000-50000 टुकड़ों की आवश्यकता होती है यह ध्यान रखा जाता है कि प्रत्येक टुकडे मे 3-4 गाँठें अवश्य होनी चाहिये। एक हैक्टयर के लिये लगभग 4-5 क्विन्टल लतायें पर्याप्त रहती है।

बोने की विधि—मेंढ़ो पर पौधे से पौधे की दूरी 30 से. मी. मेंढ की लाइन से दूरी 45 से. मी रखते है। कटिंग को 6" गहरा इस प्रकार लगाया जाता है कि उसके दोनों सिरे बाहर निकले रहे अर्थात् लता को बीच में दबाते हैं। कटिंग लगाने के तुरन्त बाद सिंचाई कर दी जाती है।

सिंचाई:—पहली सिंचाई कटिंग लगाने के तुरन्त बाद इसके बाद तीन सप्ताह के अन्तर पर सिंचाई करते हैं। अन्तिम मानसून के बाद एक या दो सिंचाई होना आवश्यक है। जिससे भूमि मे नमी बनी रहे ताकि कन्द की खुदाई आसानी से हो सके। पंजाब मे जब कटिंग लग जाती है तो 3-4 सप्ताह के अन्तर पर सिचाई करते हैं। वर्षात के समय फसल में पानी नही भरना चाहिये रोपाई के 2·5 माह बाद मिट्टी चढ़ा देनी चाहिये।

निकाई गुड़ाई.—शकरकन्द में आरम्भ में खरपतवार अधिक उगते हैं जब तक कि लतायें भूमि को ढक नहीं पाती · इसी समय निकाई गुडाई की अधिक आवश्यकता होती है। जब ये लतायें नम भूमि के सम्पर्क में आती है तो नोड से जडें निकल आती हैं। ये जड़े कन्द का निर्माण करती है फलस्वरूप मुख्य कन्द का विकास नही हो पाता। अतः इन लताओं को जमीन से नही लगने देना चाहिये अपितु लताओ को पलटते रहना चाहिये। ताकि वे जडे उत्पन्न न कर सके।

खुदाई:—कन्द जब पूर्ण विकसित हो जाते है तथा पक जाते है तभी करनी चाहिये। इस स्थिति मे पत्तिया पीली पड जाती है। कन्द को काट कर देखा जाता है यदि कटी सतह सूखने पर साफ रहती है तो फसल पक गयी होती है लेकिन जब फसल पकी नही होती है तब सतह काली पड़ जाती है।

यदि फसल काटने के तुरन्त बाद बाजार ले जानी है तो फसल की खुदाई मे लगभग एक सप्ताह पहले उसकी लताओं को काट लिया जाता है ऐसा करने से कन्दों मे मिठास बढ जाता है। बोने के लगभग 130-160 दिन में फसल पक जाती है। फावडे अथवा कुदाली आदि से खुदाई करली जाती है।

पैदावार:—शकरकन्द की औसतन पैदावार 100 क्विन्टल प्रति हैक्टर है लेकिन 300 क्विन्टल तक उसकी पैदावार ली जा सकती है।

कीड़े एवं बीमारियाँ—सौभाग्य से शकरकन्द मे कोई भयंकर बीमारी नहीं लगती।

शकरकन्द में बीबील नाम का कीडा लगता है। फसल को बीबील से बचाना आज एक समस्या बन गयी है बीबील तने एवं कन्दो में छेद कर देता है तना के नष्ट होने पर कन्दो को भोजन नही मिल पाता अतः उनका विकास रुक जाता है बीबील का लार्वा अधिक हानि पहुँचाता है फसल को काटने के बाद लताओं को जला देना चाहिये ताकि लार्वा एक मौसम से दूसरे मौसम में न जा सके। बीज बोते समय देख लेना चाहिये कन्दो पर नरसरी मे बोते समय 2% डी डी. टी. का ड़स्ट कर लेना चाहिये तथा नरसरी मे 2-3 बार डी. डी. टी. की (2%) ड़स्टिग करनी चाहिये। एक ही क्षेत्र मे 2-3 बार फसल नहीं बोनी चाहिये।

संग्रह

शकरकन्द को भण्डार ग्रह में नियन्त्रित तापक्रम पर रखा जाता है अमेरिका मे 55°–60°F तापक्रम सफल संग्रह के लिये आवश्यक माना गया है। लेकिन एक साधारण कृषक एक सस्ता ढग ही अपना सकता है। मद्रास में प्रयोग किये गये सबसे अच्छी विधि गड्ढों में कन्द को पुआल से ढक कर मानी गयी है। इस विधि से सग्रह किये गये कन्दो को 2-3 माह तक उपभोग किया जा सकता है।

REFERENCE

1. Anonymous, 1966 Hand Book of Agriculture. I. C. A. R. 391-393.
2. Chaudhary, B. 1967 Vegetable crops, National Book Trust, India. Second Edi. 81-90, 92-94.
3. Chaudhary, B. 1967 Vegetable crops, National Book Trust, India New-Delhi 164-168.
4. Chaudhary, V. 1968 Vegetable, National Book Trust, India. 77-87.
5. Chauhan, D. V. S. 1968 Vegetable Production in India. Ramprasad and Sons, Hospital Road Agra-3. 208-210, 219-223.
6. Deshi, Nazar Singh 1962 Vegetable growing in Punjab. Punjab Agriculture University, Ludhiana 67-70.
7. Dhondial, S. P, & atal 1971 Vegetable Krishi, Hindustan Book Depo, Lucknow (1). 241-249.
8. Gillivary, J. 1961 Vegetable Production Mc. Grow-Nill Book Co I.N.C. 356-365.
9. Gupta, K. N. 1961 A Text Book of Agriculture, Ramkumar Press Lucknow 207-219.
10. Mishra, S. G. & atal. 1967 Krishi Shastra ki Rooprekha, Hindi Pracharak Pustakalalaya, Varanasi (1) : 259-267, 268-271.
11. Purewal & Urkery. 1962 Bharat-gyan Kosh. I. C. A. R. New-Delhi. 224-250.
12. Sawhney, K. 1961 Progressive Farming. Hand Book of Agriculture. I. C. A. R. 347-348.
13. Singh, D. N. 1962 Vygetable growing in-Punjab. Punjab Agriculture University Ludhiaua. 80-88.
14. Singh & Ghos. 1967 Hand Book of Agronomy. Kitabistan 17-A Kamla Nehru Road Allahabad, U P. 94.
15. Singh, N. P. 1971 Subjiyo se adhik amed kaise le. Kishan Bharti II (8) : 23-27.
16. Singh, R. S. 1963 Bharatiya Krishi Anusandhan Parisad, New Delhi. 388-390.
17. Singh, S. 1971 Subjio men Sulgam ke bahar, Kishan Bharti. II (8) : 16-18.
18. Singh, S. 1971 Gajer ki Bhari upaj kaise len. Kishan Bharti. II(12) : 43-44.

19. Srivastava, S. S. 1970 Improving Agriculture Education in India. Second Edi, R. C. E. Ajmer. 51-53.

20. Telbert & Thomas, J. 1953 Growing fruit and Vegetable crops. Le and Febiger Philadelphia. 235-238.

21. Thopson, G-Homey & Kelly William. 1957 Vegetable crops. Mc. Grow, Hill Book Co. I. N. C. Newyark, Toronto-Landon. 319-326.

22. Vyas, N. D. C. 1962 Sagbhaji ke kheti. Sahitya Mandal New Delhi. 103-108.

23. Yadava & Yadava. 1965 Irrigation and Drainage including vegetable crop's. Kailash Pustak Sadan Bhopal. 77-83.

हरी सब्जियों की उन्नत कृषि क्रियायें

नरेन्द्रपाल वर्मा
एम० एस० सी० (कृषि) बी० एड० (कृषि)

हमारे देश में अधिकतर शाकाहारी ही है—और उनके दैनिक जीवन मे सब्जियों का होना आवश्यक है। चाहे मनुष्य शाकाहारी हो या न हो वैज्ञानिको के अनुसार हर व्यक्ति को कम से कम 350 ग्राम हरी पत्तीदार सब्जी प्रतिदिन खानी चाहिये। परन्तु हमारे देश में यह मात्रा बहुत ही कम है। अत. सब्जियो की खेती की बहुत आवश्यकता है। और अनुमान लगाया गया है, कि सब्जियो की खेती दुगुनी होनी चाहिये।

हमारे देश मे विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ उगाई जाती है। इनमें हरीपत्ती वाली सब्जियो का महत्व अन्य सब्जियो से कम नहीं है। हरी पत्तीदार सब्जियों में पालक, मेथी व चौलाई आदि की खेती हमारे देश मे आमतौर पर की जाती है। इन सब्जियो को पोषक तत्वो का भडार माना जाता है। इन सब्जियो के महत्त्व को निम्न तालिका के द्वारा अन्य सब्जियों के साथ तुलना करके जाना जा सकता है।

तालिका न. 1

विभिन्न सब्जियों के पोष्टिक तत्व

क्र. स.	सब्जी का नाम	प्रोटीन की मात्रा (प्रतिशत) में	वसा की मात्रा (प्रतिशत)	कार्बोहाइड्रेट्स की मात्रा (प्रतिशत में)	विटामिन्स की मात्रा प्रति 100 ग्राम में		
					विटामिन ए यूनिट	विटामिन बी (मि ग्राम)	विटामिन सी (मि. ग्राम मे)
1.	मेथी	4·9	0·9	9·8	3900	40	—
2.	सलाद	2·1	0·3	3·0	2200	40	15
3.	पालक	1·9	0·9	4·0	2600–3500	60	48
4.	चुकन्दर	1·7	0·1	13·6	ट्रेस	40	88
5.	आलू	1·6	0·1	22 9	40	100	17
6.	गाजर	0·9	0·2	10·7	2000–4300	40	3

क्र. सं.	सब्जी का नाम	प्रोटीन की मात्रा (प्रतिशत) में	वसा की मात्रा (प्रतिशत)	कार्बोहाइड्रेट्स की मात्रा (प्रतिशत में)	विटामिन्स की मात्रा प्रति 100 ग्राम मे		
					विटामिन ए यूनिट	विटामिन बी (मि. ग्राम)	विटामिन सी (मि. ग्राम में)
7.	करेला	1·6	0·2	4 2	210	72	88
8.	मूली	0·7	0·1	4·2	5	60	15
9.	कोली फ्लावर	3 5	0·4	5·3	18	100	66
10	चौलाई	2·7	0·5	6·4	2500	40	48

इनके अतिरिक्त खनिज पदार्थ, कैलसियम, लोहा, निकोटिनिक एसिड, फासफोरस, नियासिन और रिवोफलेविन आदि काफी मात्रा में पाये जाते हैं। इन सब्जियो मे पोषक तत्वों की भरमार होने से बच्चों के लिये स्वास्थ्य वर्धक तथा उनकी बढ़वार के लिये अति आवश्यक हैं।

जलवायु—इन सब्जियों को विभिन्न प्रकार की जलवायु में आसानी से उगाया जा सकता है। जहाँ तापक्रम मे उग्रता नहीं होती, वहाँ पर इनको पूरे वर्ष उगाया जा सकता है। ये ठंडे मौसम की फसल हैं, तथा पाले को एक सीमा तक सहन कर लेती है।

भूमि का चुनाव--ये सभी प्रकार की भूमि मे उगाई जा सकती है किन्तु मटियार भूमि इनके लिये सर्वोत्तम रहती है। इन सब्जियो के पत्तों की वृद्धि के लिये भूमि में नाइट्रोजन का पर्याप्त मात्रा मे होना आवश्यक है।

भूमि की तैयारी—भूमि को अच्छी प्रकार से तैयार करने के लिये पहले मिट्टी पलटने वाले हल से जोत दिया जाता है। तथा फिर 4–5 बार देशी हल तथा हैरो चलाकर मिट्टी को बारीक बना दिया जाता है तथा पाटा लगाकर भूमि को समतल कर लिया जाता है। भूमि को तैयार करते समय 20-25 गाडी गोबर की खाद डाल कर हैरो से अच्छी प्रकार मिला देते हैं। तथा खेत को छोटी-छोटी क्यारियों में विभाजित कर लेते है।

अच्छे बीज प्राप्त करना—इनकी फसल लेने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि अच्छी किस्म के बीज को ही बोने के काम में लाया जाये। सब्जियो का अच्छा बीज या तो अपने प्रान्त के कृषि विभाग से या ऐसी प्रसिद्ध दुकान से जो शुद्ध बीज ही देती हो, खरीदना चाहिये। बीज का खराब या शुद्ध होना ही पैदावार को प्रभावित करता है।

बोने की विधि—पालक, चौलाई व मेथी जैसी साग सब्जियों को सीधे क्यारियो में छिटक कर बो देतें है। बीज को बोने से पहले उसे मिट्टी में मिला लेते हैं। जिससे बोने में आसानी रहे, तथा प्रत्येक स्थान

पर एक सा बीज पड सके। इनको लाइनों में भी बोया जा सकता है। इनकी लाइन से लाइन की दूरी 15-20 से० मी० तथा पौधे से पौधे की दूरी 3-5 से० मी० रखी जाती है इन सब्जियों को पूरे खेत में एक साथ नहीं बोना चाहिये, बल्कि इन को कुछ दिन के अन्तर से विभिन्न क्यारियो में बोना चाहिये, जिससे निरन्तर पैदावार मिलती रहै।

बुआई का समय—इनको मैदानों तथा पहाड़ो पर भिन्न-भिन्न समय पर बोया जाता है जो निम्न प्रकार से है।

तालिका नं. 2

बोने का समय

सब्जी	मैदानों में	पहाड़ो पर
पालक	जून से नवम्बर के मध्यतक	मार्च—अप्रेल
	फिर जनवरी–फरवरी में	सितम्बर—अक्टूबर
चौलाई	मार्च—जुलाई	मई से–जुलाई तक
मेथी	सितम्बर—नवम्बर	मार्च—अप्रैल

बीज की मात्रा:—

बीज की मात्रा भूमि में उपस्थित नमी व बीज की शुद्धि पर निर्भर करती है। लेकिन इनके औसतन बीज की मात्रा इस प्रकार है:—

तालिका नं. 3

बीज की मात्रा

सब्जी	बीज के प्रति हैकटेयर
पालक	25—30 कि. ग्राम
मेंथी	20—25 कि. ग्राम
चौलाई	2·5—3 0 कि ग्राम

खाद तथा उर्वरक:—

खाद तथा उर्वरक की मात्रा भूमि में उपस्थित नाइट्रोजन पर निर्भर करती है। इनकी खेती के लिये

500 कि. ग्राम अमोनियम सल्फेट, 400 कि. ग्राम सुपर फासफेट तथा 100 कि. ग्राम म्यूरेट आफ पोटाश प्रति हैकटेयर के हिसाब से डाले जाते है। आखिरी जुताई करते समय आधी मात्रा अमोनियम सल्फेट, तथा सुपरफास्फेट व म्यूरेट आफ पोटाश की पूरी मात्रा डाल दी जाती है। अमोनियम सल्फेट की आधी मात्रा को तीन भागो मे बाँट कर पहली तीन कटाईयों के बाद छिडक दिया जाता है। और पानी दे देते हैं।

सिंचाई:—

हरी पत्तियों वाली सब्जियो को पानी की अधिक आवश्यकता होती है। यदि खेत में नमी कम है तो सिंचाई बुआई के तुरन्त बाद कर दी जाती है। बाद मे 8-10 दिन के अन्तर से गर्मियों मे तथा सर्दियों मे 10-15 दिन के अन्तर सिंचाई करते रहना चाहिये। सिचाई के समय पानी हल्का देना चाहिये जिससे कि वह जमीन में 15 से. मी. की गहराई तक चला जाये। बरसात के दिनो मे यह ध्यान रखना चाहिये कि बरसात का पानी फसल में रुका न रहे। क्यो कि इससे फसल की जड, पत्तियाँ सड-गल जाती है, और पैदावार पर बुरा प्रभाव पडता है।

फसल की देख भाल—

सब्जियो के बीजों के जमने के बाद जब वे 3-5 से. मी. के करीब बडी हो जाये तो उनकी निकाई-गुडाई की आवश्यकता होती है। क्योंकि इनके साथ खरपतवार बहुत अधिक जम आते है। अतः इन्हें खुरपी तथा हाथ से निकाल देना चाहिये। निकाई गुडाई के समय बीमार तथा आवश्यकता से अधिक पौधों को भी निकाल देना चाहिये। जिससे पौधों को बढने तथा फैलने के लिये पर्याप्त स्थान मिल सके।

पालक की जातियां

भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान द्वारा प्रस्तावित किस्में—

(1) **वर्जीनिया सवोध** :—इस किस्म के बीज काँटेदार तथा पत्तियाँ फफोलेदार व गहरे हरे रंग की होती है। यह 25-30 दिन मे कटाई के योग्य हो जाती है।

(2) **अर्ली स्मूथ लीफ** .—इसके पत्ते नुकीले शीर्ष वाले तथा बीज चिकने होते हैं। यह भी 25-50 दिन मे कटाई के योग्य हो जाती है।

(3) **आल ग्रीन** :—इसकी पत्तियाँ सदा गहरे हरे रंग की होती है। तथा यह कटाई तक 20-25 दिन का समय लेती है। यह जाति सबसे अधिक प्रचलित है। तथा इसकी उपज सबसे अधिक होती है।

महाराष्ट्र कृषि विभाग द्वारा प्रस्तावित किस्में

(1) **न० 51-16** :—इस जाति मे विटामिन सी० 41·5 मिली ग्राम प्रति 100 ग्राम मे होता है। यह जमने से पकने तक 72 दिन का समय लेती है।

(2) **न० 56-9** :—यह जाति जमने से पकने तक 57 दिन का समय लेती है। इसमें विटामिन सी 46 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम में होता है।

इन किस्मों के अतिरिक्त अन्य किस्में भी हैं जो इस प्रकार हैं—

बनारसी, लोग स्टेंडिग गार्डन पालक, कलूई बनारसी, खड़ा लखनऊ, लोंग स्टेंडिग राउंड आदि जातियाँ हैं।

पहाड़ी क्षेत्रों के **लिये जातियाँ** :—हार्डिग, राउंड लीफ ड्रा, लोंग स्टेडिग ब्लूम्सडसे तथा राउंड लीफ डच आदि जातियाँ हैं।

(2) **मेथी की जातियाँ** :—

भारतीय कृषि अनुसंधान सथान द्वारा प्रस्तावित की गई किस्में—

(1) **पूसा अर्लीबंचिग** :—यह पकने तक 125 दिन का समय लेती है।

(2) **कसूरी सेलेक्शन** :—यह देर से बोई जाने वाली जाति है। इसको पकने में 165 दिन लगते हैं।

इनके साथ-साथ ई० सी० जाति भी भारतीय कृषि अनुसधान द्वारा प्रस्तावित हैं।

महाराष्ट्र कृषि विभाग द्वारा प्रस्तावित की गई किस्में

(1) **न० 47** :—इस जाति की पैदावार अन्य जाति की अपेक्षा 20% अधिक होती है। तथा इसमें 166 6 मिली ग्राम विटामिन सी० प्रति 100 ग्राम में पाया जाता है।

(2) **न० 14** —इस किस्म में 156·6 मिली ग्राम विटामिन सी० प्रति 100 ग्राम में पाया जाता है।

इनके अतिरिक्त दूसरी उन्नत किस्म मेथ्रा है जो कि अधिकतर चारे के लिये उगाई जाती है।

(3) **चौलाई की किस्में** :—

इसकी मुख्यत· दो जातियाँ है जो कि भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा प्रस्तावित की गई है—

(1) **छोटी चौलाई** :—यह छोटी पत्ती वाली तथा गर्मी में जल्दी पकने वाली जाति है।

(2) **बड़ी चौलाई** :—इसका तना मोटा तथा पत्तियाँ बड़ी होती है।

कटाई :—इन फसलो की कटाई उस समय की जाती है जबकि पत्तियाँ मुलायम तथा हरी होती हैं। यह कटाई बोने के 20-25 दिन बाद की जाती है तथा फिर 8-10 दिन के अन्तर से कटाई करते रहते है।

उपज :—इन सब्जियों की पैदावार बीजों की किस्म, भूमि की उर्वरता तथा सिंचाई के साधनों पर निर्भर करती है। इनकी औसतन उपज 80-100 कुन्तल प्रति हैक्टर होती है।

रोग तथा कीट :—हरी सब्जियों को हानि पहुँचाने वाले कीट तथा बिमारीयाँ निम्नलिखित है।

(1) **पीथियम आदि गलन रोग** :—इस रोग मे अंकुर जमीन के उपर आने से पूर्व ही सड़ जाते है। और नष्ट हो जाते है।

बचाव :—इस बीमारी से फसल को बचाने के लिये सेरेसन या एग्रोसीन जी० एन० के 0·2% घोल से उपचारित करते है ।

(2) **चितकबरा रोग** :—इसके प्रभाव में पौधों की वृद्धि रुक जाती है । पत्तियों पर हल्के पीले रंग के धब्बे पडने लगते हैं और पत्तियो का आकार छोटा हो जाता है ।

बचाव :—इससे फसल को बचाने के लिये रोगी पौधों को खेत से निकाल कर नष्ट कर देना चाहिये ।

इन सब्जियों के कीट .—

(1) **पालक की सूंडी** :—यह पत्तियों को खाकर उनमें छेद कर देती है । जिससे पत्तियाँ सूखकर गिर जाती है ।

बचाव :—इसके बचाव के लिये 0·1% का थायोडान का घोल छिड़कना चाहिये । जिससे सूंडी मर जाती है । और फसल हानि से बच जाती है ।

(2) **माहूकीट** ·—ये साधारणत. छोटे होते है तथा समूह में पाये जाते हैं । ये पत्तियों का रस चूसते है । इससे पत्तियों की वृद्धि रुक जाती है । और पैदावार कम होती है ।

बचाव :—इसके बचाव के लिये भी थायोडान का 0 1% का घोल छिड़कना चाहिये ।

सावधानी :—यह विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये कि जब किसी रोग तथा कीट को खत्म करने के लिये कोई भी दवा प्रयोग की जाये तो कम से कम 6-7 दिन तक सब्जियों की पत्तियो को प्रयोग में नहीं लाना चाहिये ।

REFERENCES

1. Anonymous 1968 Aapki angan wari ke liye saag sabjiyan. Unant krishi, VI (8), 4-6.
2. Bhartiya, Vishgyon dwara likhit. 1972 Hari Pattidar sabjiyan. Bhartya Krishi gyan kosh. 231-232.
3. Bhise, S. R. and Paul, H. G. 1956 Naye karya karam me kheti ki Shik Shakhan Ka Sthan Hindustani Talimi Sangh, Seva gram. M. P. Kheti Shiksha. V, 1-4.
4. Chaturvedi, B. Prasad, Gupta, Om Prakash and Kamble, Ram 1969 Methi kyon aur kaise ugayen. Unant Krishi. VIII (9), 16-21
5. Chaturvedi, B. Prasad, Gupta, Om Prakash and Kamble, Ram 1970 Subji ki Kuchh nai Kismen. Unatt Krishi. X (12), 26.

6. Chaturvedi, B. Prasad, Gupta, Om Prakash and Kamble, Ram 1972 Palak ki adhik upaj kaise le. Unant Krishi. X (5), 10.

7. Chaudhary, B. 1967 Leafy Vegetables. Vegetables. National Book Trust India New Delhi. (9), 186-191, 195-196.

8. Chaudhary, B. 1970 Leafy Vegetables. Vegetables (10), 170-174.

9. Chaudhary, D.V.S. 1968 Some useful Vegetables. Vegetable production in India. Ram Prasad and Sons Agra-3. II ed. 370-371.

10. Chaudhary, Vishavajit 1968 Hari pattidar Sabjiyan. Sabjiyan. National Book Trust India, New Delhi. 175-176, 180-186.

11 Daji, J. A., Raghuvan. D and Shahney, Kalidas 1961 Leafy vegetables. Hand book of Agriculture. I. C. A. R. (I) 355-356.

12. Dhaundhyal, Shiva Prasad 1965 Tarkaryan ka vargikaran. Adhunik Krishi Vigyan. Hindustani Book Depot Aminabad Fatehganj Lucknow. (IX). 406.

13. Dhesi, Nazar and Nandpuri, S. K. 1962 Group II green. Vegetables growing in Punjab. 104-106.

14. Ghos, A. K. and Singh, R P. 1967 Improved Varieties of Vegeatable crops. Hand book of Agronomy. Kitabistan. 17-A Kamla Nehru Road Allahabad. (12), 92-93.

15. Gupta, K. N. 1961 Nursery aur uski raksha tatha Tarkaryon ke bone ka samaya. Udyan vigyan. Raj Kumar Press book Depo Lucknow. (V) 122-129.

16. Jain, M K. Kumar, Krishan & Raghavakurup, C.G. 1967 Leafy vegetables. Hand book of Agriculture. I C. A. R. (C), 400-401.

17. Joshi, B. S. and Singh, H. B. 1960 Cultivated leafy Vegetables. Our Leafy vegetables. Directorate of horticulture. Ministry of food and Ag. 56 (2), : 32-40

18. Kumar, L.S.S. and etal 1963 Leafy vegetables. Agriculture in India Asia Publishing House New Delhi. (II), 168-169.

19. Mehta, Y. R. 1972 Sabji ki faslon par niryat abhi mukhya nusandhan N.S. C. Bulletin. VIII (3 and 4) : 3-6.

20. Mishra, Shiva Gopal and Tiwarı, Ramesh Chand 1967 Saag Sabjiya Tarkaryan Krishi Shastra ki Roop Rekha. Hındı Pracharak pustakalya P. B. No. 70 varanasi– 255-257.

21. Sharma, R Prasad 1965 Methı ki Khetı. Sachitra Krishi Vıgyan. Bharatı Bharat Prakashan, Western Kachahari Road Meerut. (III) : 409-410.

22. Singh, Nempal and Vishvamitra. 1972 Palak ki adhik upaj kaise le. Unant Krishi. III (5), : 10-11.

23. Sıngh, S. R. Subhag 1963 Harı Pattıdar Sabjiyan, Bhartiya Krishi gyan kosh. I. C. A. R New Delhi (3) : 401-402.

24. Vıas, Narayan Dulichand 1962 Ve saag sabjıyan jinke danthal aur pattyan kam aati haın Sasta Sahitya mandal New Delhi. (X) : 160, 166 168.

25. Yadava, S. C. Yadav, S. S. 1965 Rabi ki fasal me honewalı sabjıyan. Bharat ki Sabjiyan Kailash Pustak Sadan, Bhopal : Gwalıor. 74-77.

गृह वाटिका से वर्षभर सब्जी प्राप्त करने की योजना

जगनसिंह
बी० एड० (कृषि)

महत्व: —

आज के विश्व में गृह उद्यानों का विकास जापान और अमेरीका की सफल व्यवस्था की देन है। वहां प्राय: अधिकाश दैनिक आवश्यकता की तरकारिया अपने गृह उद्यानो मे ही लगा देते हैं, अमेरिका के कृषि आकडो से पता चलता है कि सन् 1960 मे वहा गृह उद्यानो से लगभग 750 करोड़ रुपये मूल्य की सब्जी उगाई गई थी। यद्यपि ग्रामीण परम्परा में भी गृह उद्यानों की व्यवस्था अतीतकाल से चली आ रही है। जिसके परिमाण हमें उपनिषद, रामायण, और महाभारत में अनेक स्थलों पर मिलते हैं। किन्तु उस व्यवस्था में चिकित्सा प्रमाण सम्बन्धी पौधे तथा सुगंधित पेड़ पौधे उगाने पर विशेष ध्यान दिया जाता था। आज भी प्रत्येक ग्रामीण घर में तुलसी, गेंदा, सदाबहार, तथा अजूबा जैसे पौधों से सजा छोटा सा उद्यान मिलता है। किन्तु अभी तक उद्यान इतने व्यवस्थित नही हैं कि उनसे परिवार की माग का अंश पूरा हो सके।

सब्जिया सन्तुलित आहार के लिये आवश्यक अव्यव प्रदान करती हैं। सब्जियों से, प्रोटिन विटामिन्स, खनिज, लवण और रफेजेज प्राप्त होते है। पालक गाजर में विटामिन 'ए'। चुकन्दर, करेला, मिर्च, टमाटर और मैथी, पालक, में विटामिन 'सी' पाया जाता है। रफेजेज भी भोजन का आवश्यक अग है। जो कि अम्लीयता को नष्ट करता है और पाचन के अपाच्य अव्यवों को शरीर से बाहर निकालने में सहायक है।

उद्यान कहां हो सकते हैं.—

गृह उद्यान का तात्पर्य उस वाटिका से होता है जो घर के निकट हो और जिससे प्रतिदिन की साक-भाजी तथा फल मिल सके।

ये उद्यान:—

1. घर के अहाते।
2. घर के पीछे के मार्ग में।
3. सरकारी दफतरों, क्लबों में।
4. विद्यालयो मे।
5. चिकित्सालयों तथा जेलों आदि के साथ बनाये जा सकते है। इनमें अनेक आकार और विन्यास को कोई महत्व न देकर उनका प्रमुख उद्देश्य सब्जियों तथा फलों की प्राप्ति होता है।

गृह वाटिका के लिये कुछ आवश्यक बातें:—

1. **निवास से निकट हो'—**

चूंकि गृह उद्यान में अतिरिक्त समय में कार्य किया जाता है इसलिये वह निवास के निकट होना चाहिये ।

2. **स्त्रिया और बच्चे कार्य कर सकें:—**

प्राय. अपने यहाँ स्त्रियो को कुछ समय मिल जाता है जिस से वे अपने समय का सदुपयोग कर अपने गृह उद्योग में कार्य कर सकती हैं जबकि स्थान निवास के पास हो ।

3 **सिंचाई की उचित व्यवस्था —**

भारत वर्ष गर्म देश है, यहाँ तरकारियों को अधिक जल की आवश्यकता होती है । अत' उद्यान की सफलता के लिये यह वाछनीय होता है कि सिंचाई के जल की अच्छी व्यवस्था हो तो गृह उद्यान को घर के पास रखकर घरेलू कार्यों से बचे जल को तरकारियों के उपयोग में लाया जा सकता है । घाघ ने कहा है—'तरकारी, है तरकारी जामे पानी की अधिकारी ।'

4 **सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता:—**

अधिकाश साक-सब्जियां प्रकाश ही चाहती है । परन्तु मूली, गाजर, प्याज, लहसन, अदरक, टमाटर, बैंगन, अरबी, हल्दी, पालक आदि कम सूर्य प्रकाश में भी अच्छी प्रकार चलती है । इसलिये दीवार के उत्तर में या उद्यान वृक्षो के साये मे लगाकर लाभ उठाया जा सकता है ।

5 **लू से बचाव:—**

गृह उद्यान को लू से बचाने के लिये पश्चिम दिशा मे सघन झाड़ी लगाई जा सकती है या केला आदि लगा सकते है ।

6. **रकबा —**

उद्यान के लिये चुने गये स्थान का क्षेत्रफल ऐसा होना चाहिये कि उसमे ऋतु की प्राय. सभी सब्जियाँ उगाई जा सके, व्यवस्थित अधिक भूमि होने पर सब्जियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे फलदार वृक्षो की भी व्यवस्था की जा सकती है, जो कम समय में फल देना प्रारम्भ कर दे तथा अधिक स्थान न घेरे ।

गृह उद्यान का नियोजन

गृह विज्ञान का नियोजन प्रयुक्त भूमि के आकार पर निर्भर करता है । इनसे अतिरिक्त उसका ढाल अथवा उपयोग में लाई जाने वाली विधियाँ भी विचारणीय होती है । यदि क्षेत्र कम है और कर्षण कार्य हाथों से ही किया जाना है तो क्यारियो को पास पास तथा छोटा रखना चाहिये ।

यदि भूमि की सुविधा होतो यह निश्चय कर लेना चाहिये कि परिवार की आवश्यकता के लिये कितनी भूमि में गृह उद्यान प्रारम्भ किया जाये । उद्यान के लिये इस कथन को सदैव ध्यान में रखना चाहिये कि **'बड़े किन्तु बीरान उद्यान की अपेक्षा छोटा किन्तु व्यवस्थित गृह उद्यान ही उत्तम होता है ।'**

उद्यान की उचित देख-रेख से कम भूमि से ही अधिक और उत्तम फसल ली जा सकती है। सामान्यत: 6 व्यक्तियों के परिवार के लिये 1000 वर्ग मीटर अर्थात $\frac{1}{10}$ हेक्टर भूमि की सिफारिश की जाती है इसमें कुछ भाग खाद्यान्नो के लिये रक्खा जाना है।

साधारणत: जहा तक सम्भव हो गृह वाटिका की आकृति आयताकार रखनी चाहिये (I) 150′×96′ और (II) 75′×30′ का बगीचा एक परिवार की सब्जी को पूरा कर सकता है।

हम यहाँ 6 व्यक्तियों के परिवार के लिये 300 वर्गमीटर क्षेत्र जो सभी दृष्टियों मे उपयुक्त होगा इनमें सब्जियों के साथ पोषक फलदार वृक्षों की भी व्यवस्था सम्भव होती है फलदार पौधों तथा फैलने वाली तरकारियों को सदैव किनारों की ओर ही लगाना चाहिये जिससे वे दूसरे पेड़ पौधों की वृद्धि में बाधा न डाल सकें। शेष बची भूमि को 4 बराबर हिस्से में बांटकर उसके बीच में रास्ते दे देने चाहिये। रास्ते की चौड़ाई अधिक से अधिक एक मीटर तक की रखी जा सकती है।

इसके बाद प्रत्येक भाग को छोटी छोटी क्यारियों मे बांट लेते हैं। इन क्यारियों का आकार लगभग 10 वर्ग मीटर रहना चाहिये। इन्हीं क्यारियों में आवश्यकता की सब्जी उगाई जाती है।

विन्यास में निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं

विन्यास की कुछ आवश्यक बातें —

1. गृह उद्यान के चारों तरफ झाड़ी अथवा चहारदीवारी की व्यवस्था हो।
2 बीच के मुख्य मार्ग की चौडाई $\frac{1}{2}$ से 1 मीटर हो।
3. क्यारियों के बीच के रास्ते $\frac{1}{2}$ मीटर से अधिक न हो।
4. सिचाई की मुख्य नाली यदि हो सके तो पक्की ही रक्खी जाये या फिर रबर की नली से पानी दिया जाये।
5. मुख्य नाली यदि पक्की हो तो मुख्य मार्ग के किनारे किनारे ही बनाई जाये।
6. सिंचाई की नालियो कुछ ऊँची हो जिससे कि क्यारियों में पानी अच्छी प्रकार पहुँच सके।
7. मुख्य मार्ग के किनारे छोटे छोटे फलदार पौधे जैसे पपीता लगाया जा सकता है। वैसे स्थाई पौधों को उद्यान में एक और ही लगाना चाहिये।
8. क्यारियां उत्तर-दक्षिण में लम्बी हो तथा तरकारियों को पूर्व पश्चिम दिशा मे ही बोया जाये। जिससे कि पौधों को अधिक प्रकाश मिल सके और निकाई गुडाई में सुविधा रहे। इससे उनके गिरने का भय नहीं रहता। क्योकि हवा पंक्तियों के बीच से निकल जाती हैं।
9 बहुवर्षीय सब्जी जैसे असपरागस को एक और ही रखना चाहिये जिससे जुताई गुडाई में असुविधा न हो।
10. शीघ्र उगने वाली सब्जियों को लम्बी पंक्तियों में एक साथ रखना चाहिये और दूसरी फसल देर तक रहने वाली लेनी चाहिये।

11. यदि भूमि कम हो तो ऐसी योजना बनानी चाहिये जिससे एक ही क्षेत्र से खरीफ-रबी तथा जायद तीनों फसलो को लिया जा सके ।

12. अधिक बढने वाली फसलो को एक साथ पश्चिम अथवा उत्तर की दिशा मे बोना चाहिये जिससे छोटे पौधों पर छाया न पडे ।

13. शीघ्र पकने वाली फसलों को मिलवा भी बोया जा सकता है । जैसे आलू गोभी की क्यारियो मे चारों ओर मूली, शलाद तथा पालक ।

14 गृह उद्यान की सफलता के लिये पहले पूरे वर्ष की योजना कागज पर बना लेनी चाहिये जिसमें प्रत्येक क्यारी का फसल चक्र भी निश्चित कर लिया जाये । इससे प्रत्येक सब्जी का रकबा आवश्यक बीज, खाद तथा उर्वरकों की मात्रा पूर्व ही विदित हो जायेगी ।

15. योजना ऐसी हो कि ऋतु की सभी तरकारियाँ समय पर मिलती रहें । बगीचे मे सब्जी उगाने के लिये निम्न लिखित फसल चक्र को अपनाना चाहिये ।

भिन्डी (जून-सितम्बर)	फ्रेन्चबीन (ग्वार) (अक्टूबर-फरवरी)	लोकी (मार्च-मई)
मूली (जुलाई-अगस्त)	मटर (अक्टू-मार्च)	करेला (मार्च-जून)
लोकी (जौ० नवम्बर)	टमाटर (दिसम्बर-जून)	
आलू (अक्टूबर-दि०)	प्याज (जन०-मई)	
गोभी (जू०-नवम्बर)	प्याज (दिसम्बर-मई)	भिन्डी (जू०-सि०)

खाद:—

15 किलो ग्राम गोबर की खाद 10वर्ग मीटर की क्यारी बनाते समय मिला देना चाहिये । बुवाई या पौध लगाते समय 160 ग्राम अमोनियम सल्फेट व 160 ग्राम सुपरफासफेट 10 वर्ग मीटर की क्यारी में दिया जाना उपयुक्त रहता है इसी प्रकार बुवाई के 4 सप्ताह बाद इसी प्रकार की क्यारी या, क्षेत्र मे खड़ी फसल में 160 ग्राम (अमोनियम-सल्फेट) और दिया जाता है वैसे कहा जाता है कि **"गृह वाटिका के लिये अच्छा खाद उसके मालिक की पद धूल हैं।" निम्न तालिका में सब्जी की क्यारियों में उर्वरक प्रयोग करने की दर दी गई है ।**

तालिका

दो सौ वर्ग भूमि के सब्जी के क्यारियों में उर्वरक प्रयोग करने की दर

सब्जियों के नाम	प्रयोग किये जाने वाले उर्वरकों की मात्रा			
	नत्रजन		फासफोरस	पोटाश
खादों के नाम	अमोनियम सल्फेट या कैलसियम अमोनियम नाइट्रेट		सिंगल सुपर फासफेट	सल्फेट आफ पोटाश
देने का समय	पौध लगाते समय	टापड्रेसिंग	पौध लगाते समय	पौध लगाते समय
खरबूजा तरबूजा करेला टिन्डा मूली तोरई, लौकी	आधी प्याली	—	आधी प्याली	$\frac{1}{4}$ प्याली
शलजम गाजर बीट	,, ,,	$\frac{1}{2}$ प्याली	,, ,,	,, ,,
ग्वार लोबिया सेम	$\frac{1}{4}$ प्याली	—	$\frac{1}{2}$ प्याली	$\frac{1}{2}$ प्याली
फूल गोभी बंद गोभी गाँठ गोभी	,, ,,	1 प्याली	$\frac{3}{4}$ प्याली	$\frac{3}{4}$ प्याली
टमाटर आलू	$\frac{1}{2}$ प्याली	$\frac{1}{2}$ प्याली	2 प्याली	1 प्याली
बैंगन मिर्च	1 प्याली	1 प्याली	2 प्याली	1 प्याली
लहसुन	1 प्याली	1 प्याली	$\frac{1}{2}$ प्याली	$\frac{1}{4}$ प्याली
प्याज	1 प्याली	—	1 प्याली	1 प्याली
मटर	$\frac{1}{4}$ प्याली	—	$\frac{1}{2}$ प्याली	$\frac{1}{2}$ प्याली
भिन्डी	$\frac{1}{2}$ प्याली	$\frac{1}{2}$ प्याली	$\frac{1}{2}$ प्याली	$\frac{3}{4}$ प्याली

नोट:—प्रत्येक सब्जी के प्लाट (दो सौ वर्ग फीट) में पौध लगाने के 10-15 दिन पहले (उपरोक्त उर्वरकों के अतिरिक्त) 5 टोकरी गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट मिलाना जरूरी है।

गृह वाटिका के लिये यन्त्र व उनका खर्च.—

गृह वाटिका में निम्न यन्त्रों को खरीदने के लिये करीब 60-70 रुपये की आवश्यकता पड़ती है।

हैन्ड हो	2	मूल्य 6 रु	फावड़ा	2	मूल्य 12 रु.
हैन्ड स्प्रेयर	1	मूल्य 12 रु.	झारा	2	मूल्य 12 रु.
हैन्ड डस्टर	1	मूल्य 12 रु.	कुदाली	3	मूल्य 6 रु.
कीट नाशक औषधि		8 रु.			

बहुवर्षीय पौधे:—

इसमें निम्न पौधे लगाये जा सकते हैं।

ड्रम स्टिक	एक पक्ति
केला	पाँच
पपीता	पाँच
टेपिओका	दो
सतावर	दो छोटी कतार

सब्जी उगाने की मासिक योजना:—

जनवरी — धनिया
फरवरी — भिण्डी, तोरई, अरबी, लौकी, पालक, बैंगन, मिर्च।
मार्च — टिन्डा, भिन्डी, पोदीना, और उपरोक्त जो न बोई गई हो।
अप्रेल — भिन्डी
मई — भिन्डी, ककोरा-तोरई-मूली।
जून — खीरा, अदरक, हल्दी, करेला, तोरई, लौकी, सेम, रतालू भिन्डी अरबी।
जुलाई — फूल गोभी, ग्वार, लौकी, भिण्डी, टमाटर, सेम, मिर्च, पालक, चुकन्दर।
अगस्त — फूल गोभी, ग्वार, लौकी, भिन्डी, टमाटर, मिर्च चुकन्दर, मूली।
सितम्बर — सोफ, पत्ता गोभी, पालक, गाठ गोभी, आलू।
अक्टूबर — सरसों, सलाद, पुदीना, आलू, गाजर, शलजम, मूली, लहसुन, गांठ गोभी।
नवम्बर — आलू, पत्ता गोभी, गाठ गोभी, मूली, मटर, आदि।
दिसम्बर — पालक, टमाटर, लौकी, करेला, आलू।

सारिणी संख्या 1

गृह वाटिका के लिये ग्रीष्म ऋतु का चार्ट

क्र. सं	सब्जी का नाम	बीज दर प्रति वर्गमीटर	बोने का समय	पौधे से पौधे की दूरी (से. मी.)
1	अरबी	1.8 कि. ग्रा.	फरवरी-मार्च	45 × 30
2	लौकी	3-4 बीज प्रति थाला	फरवरी-जून	150 × 90
3	करेला	4-6 बीज प्रति थाला	,, ,,	120 × 90

क्र. सं.	सब्जी का नाम	बीज दर प्रति वर्ग मीटर	बोने का समय	पौधे से पौधे की दूरी (से. मी.)
4	मिर्च	4 ग्राम	मार्च-जुलाई	60 × 30
5	परवल	4-6 रूट लेट प्रति थाला	,, ,,	150 × 90
6	लोबिया	15 ग्राम.	मार्च-जून	60 × 15
7	ग्वार	55 ग्रा.	,, ,,	60 × 30
8	बैंगन	6 ग्रा.	फरवरी-जून	60 × 30
9	भिन्डी	30 ग्रा.	फरवरी-जून	45 × 30
10	खरबूजा	4 ग्रा. (4-6 बीज)	जनवरी	150 × 90
11	तरबूज	30 ग्रा	,	150 × 120

सारिणी संख्या 2

खरीफ या वर्षा ऋतु के मौसम की सब्जियाँ

क्र. सं.	सब्जी का नाम	बीज दर 9 वर्ग मीटर	बोने का समय	पौधे से पौधे की दूरी (सेन्टी मीटर में)
1	मिर्च	4 ग्रा.	जून-जोलाई	60 × 45
2	सिमला मिर्च	4 ग्रा.	(नरसरी में)	60 × 30
3	टमाटर	3 ग्रा.	,, ,,	45 × 30
4	फ्रेंच बीन	55 ग्रा	जून—जौ.	30 × 15
5	लोभिया	30 ग्रा	जून—जौ.	60 × 15
6	ग्वार	30 ग्रा	जून—जौ.	45 × 30
7	तोरई	4 बीज प्रति थाला	जून—जौ	दीवार या चार दीवारी
8	चचेंडा	,, ,,	मार्च—जौ.	,, ,,
9	पेठा	,, ,,	,, ,,	240 × 120

क्र.सं.	सब्जी का नाम	बीज दर प्रति 9 वर्ग मीटर	बोने का समय	पौधे से पौधे की दूरी (सेन्टी मीटर में)
10	करेला	4 बीज प्रति थाला	मार्च—जुलाई	120 × 90
11	सेम	,, ,,	,, ,,	120×90
12	चौलाई	15 ग्रा.	फरवरी-जुलाइ	छिटकवाँ विधि से
13	पालक	110 ग्रा.	सितम्बर-फरवरी	,,

सारणी संख्या 3

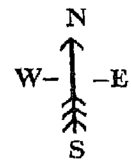
रबी या शरद ऋतु के लिये सब्जियाँ

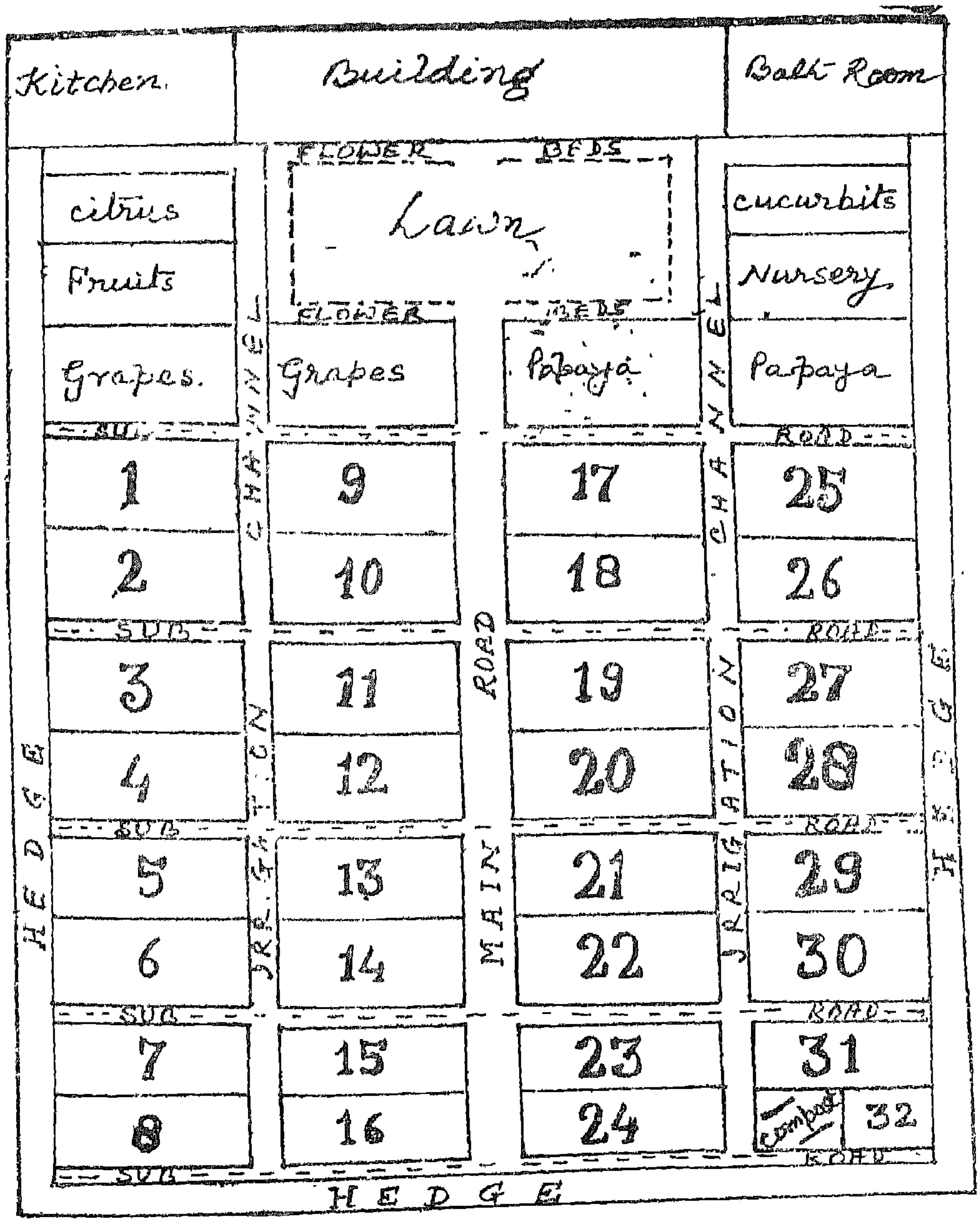
क्र सं.	सब्जी का नाम	बीज दर प्रति 9 वर्गमीटर	समय	पौधे से पौधे की दूरी (सेन्टी मीटर में)
1	मटर	340 ग्राम	अक्टू-नवम्बर	45×75
2	गाजर	15 ग्राम	अक्टू-नवम्बर	15×15
3	चुकन्दर	30 ग्राम	अक्टू-नवम्बर	30×15
4	शलजम	30 ग्राम	अक्टू-दिसम्बर	30×15
5	आलू	1.5 ग्राम	अक्टू-दिसम्बर	45×22.5
6	सलाद	15 ग्राम	अक्टू-दिसम्बर	30×30
7	बन्द गोभी	3 ग्राम	सितम्बर-अक्टू	45×30
8	गांठ गोभी	3 ग्राम	,, ,,	30×15
9	प्याज	30 ग्राम	,, ,,	15×10
10	टमाटर	4 ग्राम	,, ,,	60×15
11	टिण्डा	30 ग्राम	सितम्बर अक्टू	120×120
12	पालक	225 ग्राम	अक्टू-दिसम्बर	15×15

MODEL LAYOUT PLAN OF A KITCHEN GARDEN

Size—56' × 75'

1. Size of Plot 8' × 16'
2. Roads 3.5'
3. Sub Roads 1.5'
4. Irrigational Channel 1.5'





Cropping Scheme of Layout Plan

S. No.	Plot No.	Rotations
1	1	Cauliflowers (July to Nov.), Raddish (Nov.-Dec.) and Onion (Dec.-June.).
2.	2	Cauliflower (15 July to Dec.), Onion (Dec -June).
3.	3	Maize (June to Sept.), Potato (Oct.-Jan) and Onion (Feb. to June).
4.	4,5	Brinjal+Palak (July to March), Bhindi (March-June).
5.	6,7	Tomato (Aug.-Jan.), Bottle gourd (Feb. to July).
6.	8	Kulfa (July to Sept.), Cauliflower (Oct.-Feb.) and Onion (Feb. to June).
7.	9,10	Tinda (Feb.-Aug.), Peas (Sept.-Jan.).
8.	11,12	Bhindi (June-Sept.), Potato (Sept.-Dec) and Botte-gourd (Jan.-June).
9.	13,14	Brinjal (May to Sept.), Cabbage Mixed Lettuce (Oct-March.) and Bhindi (April to June).
10.	15,16	Chillies (Feb.-Jan.), Tinda (Feb.-July).
11.	17,18	Tomato (Aug.-Jan.), Tinda (Feb.-July).
12.	19	Palak (July to Dec.), Loki (Feb.-July).
13.	20,21	Cauliflower (Aug.-Oct.), Garlic (Nov.-April), and Bhindi (April-Aug.).
14.	22-23	Tomato (Dec.-June), Bhindi (June-Oct.).
15.	24	Colcasia (July to Dec.), Karela (Jan -June)
16.	25-26	Sweet Potato (July-Dec.), Kharbuza (Jan.-June).
17.	27	Chaulai (May-Aug.), Carrot (Sept.-Jan.), and Brinjal (Feb -May).
18.	28-29	Ridge gourd (June-Oct.), Peas (Oct.-Jan.), and Sponge gourd (Jan.-June)
19.	30-31	Soyabeans (April-August), Methi (Sept.-Nov.), and Beetroot (Nov.-Feb.).
20.	32	Ginger & Turmeric.

Analysis Chart of Availability of Vegetables, (Monthwise)

S. No.	Month	Crop
1.	January	Potatoes, Tomato, Peas, Cabbage, Lettuce, Garlic. Carrot, Beet root.
2.	Feburary	Brinjal, Potato, Peas, Cabbage, garlic, Tomato, Beet root.
3.	March	Onion, Brinjal, Loki, Cabbage, Potato, Garlic, Tomato, Karela, Kharbuza, S. Gourd.
4.	April	Onion, Bhindi, Loki, Tinda, Chillies, Garlic, Tomato, Karela, Kharbuza, Brinjal, S. Sourd.
5.	May	Onion, Bhindi, Loki, Tinda, Chillies, Tomato, Karila, Kharbuza, Brinjal, S. Gourd.
6.	June	Onion, Bhindi, Loki, Tinda, Chillies, Tomato, Karela, Kharbuza, Chaulai, S. gourd, Beans.
7.	July	Loki, Kulfa, Tinda, Bhindi. Chillies, Brinjal, Palak, Chaulai, S. Beam.
8.	August	Maize, Palak, Kulfa, Tinda, Bhindi, Brinjal, Chillies, Chulai, Torai, S. Beans.
9.	Sept.	Cauliflowers, Maize, Palak, Brinjal, Kulfa, Bhindi, Brinjal, Bhindi, Cococasia, Torai.
10.	Oct.	Cauliflower, Palak, Brinjal, Tomato, Turnip, Bhindi, Colocasic Torai, Methi.
11.	November	Cauliflower, Brinjal, Tomato, Peas, Potato, Letuce, Turnip, Palak, Colocasia, S. Potato, Methi.
12.	Dec.	Raddish, Cauliflower Potato, Brinjal, Peas, Tomato, Cabbage, Lettuce, Palak, Calocasia, Sweet Potato, Carrot.

REFERENCES

1. Gandhi, S. R. 1968 Papaya, I. C. A. R. XI (V) : 24-28.
2. Iser, K. L. 1971 Unnat Krishi, Directorate of Extension, New Delhi, VIII (I) : 21-23.
3. Joshi, Permod 1971 Growing vegetables, U. P. Agriculture University, Panth Nagar, Nainital, III (II) : 48.
4. Khaderker, D.N. 1955 Krishi Engineering, Directorate of Extension, New Delhi, 42-48.

5. Lal, Karam-chandani 1970 Intensive Agriculture, Farm Information unit, Directorate of Extension, New Delhi, VIII (I) : 21-22.

6. Mulwani, N. B. 1971 How to raise vegetable nurseries Directorate of Extension, leaf let No. 75, 2-3.

7. Nair, B K. 1971 Indian Horticulture, I.C.A R , New Delhi, XVI (III): 5-11.

8. Reddy D. B. 1969 Plant protection Book, Directorate of Extension. New Delhi. 4-5.

9. Russel, T. A. 1969 Mist propagation of plants, paper prescribed in State Seminar on fruit in January. 1-10.

10. Shanker, Gouari 1969 Phalsa Kheti XI (IV) : 22-24.

11. Singh, Harbhajan 1967 Bhindi cultivation in India, I. C. A. R., New Delhi, V (II), 19-21.

12 Srivastasva, S S. 1970 Improving Agri. Edu. in India N. C. E. R. T., New Delhi, 46-65.

13. Venkataratnam 1969 Raise a kitchen garden, Directorate of Extension, New Delhi, Information, leaf let No. 68, 9-12.

पपीता की उन्नत कृषि क्रियायें

इम्परुव्ड एग्रोनोमिक प्रेक्टिसेज आफ ग्रोविंग पपाया आन कौमरसियल स्केल इनक्लूडिंग इट्स लेटेस्ट वैराइटीज

बृगपाल सिंह,
बी० एड० (कृषि)

जन्म स्थान :

पपीता का जन्म स्थान उष्ण—कटिबन्धीय अमेरिका है। सोलहवीं सदी के मध्य मे इसे भारत मे लाकर उगाया गया।

उपयोग :

पपीता मीठा, पौष्टिक, स्वादिष्ट, शकर, डाइजैस्टिव फरमेंन्ट विटामिन्स ए, बी, सी, तथा पपैनयुक्त फल है पपैन डाइजेशन रोगों मे लाभ दायक है। पपीता से अचार बनाये जाते हैं। पपीता का कच्चा टुकडा कड़ा मांस गलाने के काम आता है। पके फल फलाहार तथा अधपके फल शाक-भाजी के काम आते हैं।

आर्थिक लाभ :

पपीता लगाने के एक वर्ष बाद फल देता है। अन्य कोई पौधा इतनी जल्दी फल नही देता है। आम, अमरुद आदि के बड़े-बड़े बाग लगाते समय उनके बीच की खाली जगह में पपीते के पेड फिलर के रूप में लगाये जाते है। पपीते के खेत में भी अगेती सब्जियाँ बोई जा सकती हैं।

जलवायु :

पपीता के लिये गर्म-तर जलवायु उत्तम रहती है। यह उष्ण-कटिबन्धीय क्षेत्रों मे भली भाति उगता है। ग्रीष्म ऋतु में तापक्रम 100 फा० से 110 फा० तक होना चाहिये। पपीते को तेज आंधी, लू, पाला हानि पहुंचाते है।

भूमि :

पपीता के लिये अच्छे जल निकास वाली दोमट, बलुई दोमट भूमि ठीक होती हैं।

जातियाँ :

वाशिंगटन : इस जाति का पेड़ छोटा होता है; फल अधिक लगते हैं। फल बड़े, अन्डाकार, ढेड से ढाई सेर वजन तक के होते है। मीठा, स्वादिष्ट, सुगन्धयुक्त, गूदा मोटा, बीज युक्त, चमकदार फल होता है। डठल बेगनी रंग के होते हैं।

हनीड्यू (मधु-बिन्दु) : इसके पेड़ मध्यम ऊंचाई के, तने पर फल अधिक नीचे से ही लगना शुरू हो जाते है। फल लम्बे, गूदा सुन्दर मीठा, सुगन्ध युक्त, कम बीज वाला होता है।

सी० श्रो० (1) : यह इम्परूव्ड स्ट्रेन है। पौधे ढाई से तीन फिट ऊंचे होने हैं। फल समान आकार के गूदा उत्तम, मीठा, चमकदार, सुन्दर सुगन्धयुक्त, समान रंग के, औसतन वजन ढेड किलो ग्राम होता है। फल तोडने में सुविधा रहती है।

रांची : इम्परूव्ड स्ट्रेन है। फल सुगन्ध युक्त, अन्डाकार मध्यम आकार, चमकदार पीले, मीठे होते है। फलो में नर व मादा बीजों का एक खास अनुपात होता है।

कुर्गहनी : पेड़ बड़े व मासल होते हैं। फल विभिन्न आकार के पौष्टिक, बीज रहित होते हैं। बरसात मे पकने वाले फल मीठे होते है।

सीलौन : फल मीठे, स्वादिष्ट, बड़े आकार के, पौष्टिक, चमकीले, सुन्दर होने है।

सिंगापुर : फल मीठे, सुगन्ध युक्त, सुन्दर, स्वादिष्ट, पौष्टिक चमकीले, बडे, कम बीज वाले होते है।

अन्य किस्में ' अमेरिकन, जैन्ट, मैमोथ, फिलीपाइन, बंगलोर, वेट्री टैक्सज, डबादन, इम्परूव्ड पैटरसन, रोडेनशिया, शेकफील्ड, बैंकाक आदि हैं।

पौध तैयार करना :

पौध के लिये रोपाई से दो माह पूर्व स्वस्थ बीजों को खूब तैयार क्यारी में आधा इंच गहरा पौधे से पौधे 2 इच तथा लाइन से लाइन 6 इंच की दूरी पर बीज बोकर तैयार करते हैं। आवश्यकतानुसार सिंचाई निराई आदि करते रहते है। दो माह वाद 9 इच ऊंचें पौधो को वगीचे के तैयार गढ्डो में लगाते है।

रोपाई की विधि :

पौधो की आपस की दूरी 10 फिट रखकर एक एकड में 435 गढ्ढे 2 फिट व्यास तथा 2 फिट गहरे खोदकर खाद व मिट्टी के मिश्रण (400 ग्राम अमोनियम सल्फेट, 600 ग्राम सुपर फोस्फेट, 10 किलो गोबर की सडी खाद) भर देना चाहिए। रोपाई के लिये पौधे को सारी जडो सहित गीली मिट्टी को काफी बडी थापी सहित उठाकर बिना किसी प्रकार की छेड़ छाड के स्वाभाविक अवस्था मे गढ्ढो में रोप कर हल्की सी सिंचाई कर देनी चाहिए। बगीचे के लिये ऊँचा स्थान चुनना चाहिये।

रोपाई का समय :—

विभिन्न स्थानों के मौसम के अनुसार रोपाई के तीन समय है :—

1—वर्षा ऋतु का आरम्भ (जून-जुलाई)

2—वर्षा ऋतु का अन्त (सितम्बर-अक्टूबर)

3—बसन्त ऋतु (फरवरी-मार्च)।

उत्तर प्रदेश मे जून-जुलाई मे पपीता की रोपाई ठीक रहती है।

खाद :

पपीते में खाद जुलाई-अगस्त और मार्च-अप्रैल के महीने में देना उचित है। खाद एफ० वाई० एम० की एक वर्ष में 6 माह के अन्तर से दो बार देते है। प्रति पेड़ प्रति वर्ष 36 से 45 कि० एफ० वाई० एम० 2 किलो अन्डी की खली, 1 किलो, रासायनिक खादों का मिश्रण (3 भाग सुपर फास्फेट, 1 भाग अमोनियम सल्फेट, डेढ भाग पोटेशियम सल्फेट) देना चाहिए।

सिंचाई :

पहली सिंचाई पौधे रोपते समय तथा शीत ऋतु में 10 या 12 दिन के अन्तर से और ग्रीष्म ऋतु में प्रति सप्ताह में एक बार सिंचाई करनी चाहिए।

फूल :—पपीता फरवरी तथा वर्षा ऋतु मे फूलता है। नर तथा मादा जाति के फूल अलग-अलग पेड़ो पर लगते है। फल लगने के लिये मादा पेड़ों में एक आध नर पौधा भी होना चाहिये वरना फल नही लगेंगे।

फल :—फरटीलाइजेशन की क्रिया के बाद फल तने पर पत्तों की जड में लगते है। कच्चे फलों का रग हरा तथा गूदा सफेद होता है। पके की छाल पर पीले रंग की झांई सी आ जाती है। गूदे का रंग कुछ-कुछ पीला हो जाता है। बोने के एक वर्ष बाद पौधे फूलने फलने लगते हैं।

फल तोड़ना :

पपीते के पूर्ण विकसित फलों को हल्के पीले पड़ने पर हाथ से ऐंठ कर सावधानी से तोड़ लेते है।

फल पकना :

जिन फलों को स्थानीय बाजारों में बेचना हो तो उन्हें पकाने के लिये कागज के एकहरे पर्त से ढक कर रख देते है। जिसमे कुछ समय के बाद उनका रंग नारंगी तथा गूदा पीले रंग का हो जाता है।

बाजार में बेचना :

पके फलों को स्थानीय अथवा निकटवर्ती मंडियो में भेजकर आढ़तियो के द्वारा कुंजडों के हाथो बेच दिया जाता है। दूर की मंडियों मे भेजने के लिये पपीतों को बांस की टोकरियो में कागज के एक पर्त के नीचे अथवा पुवाल मे ढककर हरी अवस्था में भेजा जाता है। मंडियों तक पहुंचते-पहुंचते ये फल पक जाते हैं।

उपज :

औसतन एक पेड़ से 30 या 40 फल प्रति वर्ष मिलते हैं। औसत उपज प्रति एकड़ 400 या 500 मन होती है। 30 हजार से 60 हजार पौंडस् प्रति एकड़।

कीड़े :

रेड स्पाइन्डर (माइट) : यह कीड़ा पपीते का भयानक शत्रु है। जो कि पके फलो और पत्तियों की सतह पर पाया जाता है। इसके आक्रमण से पत्तियां पीली और फल खुदरे ब्राउनिश रंग के हो जाते है।

रोकथाम : कीड़े को दूर हटाकर के रोग ग्रस्त पौधों पर गंधक की डस्ट छिड़के या डस्ट को लाइम सल्फर के साथ छिड़कना चाहिये ।

बीमारियाँ :

चित्ती रोग : यह एक छूतदार, विषाणु बीमारी है । इसके रोग के कारण पौधे के ऊपर की पत्तियों पर हरे पीले रग के फफोले से धब्बे दिखाई देते है । पत्तियां छोटी, मुड़कर सिकुड़ कर ऐंठ जाती है । फल ठीक आकार के नहीं बन पाते, कच्चे ही गिर जाते है ।

रोकथाम:—

(1) रोगी पौधों को उखाड कर जला दें ।

(2) बगीचे में अन्य खरवतवार न उगने दें ।

(3) रोग ग्रहणशील फसलों (टमाटर, तम्बाकू, मिर्च, जीनिया [एक फूल]) बगीचे के आस-पास न उगने दें ।

(4) जून से अगस्त तक पपीते के सभी पेड़ों पर मेटासिस्टाक्स का छिड़काव 14-14 दिन के अन्तर पर 1 लीटर प्रति 100 लीटर के हिसाब से करे ।

कोलार रोट:—

यह बिमारी जमीन में रहने वाली पिथियम एकानिडरमेटम फंगस से फैलती है । इसमें भूमि की सतह से छूने वाले स्थान से तना सड़ने लगता है । पंतियां सूख जाती हैं । जल निकास के कुप्रबन्ध व ताजी वायु भूमि में न पहुंचने के कारण भूमि गीली रहने पर फंगस पौधों पर हमला करती है ।

रोकथाम:—

(1) जड़ों के पास पानी नहीं ठहरने देना चाहिये । जल निकास का सुप्रबन्ध करें ।

(2) रोगी पौधो को उखाड़ कर जला दें ।

(3) मिट्टी की निकाई गुड़ाई करते रहें ।

एन्थ्रेक नोज:—

यह बिमारी फंगस से पैदा होती है । तनो, फलों पर हमला करती है फल हरी कच्ची हालत में रोगी हो जाते हैं । हल्के पीले रंग का धब्बा दिखाई देता है । धब्बेदार भाग धीरे धीरे नर्म पड़कर ब्राउन रंग का हो जाता है । अन्त में धब्बा फल के लगभग आधे भाग को घेर लेता है । बाद में यही धब्बा संकेद्रित छल्लो में और गुलाबी रंग के फफोले से पैदा हो जाते हैं । छाल व तने के रेशेदार भाग गर्म मौसम में सूख जाते है ।

रोकथाम:—

फलो तथा तनों को ब्राउन कागज से ढक कर छाया करें । फलों की शुरू की हालत में बरगन्डी मक्स्चर छिडककर ब्राउन कागज से ढक दे ।

पद गलन रोग:—

तने का आधार मुलायम, पानी में भीगा हुआ दिखाई देता है। छाल चटकने पर दुर्गन्ध युक्त तरल पदार्थ बहने लगता है। अन्त में पौधा गिर जाता है। रोग वर्षा में अधिक तीव्र होता है। यह जमीन में रहने वाली फंगस से होता है जो पौधे पर नमी में, खराब जल निकासी में, भूमि में हवा और प्रकाश न मिलने की हालत में आक्रमण करती है।

रोकथाम:—

(1) जल निकास का सुप्रबन्ध करें।
(2) तनों पर रोग के चिन्हों को खुर्च कर बोर्डी लेप लगा दे।
(3) सड़े गले रोग युक्त पौधों को उखाड़ कर जलाकर नष्ट कर दे।

REFERENCES

1. Dhondhiyal, Shive Prasad 1965 Fruit cultivation. Adhunic Krishi Vigyan. Hindustani Book Depot, Aminabad, Lucknow : 397.
2. Gandi, R. Shorab 1966 Improved Practices of Papaya. The Papaya in India : I. C. A. R. New Delhi · (2)
3. Kumar, L.S.S. & Kamoth, M.G. & others 1963 Fruit crops. Agriculture in India. II, Asia Publishing House Bombay : 141-143
4. Pal, B. P. 19(9 Produce Papya for Papain. Indian Horticulture I C. A. R. New Delhi. XIII (3) : 30.
5. Phadnis, N. A. & Bagde, T. R. 1969 Grow Papaya for Profit. Indian Horticulture, XIII (4): 12-14 and 25.
6. Randhava, Mahendra Singh. 1963 Varieties of Papaya, Agriculture and Animal Husbandry in India. I. C. A. R. New Delhi : 252.
7. Rao, V. N. Madhava, & Shanmugavely K.G. 1971 Papya Less seeded more nutritious. Indian Horticulture XVI (3) : 5-7.
8. Sharma, Shyam Prasad. 1965 Fruit Cultivation, Sachitra Krishi Vigyan, Bharat Bharatya, Prakashan, Western Kachehri Road, Merrut : 448-452.
9. Singh, Dr. Sham,& Murti & Dr. Krishan, S. & Katiyal, S. L. 1967 The Papaya. Fruit cultivation in India. I. C. A. R. New Delhi. 161-167

10. Singh, Dr. Shyam & Murti, & Dr. S Krishan, & Katiyal, S. L. 1967 The Papaya. Fruit cultivation in India. I. C. A. R, New Delhi : 175-183.

11. Singh, Dr. Ram Subhag. 1963 Fruit crops. Bhartiya Krishi Gyan Kosh, I. C. A. R New Delhi : 431-433.

12. Singh, Shri Sujan Agra 1971 Control of stem disease. Kisan Bharti, Pant Nagar. III (3) : 34.

अमरूद की उन्नति कृषि क्रियायें

टोढ़ी सिंह यादव
बी० एड० (कृषि)

प्रस्तावना:—

अमरूद भारतवासियों का एक लोक प्रिय फल है इसका जन्म स्थान उष्ण अमेरिका है। हमारे देश में लगभग 17 वी सदी से यह फल उगाया जा रहा है। इसकी भारत में 58,230 हैक्टेयर में खेती की जाती है। यह उत्तर प्रदेश में 24,780 हैक्टेयर बिहार में 11,210 हैक्टेयर, मध्य प्रदेश में 5,530 हैक्टेयर, महाराष्ट्र में 4,600 हैक्टेयर तथा बम्बई में 4000 हैक्टेयर मे उगाया जाता है। सभी राज्यो की अपेक्षा उत्तर प्रदेश मे इसकी खेती अधिक क्षेत्रफल में की जाती है। उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद, लखनऊ व फरूखाबाद आदि का फल प्रसिद्ध है। अच्छे सिंचाई के साधन होने पर व अधिक लू व पाले से बचाव होने पर यह पंजाब व राजस्थान में भी उगाया जा सकता है। लखनऊ 49 जाति को पूना शोध केन्द्र पर उगाकर अच्छे परिणाम प्राप्त किये हैं।

महत्व:—

अमरूद एक प्रिय फल है। इसके पके फल खाने में, अमरूद चटनी बनाने, चीनी के साथ पकाकर शर्बत बनाने, फल मक्खन बनाने में प्रयोग करते हैं। इस में एसकोर्बिक अम्ल के कारण अम्लीय गध आती है। अमरूद मे संतरे से 5 गुना व टमाटर से 10 गुना विटामिन 'सी' पाया जाता है। इसके अलावा विटामिन 'ए' और 'बी' लोहा, कैलसियम और फासफोरस भी पाया जाता है। गठिया रोग में यह फल हित कर होता है। इसकी मीठी चटनी हृदय को बलदायक व कब्ज में लाभदायक होती है। इसकी रासायनिक रचना में जल 76·1 प्रतिशत, प्रोटीन 1·5 प्रतिशत, चर्बी 0·2 प्रतिशत, खनिज पदार्थ 0·8 प्रतिशत, रेशा 6·9 प्रतिशत व शक्कर 14·5 प्रतिशत पाया जाता है।

जलवायु:—

अमरूद भारत के सिंचित क्षेत्रों में अधिक पैदावार देता है। यह उष्ण जलवायु का पौधा है समुद्र तल से 1000 मीटर की ऊँचाई तक इसकी खेती की जा सकती है। इसके लिए 102 से. मी. वर्षा जून से सितम्बर तक होनी चाहिए यह पौधा अधिक से अधिक 115 फारेनहाइट व कम से कम 41 फारेनहाइट ताप सहन कर सकता है। पौधे की छोटी अवस्था में अधिक पाला व लू हानिकर होती है।

भूमि:—

अमरूद की फसल भारत की अधिकांश भूमियों की जा सकती है परन्तु अधिक उपयुक्त भूमि बलुई व बलुई दुमट सर्वोत्तम रहती है जिसमें जल निकास की सुविधा हो। जिसमें अन्य बागवानी के फल न उगे वह भी भूमि इसकी पैदावार दे सकती है। यह अम्लीय व क्षारीय भूमियों मे भी उगाया जा सकता है

इसके लिए 'पी. एच.' 4.5 से 8.5 की उपयुक्त रहती है। यह उथली चट्टानी दकन की भूमि व उथली दुमट बम्बई व दकन की भूमि मे भी उगाया जा सकता है। हल्की बलुई गुजरात की भूमि में भी उगाया जा सकता है।

अमरूद की जातियाँ निम्नलिखित हैं:—

1. इलाहाबादी सफेदा—फल बड़े गोल, छिल्का चिकना, गूदा सफेद, बीजों की संख्या मध्यम उत्तम मीठा।
2. हफसी—आकार गोल, छिल्का चिकना, गूदा लाल, इलाहाबादी सफेदा से कम मीठा।
3. करेला—फल लम्बा, छिल्का खुरदरा, करेले की भांति दबाव उठा हुआ गूदा सफेद व मीठा।
4. चित्तीदार—सफेदा से मिलता हुआ, छिल्के पर चित्तिया पाई जाती है।
5. अमरूद बीजरहित—छोटा, अनियमित आकार, बीजरहित, गूदा सफेद व पीला कम मीठा।
6. अमरूद सेव—सेव के आकार का गुलाबी रग का छिल्का, सेव से विटामिन 'सी' में अधिक।
7 अमरूद नाशपाती—यह नाशपाती के आकार का होता है।
8. लखनऊ 49—सतह भद्दी, रंग पीला, रस सफेद,
9 धारवाल—बम्बई व दकन में बडे पैमाने पर उगाया जाता है। गूदा सफेद कठोर रंग लाल।
10 नासिका—नासिक जिले की जाति है, मजबूत गूदा, अमरूद नाशपाती जैसा।

प्रसारण:—

अमरूद का प्रसारण दो तरह से किया जाता है।

1. **बीज द्वारा प्रसारण —**

इसमें एक स्वस्थ पौधे से स्वस्थ फल को लेकर उसके बीजों को अलग करके धोकर सुखा कर बोने के लिए एक वर्ष तक प्रयोग करते रहते है इन बीजों को जमीन मे बोकर नया पौधा तैयार करते हैं। बीज द्वारा नरसरी तैयार करने के लिए जमीन मे मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई मई में करके व उसमें 40-50 गाडी गोबर का सडा खाद मिलाकर तीन या चार देशी हल से जुताई करके पाटा लगाकर खेत समतल करके उस में जमीन से कुछ ऊँची क्यारी करके 10 सेमी. दूरी पर व 2 सेमी. की गहराई पर बीज बो देते है बाद में हजारे से सिंचाई कर देते है। यह बुवाई जुलाई में करते है। यह 2 या 3 सप्ताह में अंकुरित हो जाते हैं। सितम्बर मे इनको दूसरी जगह 20-25 सेमी. की दूरी पर रखते हैं। यह नये पौधे एक वर्ष बाद नये स्थान पर लगाने योग्य हो जाते है।

2. **कायिक प्रवर्धन या वानस्पतिक प्रसारण:—**

पौधे के किसी भाग से कृत्रिम विधि द्वारा नये पौधे तैयार करने को कायिक प्रवर्धन कहते हैं।

कायिक प्रवर्धन की विधियाँ

(अ) **कलिकायन द्वारा:**—फल शोध केन्द्र वस्ती में कलिकायन (पैच वडिंग) से अमरूद के प्रवर्धन में अच्छी सफलता मिली है। इसमे 1.5 से 2 सेमी व्यास का बीज पौधा मूल वृन्त के लिए चुन लिया

जाता है। समान उम्र की माप में पौधे की शाखा चुन ली जाती है और उसकी दो सप्ताह पूर्व कुछ पत्तियां तोड़ दी जाती हैं ताकि कलिका पूर्ण विकसित हो जाये। मूलवृंत्त पर जमीन तल से 10 सेमी ऊँचाई पर एक सेमी. लम्बे दो समानान्तर चीरे लगाते हैं और इनके सिरों पर दो सेमी. दूरी पर दो आड़े चीरे लगा कर बीच की छाल को निकाल लेते हैं। इसी आकार मे मातृ पौधे से छाल सहित कली निकाल कर मूल पौधे के कटे भाग में रख कर पालीथीन की पट्टी से कलिका का मुँह खुला रख कर बाध देते हैं।

कलिका का शेष भाग कागज से भली प्रकार ढक जाना चाहिए मूल वृंत्त का ऊपरी भाग 6 या 8 पत्तियो को छोड कर काट देना चाहिए। जब कली बढने लगे तो मूल वृंत्त का ऊपरी भाग लगभग एक माह बाद काट दिया जाता है इस पौधे को नरसरी में लगाते है जो अगली वर्ष स्थाई स्थान पर लगने योग्य हो जाता है।

(ब) भेंट कलमः—

इस विधि में मूल वृंत को मातृ पौधे के नीचे लगाते है मूलवृंत के समीप की समान उम्र व मोटाई की शाखा चुन कर उसमें 2 या 2·5 सेमी. लम्बाई में चीरा इस प्रकार लगाते है कि अन्दर से कुछ लकडी का भाग ढालू तल में काट कर लाये। मूलवृंत मे भी समान लम्बाई में चीरा लगाकर छाल व लकडी का कुछ भाग हटाते है। ध्यान रखा जाये कि मूलवृंत व शाखा लगभग 2 साल पुरानी ही हो। इन दोनो के कटे भागों को आसानी से मिलाकर सुतली से बांध देना चाहिए। दो माह बाद यह जुड़ जाते हैं उस समय मूल वृंत का जुड़े भाग से ऊपर का भाग व शाखा को जुड़े स्थान के नीचे से काट देना चाहिए। यह पौधा नरसरी में लगाते हैं जो एक वर्ष बाद स्थाई स्थान पर लगाने योग्य हो जाता है।

(स) गूटी लगानाः—

यह अमरूद की प्रसारण विधि एक व्यावसायिक विधि है यह विधि अमरूद प्रसारण में अधिक प्रयोग की जाती है। इसमें पौधे के ऊपर लगभग 1·5 से 2 वर्ष पुरानी शाखा को छांटकर उस पर 2 से 2·5 सेमी० की दूरी पर दो आडे चीरे लगाकर छाल को अलग कर लेते है ध्यान रहे कि चाकू तेज हो और शाखा की कैम्बियम रिंग न कटने पावे इस पर मास घास लगाकर पालीथीन या रेप कागज लगाकर सुतली से कस कर बांध देते हैं जब इसमें जड़ें निकल आये उस समय पालीथीन कागज के नीचे से शाखा को काट देते हैं। यह पिन्डी लेकर कागज हटाकर नरसरी में लगा देते हैं जो एक वर्ष बाद स्थाई स्थान पर लगा दिया जाता है। यह विधि नरसरी तैयार करने मे अधिक सफल हुई है।

(द) अधोभूस्तारी विधिः—

अमरूद की जड़ से निकलने वाले नये प्ररोहों को जड़ सहित उखाड़ कर किसी भी स्थान पर लगाया जा सकता है। इनकी संख्या अधिक लेने के लिए तने से एक मीटर की दूरी पर जड़ में घाव बना दिया जाता है जिससे जड़ के अग्रिम भाग मे अनेक अधोभूस्तारी निकल आते हैं जिनको जड सहित खोद कर बाग में लगाया जा सकता है। यह विधि उत्तर प्रदेश में अधिक प्रचलित है और सस्ती विधि है।

खेत की तैयारी एवं रेखांकनः—

खेत मे एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करके उसमें 4·5 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से 2.4

डी मिला देना चाहिए ताकि खरपतवार नष्ट हो जाये फिर 3 या 4 जुताई कल्टीवेटर या देशी हल से खेत में पाटा लगाकर समतल कर लेते है। बाग का रेखाकन दो विधि मे करते हैं—

(1) **वर्गाकार विधि**:—इसमें खेत में 6 से 8 मीटर दूरी पर लाइन खड़ी व आडी खींचकर वर्गों के किनारे पर पौधों के स्थान हो जाते हैं।

(2) **षटभुजाकार विधि**—इसमे उसी दूरी पर पौधे त्रिभुजाकार स्थानो पर लगाये जाते हैं जिससे खेत मे षटभुज बन जाता है और 6 पौधों के बीच एक पौधा रहता है। इस विधि मे वर्गाकार विधि से 15 प्रतिशत पौधे अधिक लगते है अत: यह विधि अधिक अपनाई जाती है।

इन विधियो के आधार पर अप्रेल व मई में निश्चित किए गये स्थानो पर 1 मीटर × 1मी० × 1मी० के आकार के गड्ढे खोद दिये जाते हैं जिनको जून के महीने में तीन या चार टोकरी (40 किलो से 60 किलो०) अच्छा सडा गोबर का खाद व 50 ग्राम गैमेक्सीन पाउडर व सतह की मिट्टी मिलाकर भर दिया जाता है। गड्ढों के मध्य एक लकड़ी गाड देते है।

पौधे लगाना:—

नरसरी से स्थाई स्थान पर पौधा जुलाई से अगस्त तक लगाया जा सकता है कभी-कभी फरवरी में भी लगा सकते है। नरसरी से पौधा कुछ गीली मिट्टी लेकर पिन्डी बनाकर उठा लेते हैं इसको गड्ढे की कुछ मिट्टी हटाकर उसमें पौधा रखकर मिट्टी से दबाकर सिंचाई कर देते है।

खाद:—

नदियों के कछारों में अमरूद लगाने पर खाद नही के बराबर लगाते है परन्तु अच्छी पैदावार लेने के लिए फल शोध केन्द्र बस्ती मे अमरूद की फसल में अच्छा फल इस खाद की मात्रा में लगाने से मिला है।

एक वर्ष के पौधे के लिए आधी टोकरी कम्पोस्ट, 140 ग्राम अमोनियम सल्फेट, और 900 ग्राम सुपर फासफेट।

दो वर्ष के पौधे के लिए एक टोकरी कम्पोस्ट, 280 ग्राम अमोनियम सल्फेट, और 180 ग्राम सुपर फासफेट।

तीन वर्ष के पौधे के लिए 1·5 टोकरी कम्पोस्ट, 420 ग्राम अमोनियम सल्फेट, और 2,700 किलो सुपर फासफेट।

चार वर्ष से 7 वर्ष के पौधे के लिए दो टोकरी कम्पोस्ट, 560 ग्राम अमोनियम सल्फेट, और 2,800 किलो सुपर फासफेट।

इसके बाद में 570 ग्राम अमोनियम सल्फेट, 2·840 किलो सुपर फासफेट, 480 ग्राम म्यूरेट आफ पोटाश, और दो टोकरी कम्पोस्ट खाद को प्रति पौधा प्रति वर्ष पांचवी वर्ष से पौधा मरने तक लगाना चाहिए। यह खाद की मात्रा वर्ष में दो बार जून-जुलाई व फरवरी या सितम्बर मे देना चाहिए।

भारतीय कृषि अनुसन्धान शाला नई दिल्ली में हुए प्रयोग में 11 किलो गोबर का सडा खाद प्रति पौधा प्रति वर्ष व हर वर्ष इतनी ही मात्रा बढा कर देनी चाहिए अर्थात् चौथे वर्ष वह मात्रा 45 किलो ग्राम लगा कर इतनी खाद पौधे के मरने तक लगाने मे अच्छे फल मिले है ।

सिंचाई:—

अमरूद में पौधे लगाने के तीन वर्ष तक नवम्बर मे फरवरी तक एक सिंचाई, फरवरी से मार्च तक 10 से 15 दिन के अन्तर में, मई व जून मे प्रत्येक सप्ताह सिंचाई करनी चाहिए । चौथे वर्ष अक्टूबर से जनवरी तक दो सिंचाई व जनवरी से मई तक दो सिंचाई व मई मे वर्षारम्भ तक तीन सिंचाई करनी चाहिए ।

निराई गुड़ाई या अन्तराशस्य —

यदि बाग में पहले तीन वर्षो तक सब्जी की फसल लेते रहे तो निराई गुडाई की आवश्यकता नही पडती है । इसमें टमाटर, बैंगन, आलू, भिन्डी, मटर, प्याज तथा हरी खाद की फसल भी उगा सकते है । चौथे वर्ष से बाग में एक जुताई मई व एक जुलाई, अक्टूबर में कर देते है और पौधे की थालों को फावडे से साफ करते रहते है ।

पौधे की संधाई व छटाई :—

पौधों को पहले ही 70 से० मी० की ऊंचाई से अगली कली को काट देना चाहिए फिर केवल चार स्वस्थ शाखाओं को छोड़ कर शेष सभी को काटते रहना चाहिए । इस से फल तोड़ने मे सुविधा रहती है और पौधे का आकार भी ठीक हो जाता है । इस के बाद प्रति वर्ष अक्टूबर व फरवरी में बीमारी ग्रसित व सूखी व घनी शाखाओं को काटते छांटते रहना चाहिए । इसको **संपरिवर्तित अग्रणी विधि** कहते है ।

फल शोध केन्द्र बस्ती मे यही प्रयोग करके देखने से अच्छा फल मिला है । इसमे अन्तर इतना है कि एक कली को ऊपर भी बढ़ने दिया जाता है ।

बम्बई में कृन्तन व ट्रेनिंग सम्बन्धी प्रयोग में बताया कि पौधे की झुकी हुई शाखाओं को फलत के आने के पूर्व समीपस्थ शाखाओ से बांधकर शाखाओ को भूमि के समानान्तर कर दिया जाता है । इन की सुषुप्त कलिकायें क्रियाशील होकर फलत अच्छी देती है । इस बांधने की क्रिया को बैंडिंग कहते है । शाखायें बार-बार बांधने से पौधों को हानि भी होती है ।

1933 में पूना मे गाडगिल ने वैकल्पिक में बांधने की क्रिया किया तो 300 फल प्रति पौधा बांधने के वर्ष और पच्चीस फल प्रति पौधा न बांधने पर प्राप्त किये हुए और यह विधि कर्षण क्रियाओ में भी बाधक है फिर भी बम्बई क्षेत्रों में अधिक अपनाई जाती है । इलाहाबाद कृषि अनुसधानशाला में प्रयोग द्वारा बताया कि छांटने से फलों का आकार बढ़ जाता है लेकिन फलों की संख्या घट जाती है ।

फूल व फल आने का समय व फलत :—

उत्तरी भारत में दो फसलें आती है व दक्षिण भारत मे तीसरी फसल आती देखी गई है ।

(अ) **अम्बे बहार** : इस मे फूल फरवरी व मार्च मे और फल जुलाई से सितम्बर तक मिलते है । इसके फल फीके, पनीले व कीड़े ग्रसित होते हैं ।

(ब) **मृग बहार** : इसमें फूल जून जुलाई में और फल नवम्बर से जनवरी तक मिलते है। इस फसल के फल मीठे व स्वादिष्ट होते है । कृषक इस फसल को ही अधिक लेता है। फल शोध केन्द्र बस्ती में प्रयोग किया गया कि फूलो की पूर्ण विकसित अवस्था में 15 भाग नेफथलीन एसिटिक एसिड व दस लाख भाग पानी के घोल के छिडकाव का प्रभाव अच्छा पाया गया है जिससे यह फसल अच्छी आती है या बरसात की फसल के फूलों को हाथ से तोड देना चाहिए ।

(स) **हस्थ बहार** : यह दक्षिण मे पाई जाने वाली फसल है जो कि कभी-कभी फल देती है। इसमें अक्टूबर मे फूल और फरवरी से अप्रैल तक फल प्राप्त होते हैं ।

फल संलवन तथा विपणन

अमरूद का फल कुछ पीलापन आने पर उसे हाथ से पकड कर कुछ डन्ठल व पत्तियो सहित तोड़ लेना चाहिए। टूटे फलो को बाग मे घास पर रखकर उनका संवेष्टन करके बांस की टोकरी में कागज या केले के पत्ते लगाकर बन्द करके बाजार में भेज कर नीलामी द्वारा बेच देना चाहिए। या उनको सड़क के किनारे या सब्जीमण्डी में ढेर लगाकर बेच देना चाहिए ।

रोग तथा कीट :

1—**अमरूद का सूखा रोग** : यह रोग फ्यूजेरिम कबक द्वारा फैलता है इसका प्रकोप तने पर होकर शीघ्र शाखाओ और पत्तियों पर फैलकर पौधे को सुखा देता है । वर्षा ऋतु मे तीव्रता से बढकर अन्य पौधों को भी प्रकोपित करता है।

उपचार .

1—अमरूद की सूखानिरोधी जाति को मूल वृत्त में लगना चाहिए ।

2—अमरूद का सूखा फल सड़न :–यह फाइटोपथोरा पैरासिटिका द्वारा फैलता है यह फलों को भण्डारण में सडाने वाली बीमारी है मित्रा ने 1929 में पूसा के आसपास इसको देखा था ।

उपचार :

वरगडी मिश्रण 2:2.50, कापर आक्सी क्लोराइड 0·2 प्रतिशत, व फरबम 0·2 प्रतिशत का छिडकाव करना चाहिए। बीमारी देखने से प्रति सप्ताह छिडकाव करना चाहिए ।

3—**अमरूद का कैंकर** :–इसमे फल सड़ने लगता है। यह बीमारी जीवाणु द्वारा फैलती है।

उपचार :

वरगडी मिश्रण 2.2 50 का छिड़काव फलों पर करते है।

छिल्का खाने वाला पर्दातिक (बार्क बीकिंग कैटर पिलर)

यह इन्डरवेला टेटराओरिस द्वारा पौधा का तना गोलाई में खाया जाता है यह कीड़ा छाल में रिंग बना देता है जिससे पौधा सूख जाता है।

उपचार :

इसकी जाच करने पर 4 प्रतिशत फार्मलीन या पेट्रोलियम या मिट्टी के तेल का सूच्चानिक्षेप (इन्जेक्शन) लगाकर तने को गीली मिट्टी मे लेप देते है ।

अमरूद के फल की सफेद मक्खी :

कीटोडोकस जाति द्वारा बरसात के फलों को हानि पहुंचती है । यह फलों पर अन्डे देती है जिससे कुछ ही समय में मक्षिजातक (मैगेट) निकलकर फल खाना शुरू कर देते हैं ।

उपचार :

1—फलों को तोड कर जमीन में गाड देते है ।

2—फूरीबोक्स यंत्र का प्रयोग करते हैं जिसकी आवाज से तितलियाँ भाग जाती है ।

मिलीबग :

यह छोटा अंडाकार चपटा मुख वाला जीव पत्तियो को प्रकोपित करता है ।

उपचार—निकोटीन सल्फेट एक भाग 600 भाग पानी मिलाकर छिड़कते हैं ।

उपज:– एक बीजू पौधा 6 से 10 वर्ष की उम्र मे 400-500 फल प्रति पौधा प्रति वर्ष देता है जिसका वजन 60-85 किलो ग्राम होता है । प्रसारण विधि से तैयार किया पौधे से 6 से 8 वर्ष की उम्र में 1000-2000 फल (180 किलो से 320 किलो) प्रति पौधा प्रति वर्ष मिलता है। फलशोध केन्द्र बस्ती में 7-8 वर्ष के पौधे पर 1000 से 1500 फल (150-200 किलो) प्रति पौधा प्रति वर्ष उपज मिली । इलाहाबाद कृषि अनुसंधान शाला पर 1967 में 300-400 फल प्रति पौधा उपज मिली जिससे अनुमानित 2500-3000 रु० प्रति हैक्टेयर आय हुई ।

REFERENCES

1. Bakhshi, J.C. & Randhawa, N. S. 1967 Bright prospects for guava cultivation in the Punjab. Indian Horticulture, XI, (3) : 3-4.
2. Hadson, T. Hartmann & Dale E· Kester 1965 Propagation of guava plant. Plant propagation. Englewood Cliffs, N. I. Prentice Hall, I. N. C.–478.
3. Jain, N. L. & Broker, D. H. 1966 Preparing beverages from guava. Indian Horticulture XI (I) : 5-6.
4. Jain, Ram Singh 1959 Guava Krishi Vigyan Kitab Mahal, Allahabad, 242-244.
5. Johari, O. S 1971 Amarud ki unnat kheti, Krishi aur pashu palan, XXIII (2) · 25-28.
6 Katyal, S. L 1968 Growing Fruits in home gardens. Indian Horticulture XII (4) : 6.

7. Kothari, K. L. 1968 Controlling fruit rot of guava Indian Horticulture XII (3) : 9-10.

8. Kumar, L.S.S. & etal 1963 Fruit crop of guava. Agriculture in India. Asia Publishing house in Bombay (2) : 138-139.

9. Lal Girdhari 1967 Canning Fruits guava. Preservation of fruits and vegetable. I. C. A. R., New Delhi, 65

10. Lavania, Murari Lal 1966 Guava. Cultivation of flowar and fruits. Singhal Book Depo, Baraut Meerat. 194-201.

11. Majundar, P.K. & Mukerji, S. K. 1968 Guava a new vegetative propagation method. Indian Horticulture, XII, (2) : 11.

12. Nigam, B. S. 1964 Fruit crop of guava. A text book of Agriculture. R. N. Lal Book sellers and publishers, Allahabad, 193.

13. Richharia, R. H. 1967 Fruit crop guava, plant breeding and genetics in India. Scientific Book Co, Patana, 280-281.

14. Shanker, Gauri 1967 Know to grow apple colour guava. Indian Horticulture, XI, (2) : 22-23.

15. Sharma Ram Chandra 1964 Falon ki kast. Anupam Krishi Vigyan Adhunik Friend Publisher, New Delhi. 219-220.

16. Sharma, S. P. 1968 Fruit tree guava. Sachitra Krishi Vigyan. B. B Prakashan Western K. Road, Meerat, 308-311.

17. Singh, L. B. 1968 Propagation of guava plant Practical hints on fruit growing Ministry of Food & Agriculture Community Development & Co-operation, New Delhi, (I) : 31-36.

18. Singh, Sham & etal 1967 Fruit guava. Fruit culture in India Indian council of Agriculture Research, New Delhi 143-152.

19. Teaotia, S. S. & etal 1968 Introducing Lucknow 49, guava in your orchard Indian Horticulture XII, (I) : 21-22.

20. Yadav, Ajab Singh 1968 Cultivation of guava. Prarambhik Krishi vigyan. Ram Prasad and Sons, Agra, 245-246.

आम की उन्नत कृषि क्रियाएँ

ओमप्रकाश त्रिपाठी
बी. एड. (कृषि)

आम भारत के उष्ण जलवायु के श्रेष्ठ फलों में विशेष महत्व रखता है और भारत मे इसकी कृषि बहुत दीर्घकालीन है। इसका उत्पत्ति स्थान दक्षिण एशिया में विशेष कर मलायन भाग माना जाता है। जहाँ से यह दुनियां के दूसरे भागों में उगाया जाने लगा है।

परिपक्व अवस्था में आम विटामिन ए तथा विटामिन सी का अच्छा साधन है। यह परिपक्व अवस्था में खाने एवं परिरक्षण के लिये प्रयोग किया जाता है तथा कच्ची अवस्था में कैरी के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह भारतवर्ष में करीब-करीब सभी भागों में उगाया जाता है। भारतवर्ष में लगभग 593520 हैक्टर पर आम की खेती की जाती है जो कि कुल फल उत्पादन का 50 प्रतिशत से अधिक भाग है। विभिन्न राज्यों में इसकी खेती का वितरण निम्न प्रकार है।

राज्य का नाम	आम की खेती के लिये कुल भूमि हैक्टर में
उत्तरप्रदेश	218045
बिहार	88094
आन्ध्र प्रदेश	73413
पश्चिमी बंगाल	73251
मद्रास	40686
उड़ीसा	31590
बम्बई	12915
केरल	9328
मध्यप्रदेश	179
पंजाब	8952

जलवायु:—

आम की खेती विभिन्न प्रकार की जलवायु में की जा सकती है लेकिन इसकी खेती के लिए गर्म व तर जलवायु सबसे अच्छा रहता है। आम वहाँ पर अच्छा फलता एवं फूलता है जहाँ पर जून से सितम्बर तक अच्छी वर्षा हो तथा बाकी आठ महीने अक्टूबर से मई तक शुष्क एवं वर्षा रहित मौसम हो। आम उन भागों में भली-भांति होता है जहाँ कि तापक्रम 40 से 112 डिग्री फैरानाइट रहता है। तथा वर्षा 40 से 60 इंच तक होती है। इससे अधिक तापक्रम होने पर झलसने (सन बर्न) का डर रहता है। पहाड़ों पर 3000 फुट से 35000 फुट की ऊँचाई तक उगाया जा सकता है। पूर्वी टापूओं का जलवायु आम की खेती के लिये सबसे अच्छा रहता है।

भूमिः--

जलानुबधित, ककरीली, पथरीली, छिछली और अधिक क्षारीय भूमि को छोड़कर आम प्राय: सभी प्रकार की भूमि मे सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है। फिर भी गहरी दोमट भूमि, जिसमें पानी का निकास अच्छा हो, इसके लिये सबसे उपयुक्त रहती है।

किस्में:--

आम की किस्मो को पकने के समय के अनुसार निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) जल्द पकने वाली किस्में—ये किस्में मई, जून में पकती है जैसे—बम्बई हरा, अलफन्जों, राटौल, जरदालू राम भोग।

(2) मध्यम पकने वाली किस्म—ये जातियां जुलाई में पकती है। लंगडा, दशहरी, गोपाल भोग सफेदा न. 1, लखनऊ सफेदा, सिंगापुरी, खासुखलास।

(3) देर से पकने वाली किस्में—यह अगस्त या उसके बाद पकती है जैसे फजली, समरबहिस्त, चौसा, हाथी झूल, मनपसन्द, मोतिया, नीलम आदि।

आम की कई किस्में भी तैयार की गई है। आम की अच्छी संकर किस्में एवं उनके गुण निम्न प्रकार है।

सारणी संख्या 1 आम की संकर किस्मों का विवरण

सकर और जनक	आम पकने का समय	औसत वजन (ग्राम में)	गूदा (ग्राम में)	टी एस एस.	कितने दिन तक ठीक हालत में रह सकता है
संख्या 61 (नीलम लंगडा)	जुलाई तीसरा सप्ताह	192 2	67.2	17 0	10
लंगड़ा (जनक)	जुलाई पहला सप्ताह	252·2	75.0	18.0	7
सख्या 65 (नीलम दशहरी)	जुलाई चौथा सप्ताह	307·0	74.9	19.0	15
सख्या 49 (दशहरी नीलम)	,, ,, ,,	238·7	74.4	19.0	9
संख्या 101— (दशहरी नीलम)	जुलाई दूसरा सप्ताह	182·00	68.0	16·0	10
संख्या 59 (नीलम चौसा)	जुलाई चौथा सप्ताह	223·0	65.3	17 0	8
दशहरी (जनक)	जून चौथा सप्ताह	158.4	67.2	19.0	10
नीलम (जनक)	अगस्त चौथा सप्ताह	170 0	53.8	19.0	12
चौसा (जनक)	अगस्त दूसरा सप्ताह	294·5	72.0	21.0	7

प्रसारण: —

किसी विशेष किस्म से ठीक उसी प्रकार के पौधे प्राप्त करने के लिये वानस्पतिक प्रसारण अत्यन्त आवश्यक है। बीज द्वारा पौधे तैयार करने पर फल देर से मिलते हैं, फलो में भिन्नता पाई जाती है एवं उपज कम प्राप्त होती है। वानस्पतिक प्रसारण मे अधिकतर आम के पौधे कलम बाधकर व्यावसायिक स्तर पर तैयार किये जाते हैं। आजकल आम के पौधे कलिकायन विधि द्वारा भी तैयार किये जाते हैं लेकिन यह विधि कुछ जटिल होने के कारण व्यावसायिक स्तर पर प्रयोग नही की जाती है।

कलम बांधना: —

कलम काटने के लिये मिट्टी के धरातल से लगभग नौ इच की ऊँचाई पर ढाई से तीन इंच लम्बाई ½ इंच चौडी एवं 1½ इच गहरी छाल बीज जात से निकाल देते हैं। छाल के साथ-साथ थोड़ी लकड़ी भी तराश दी जाती है। इसी प्रकार उस शाख को जिसकी कलम बाधना है तैयार कर लेते है दोनो टहनियों की मोटाई एव उम्र एक सी होनी चाहिये फिर दोनो टहनियों को आपस में जोड़ देते है तथा रफिया घास या केले के रेशे से बाध देते हैं। यह क्रिया वर्षा ऋतु के आरम्भ मे या वर्षा ऋतु मे करनी चाहिए। कलम करने के बाद लगभग 60 दिन में उपरोप तैयार हो जाता है, फिर धीरे-धीरे बीज जात के ऊपर के भाग एव शाख के नीचे के भाग को काट कर अलग कर देते है तथा नये उपरोप को छायादार जगह मे रखते है।

कलिकायन विधि —

वैसे कलिकायन विधि आम के प्रसारण का व्यावसायिक तरीका नही है फिर भी आजकल यह विधि भी प्रयोग की जाती है। कलिकायन विधियो में वर्म कलिकायन विधि को अधिक महत्व दिया जाता है।

कलिकायन की क्रिया 6 महीने से दो साल पुराने मूल वृक्ष पर की जाती है। कलिकायन के लिये अच्छी, कीड़ों व बिमारियों से रहित कलिका का प्रयोग किया जाता है। सबसे पहले स्वस्थ शाखा से वर्म आकार में कालिका को निकाल लेते हैं फिर मूल वृक्ष पर एक या डेढ इच लम्बा अनुप्रस्थ चीरा बना दिया जाता है। चीरा जमीन की सतह से 9 इच या एक फीट की ऊँचाई पर होना चाहिये। निकाली गई कलिका इसी चीरे में प्रवेश करके रफिया घास या सुतली से बाध देना चाहिए। बाधने समय यह ध्यान रखना चाहिये कि कलिका का उगने वाला भाग खुला रहे। जब कलिका से नई शाखा निकलने लगे तो सुतली को ऊपर से हटा देना चाहिए तथा मूल वृक्ष के ऊपरी भाग को तेज चाकू से काट दिया जाता है। इस विधि से नया पौधा तैयार करने मे 4-5 महीने लगते है।

पौध लगाना —

पौध लगाने से पहिले भूमि को अच्छी तरह से तैयार कर लेना चाहिए तथा गर्मी के दिनो में 3′ × 3′ × 3′ आकार के गढे खोद कर कुछ दिनों बाद उनको 25 पौ. गोबर की खाद, ढाई पौ. वुडऐश और बोनमील डेढ पौ. तथा मिट्टी के मिश्रण से भर देना चाहिये। गढों की पारस्परिक दूरी 30′-35′ तक रखी

जाती है। जब एक दो पानी पड जाय तथा गढे में भरी मिट्टी ठीक से बैठ जाय तो पौधे लगा देने चाहिये। वर्षा ऋतु के अतिरिक्त पौधे बसन्त ऋतु मे भी लगाये जाते हैं लेकिन उनके लिये सिंचाई तथा लू से बचाने का प्रबन्ध करना आवश्यक होता है।

खाद—

पौधो को लगाने के बाद खाद का ध्यान रखना आवश्यक है। एक वर्ष की आयु के पौधे को 10 सेर गोबर की खाद, 5 सेर वुडऐश तथा ढाई सेर बोनमील देना चाहिये। जैसे-जैसे पौधा बढता जाता है उसी अनुसार खाद की मात्रा 5 सेर गोबर की खाद, 1 सेर राख एवं आधा सेर हड्डी के चूरे को प्रति वर्ष के हिसाब से 10 साल तक बढाते रहना चाहिये। निम्न लिखित खादो का मिश्रण पूरी वृद्धि प्राप्त पौधे को अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है जो कि सेन, राय तथा पटेल के द्वारा अभिस्तवन किया गया है।

200 पोण्ड गोबर की खाद, 10 पौण्ड बोनमील, 4 पोण्ड अंडी की खली तथा दो पौण्ड अमोनियम सल्फेट।

सिंचाई—

पौधे को हर तीसरे रोज पानी देना चाहिये। दो साल के बाद सर्दी के मौसम मे हर हफ्ते एव गर्मी के मौसम मे पाँच दिन के अन्तर पर पानी देना चाहिये। सिंचाई का अन्तर भूमि की किस्म एवं वातावरण पर भी निर्भर करता है।

कटाई छटाई—

पैबन्द से तैयार किये गये पौधों के शाख को 4 वर्ष तक बढने देते है उसके बाद छटाई करके पौधे को सही रूप दे देना चाहिए।

फूलों का आना तथा उनकी रक्षा—

आम के पौधे मे दो वर्ष का होने पर फूल आने लग जाते है परन्तु तीन वर्ष का होने तक सभी फूल तोड देने चाहिये क्योकि फल लेने पर पौधे की वृद्धि रुक जाती है। पौधे पर फूल आना जलवायु पर निर्भर करता है। भारत के अधिकांश भागों मे दिसम्बर से जनवरी में फूल आते हैं।

फलों की तुड़ाई—

सब फल एक साथ नहीं पकते है। देहली के देहात मे फलो की तुड़ाई का समय जून से अगस्त तक होता है। जब कुछ फल पेड़ से गिरने लगे तो समझ लेना चाहिये कि फल पकने लगे हैं। तोड़ने से पहले फलों को अधिक नहीं पकने देना चाहिये।

उपज—

आम के पेड की उपज चार साल से बीस साल तक ज्यों-ज्यों उम्र बढती जाती है त्यों-त्यों उपज बढ़ती जाती है फिर उपज एक सी रहती है। पैबन्द से तैयार किये गये पौधे में निम्न प्रकार फल आते हैं।

चौथे वर्ष में	10-15 फल
छठे वर्ष मे	50-75 फल
दसवें वर्ष में	300-500 फल
15-20 वर्ष के वृक्ष पर	1500 फल
20 वर्ष के बाद	2000-4000 फल

फलों को पकाना—

फलों को तोड़ाई के पश्चात छटाई करके भण्डार ग्रहो में पत्तियों पर दो दिन के लिये फैला देना चाहिये बाद में पुआल में तह जमा कर रखा जाता है। फलों को एक तह से फैलाया जाता है उसके बाद फिर पुआल बिछाकर दूसरी तह लगाते हैं जिससे फल आपस की रगड से खराब न हो।

फूल तथा फल के बनने की समस्या—

आम के पौधे पर फल नई शाखाओं पर लगते हैं। दस वर्ष के बाद आम के वृक्ष पर नई शाखाएँ कभी कम कभी ज्यादा निकलती है जिसके कारण कभी फल ज्यादा कभी कम और कभी-कभी बिलकुल नही आते हैं, इसे आम का अनियमित फलना कहते है। इस आदत को कम करने एव लगातार फल लेने के लिये निम्न क्रियाएँ की जाती हैं—

1. फूलों का तोड़ना।
2. भूमि में खाद्य पदार्थ देना।
3. शाखाओं की छाल निकालना।
4 सही समय पर कृषि क्रियाएँ करना।
5. धुँआ देना आदि क्रियाएँ की जाती है जिससे प्रति वर्ष फल प्राप्त हो सके।

आम के कीड़े बीमारियाँ एवं उनकी रोकथाम—

आम के पेड़ को विभिन्न कीड़े एवं बीमारियां क्षति पहुँचाते हैं जो निम्न प्रकार है—

सारणी संख्या 2 आम के कीड़े एवं बीमारियाँ व उनकी रोकथाम

क्र.सं.	कीड़े एवं बीमारी का नाम	रोकथाम
1.	आम का तना छेदक	1. इनके द्वारा बनाये गये छेदों में मिट्टी का तेल में भीगा कपड़ा दबा देना चाहिये।
2.	दीमक	1. डी. डी. टी. तथा सल्फर का भुरकाव करना चाहिये।
3.	आम का होपर भुनगा	1. ·02–·04 प्रतिशत रोगोर 40 के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

क्र.सं	कीडे एवं बीमारी का नाम	रोकथाम
4.	सफेद गुभिया	1. ·03– 06 प्रतिशत वासुडीन 20 ई. सी या ·03–·05 प्रतिशत रोगोर 40 या डामेक्रान 100 के घोल का छिड़काव करना चाहिये।
5.	पत्ती काटने वाला कीट	1. ·25 प्रतिशत डी. डी. टी. के घोल का छिड़काव करना चाहिये।
		2. कटी हुई पत्तियों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिये।
6.	फलों की मक्खियाँ (फ्रूट फ्लाइज)	1. रोगी फलो को इकट्ठा कर जमीन मे गाड़ देना चाहिये।
		2. वासुडीन 20 ई. सी. का या मैलाथियान 50 ई. सी. का 3 से 4 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिये।
7.	लाल चींटीं	1. घौंसलों को तोडकर नष्ट करना चाहिए।
		2. 5 प्रतिशत बी. एच. सी. के चूर्ण का भुरकाव करना चाहिए।
8.	पाउडरी मिलड्यू	1. 5 प्रतिशत डी. टी. टी. व 50 प्रतिशत सल्फर का भुरकाव करना चाहिए।
9.	आम का नेकरोसिस	इसके लिए कोई रोकथाम नहीं है।

REFERENCES

1· Bhutani, D. H. M. 1964 Pest the pester your Mango crop Indian Horticulture Indian Council of Agriculture Research, New Delhi. IX (1) · 28.

2. Chahal, B. S. & Singh, D. 1970 Control Mango hopper to get more fruit Progressive Farming. P. A U., Ludhiana VI (6) : 11.

3. Chauhan, G. J. 1971 We grow Mango as a hobby Indian Horticulture. I. C. A. R., New Delhi XVI (3) : 11.

4. Katyal, S. L. 1969 Mango cultivation in Surinam. Indian Horticulture. I. C. A. R, New Delhi XIII (3) : 3.

5. Katyal, S. L. Dr. Singh, S. & Dr. Murthi, S. K 1967 The Mango Fruit cultivation in India. I. C. A. R, New Delhi II (8) : 81-101,

6. Majumdar, P K., Singh, R. N. & Sharma, D. K. 1967 New Mango hybrids of greater export potential. Indian Horticulture. I. C. A. R., New Delhi. XIII (4) : 3-6.

7. Singh. K. K. Singh, H. & Dhillon, P. S. 1965 Mangoes can pay well in Submountain Punjab. Progressive Farming. P. A. U., Ludhiana. I (3) : 9.

8. Singh, R K, & Vindhyachal, P. 1970 Insect of Mango and their control. Kheti I. C. A. R., New Delhi XXIII (2) : 13-17.

9. Sobhag & Gandhi 1959 The Mango in India. Farm Information Unit, Directorate of Extension, Ministry of Food and Agriculture, New Delhi.

नीबू जाति के फलों की उन्नत कृषि क्रियाएं

राम अवतार भारद्वाज
बी. एड. (कृषि)

परिचय—

नीबू की थोडी बहुत आवश्यकता जीवन में प्रतिदिन पड़ती है। नीबू के रस मे विटामिन सी के अतिरिक्त कुछ मात्रा में विटामिन ए तथा बी भी पाये जाते हैं। नीबू के प्रयोग से आँखों में ज्योति बढ़ती है तथा पेट ठीक रहता है। नीबू वात नाशक है। कब्ज दूर करने वाला तथा पाचक है। इसी कारण से दैनिक जीवन में इसका अधिक महत्व है।

जलवायु—

जलवायु फलों के बढवार में कई तरह प्रभाव डालती है। नीबू का बाग लगाने के लिये सम-शीतोष्ण जलवायु सबसे अधिक ठीक रहती है। बहुत अधिक ठंडे इलाके इसके लिए ठीक नहीं रहते हैं।

तापक्रम—

हर प्रकार के फलो के लिए एक निश्चित तापमान की जरूरत पड़ती है। उसके कम या ज्यादा तापमान रहने पर पैदावार मे अन्तर पड़ जाता है।

नीबू के पौधे 44·5 से. ग्रे. से अधिक तापमान होने पर ठीक प्रकार से नहीं बढ़ पाते हैं अतः जहाँ पर गर्मियों मे तापमान 44·5 से. ग्रे. से अधिक नहीं होता वहाँ पर नीबू के बाग लगाये जाने चाहिए।

वर्षा सूर्य की रोशनी, पाला या गर्मी तथा हवा का भी बाग लगाने से पहले ध्यान रखना चाहिये। नीबू का बाग धूप आने वाले स्थान पर लगाना चाहिये। अधिक पाला या गर्मियों से पौधे से फूल व पत्तियाँ गिर जाती है तथा वृक्ष सूखने लग जाते हैं। अतः सर्दी वाले क्षेत्रों में नीबू के बागों को नहीं लगाना चाहिये। तेज हवा से फलों की किस्म घटिया हो जाती है व फल भी कम मात्रा में आते हैं।

जातियाँ—

नीबू प्रजाति के फलो का वर्गीकरण भारत में नीबू जाति के फलों के विपणन की प्रकाशित रिपोर्ट के आधार पर निम्न लिखित है।

(1) **स्वीट आरेंज**—इसकी उपजातियाँ निम्नलिखित है जैसे वैलनसिया लेटा, वाशिंगटन, नेवल आदि।

(2) मैनड्रिन ऑरेंज- जैसे कमला, नागपुरी, कुर्ग, सलहट, दार्जिलिंग।

(3) सोर ऑरेंज—जैसे सीयाम ऑरेंज, बीटर ऑरेंज, सौर ऑरेंज।

(4) लाइम—जैसे पाटी नीबू, कागजी नीबू, गोरा नीबू, तांबा नीबू।

(5) लेमन—जैसे गलगल, खट्टा, बजोरी।

(6) स्वीट लेमन—मीठा नीबू, सरबती नीबू।

(7) पुमेलों—जैसे चकोतरा, संध्याफल, करना।

(8) महा नीबू—जैसे मार्श, सीडलैस, फास्टर, हाल।

प्रजनन—

बीज से फल वृक्षो का प्रसारण अतीत समय से चला आ रहा है। यह विधि नीबू जाति के कुछ फलों के लिए अति आवश्यक है। जैसे कागजी नीबू। परन्तु नीबू प्रजाति के लिए अधिक उन्नतिशील क्षेत्रों से बीज से प्रसारण करने की विधि अब खत्म होती जा रही है। नीबू जाति के पेड़ बीज, कलम, गूटी, कलियायन द्वारा प्रजनन किये जाते हैं।

नीबू की जाति मे बीजो को केवल रुट स्टाक तैयार करने के लिए ही प्रयोग किया जाता है। नीबू जाति में परिवर्तन लाने के लिए कलियायन विधि को काम में लाया जाता है।

रुट स्टाक के लिए पौधे तैयार करना—

रुट स्टाक हमेशा बीज से तैयार किया जाता है। रुट स्टाक हमेशा 6 इंच ऊपर उठी हुई क्यारी में लाइम के बीजों को बो देना चाहिये। बीज को अधिकांशतः अगस्त के अन्त में या सितम्बर के शुरू में बोया जाता है। बीज से बीज की दूरी 1 इंच, लाइन से लाइन की दूरी 3 इंच रखी जाती है। बीज बोने के बाद क्यारी को बालू से दबा देना चाहिए। क्यारी को पानी देते रहना चाहिए। बीज 20 दिन से 25 दिन में उग कर तैयार हो जाते हैं। पौधे जब 5 या 6 इंच लम्बे हो जाने पर इनका स्थान परिवर्तन कर देना चाहिये। दूसरी जगह पौधे से पौधे की दूरी तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 10 इंच से 18 इंच होनी चाहिये। अगर पौधे की उचित देख भाल की जाये तो ये 15 से 18 महिने में अगुली की मोटाई के समान हो जाती है। अब ये पौधे कलियायन करने योग्य हो जाती है।

बड साइन का चयन करना—

बड साइन चयन करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये—

(1) बड गोल लकड़ी से लेनी चाहिए।

(2) कक्षिय कलिका फूली तथा स्वस्थ्य होनी चाहिए।

(3) अच्छी जातियों के वृक्षों की ही साइन चयन करनी चाहिये।

(4) साख की ऊपरी तथा नीचे वाली बड को नही चयन करना चाहिये।

कलियायन करने का समय उत्तर प्रदेश में मार्च का महीना उचित है। क्योंकि इस समय पौधो में रस का ज्यादा प्रवाह रहता है।

भूमि व पानी—

बाग लगाने के कम ढाल वाली या समतल भूमि उत्तम रहती है। नदियों के मुहाने या घाटियों के बीच की समतल भूमि ठीक नही रहती है। क्योंकि यहाँ पर सर्दी का भय रहता है। भूमि ऐसी होनी चाहिये जिसमें हवा का संचार तथा पानी का निकास उचित प्रकार से होता हो। नीबू का बाग लगाने के लिए बलुई-दोमट तथा 2 मीटर गहरी मिट्टी उत्तम रहती है।

भूमि का पी. एच. मान 5·5 से 6·5 होना चाहिये। वैसे क्षरीय भूमि जिसका की पी. एच. मान 8·5 से 9 हो वहाँ पर भी नीबू के पौधे लगाये जा सकते है। जमीन के साथ-साथ पानी का ध्यान भी रखना जाहिये। बगीचों मे पानी की अधिक आवश्यकता होती है। अतः जहाँ पर पानी की अधिक सुविधा हो तथा पानी मीठा हो वहाँ पर नीबू का बाग लगाना चाहिये।

पौधों का चयन:—

कागजी किस्म के नीबू के अच्छे व मजबूत तथा कीड़े व बीमारी रहित पौधे बाग लगाने के लिए चुनने चाहिए।

जगह का चुनाव:—

नीबू के बाग के लिए जगह का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:—

(1) जगह की जलवायु
(2) शहर या मुख्य सड़क की दूरी और आवागमन के साधन
(3) बाग लगाने वाले खेत में उद्यान का स्थान।

पौधे लगाने की विधि:—

पौधे लगाने के लिए 1 मीटर गहरे, 1 मीटर लम्बे, और 1 मीटर चौड़े गड्ढे 6 मीटर की दूरी पर गर्मियो में खोद लेना चाहिए। एक एकड में 108 गड्ढे खोदे जा सकते हैं। गड्ढे खोदने के लिए मई या जून का महीना उपयुक्त रहता है। गड्ढों को 2-3 सप्ताह तक खुला छोड़ने के बाद, हर गड्ढे के आधे भाग तक एक भाग गोबर की खाद तथा एक भाग मिट्टी का मिश्रण बनाकर भर दीजिये। आधा किलो सुपर फास्फेट, 250 ग्राम पुटेशियम सल्फेट तथा 30 ग्राम बी. एच. सी. 10 प्रतिशत चूर्ण का मिश्रण बना कर उसे भी गड्ढों की मिट्टी में मिला दीजिए। पौधे लगाने से पहले गड्ढो में पानी दे देना चाहिये जिससे मिट्टी नीचे बैठ जाये। फिर जुलाई अगस्त मे पौधों को लगा देना चाहिए। पेड़ के आखों वाले जोड़ भूमि से 15 से 20 सि. मी. ऊँचा रहना चाहिए। पौधों को गड्ढो में उतना ही गहरा लगाये जितना की वह पौधा पौध शाला मे था। जड़ों के आस पास की मिट्टी को दबा दें। पेड़ों के चारों तरफ 2 मी. व्यास के थाले बना देने चाहिए। पौधो की दो कतारो के बीच में एक सिचाई की नाली होनी चाहिए। प्रत्येक सिंचाई नाली से एक एक सिंचाई कर उप नाली निकाल कर उन्हें प्रत्येक पौधे के थामले से जोड़ देना चाहिए। सिंचाई की नालियां तथा कुआ ऊँचे स्थान पर होना चाहिए। यह सारा कार्य पहले मानचित्र बना कर उसके अनुसार ही करना चाहिए।

नीबू के पौधों को वर्गाकार आयताकार, षटभुजाकार अथवा सीढी नुमा विधि से लगाया जाता है।

बाद की देख भाल—

(क) **सिचाई—**छोटी उम्र के पौधों को पानी जल्दी देना चाहिए तथा बडी उम्र वाले पौधों को गर्मियों में 6-7 दिनों मे तथा सर्दियों में 10-15 दिनों से पानी देना चाहिए।

(ख) **खाद व उर्वरक देना—**पौधो से अच्छी पैदावार लेने के लिए उसे पूर्ण मात्रा मे खाद व उर्वरक देना चाहिए। खाद की मात्रा, भूमि उर्वरा शक्ति, पौधों की उम्र और अन्य बातों पर निर्भर करती है।

(1) 1 से 3 वर्ष के पौधो मे 5 से 20 किलो ग्राम गोबर की खाद. 250 से 750 ग्राम अमोनियम सल्फेट, 250 से 750 ग्राम सुपर फास्फेट प्रति पौधे की दर से देकर सिंचाई करनी चाहिए।

(2) 4 से 6 वर्ष के प्रति पौधे को 20 से 25 किलो ग्राम गोबर की खाद 1 से पौने दो कि॰ अमोनियम सलफेट तथा इतनी ही मात्रा में सुपर फास्फेट देना चाहिए।

(3) 4 से 9 वर्ष के पौधो को 60 से 90 कि. ग्रा. गोबर की खाद, 1.5 से 2 कि. ग्रा. अमोनियम सल्फेट तथा इतनी ही मात्रा मे सुपर फास्फट देना चाहिए।

(4) 20 वर्ष और इससे बड़े प्रति पौधे मे 100 से 200 कि. ग्रा. गोबर की खाद 2.25 से 4 कि.ग्रा. अमोनियम सल्फेट तथा इतनी ही मात्रा मे सुपर फास्फेट देना चाहिए।

(ग) **कटाई छटाई—**जो शाखाएँ एक दूसरे के ऊपर बढ़ रही हो, भूमि के पास से निकल रही हो या बिमारी लगी हुई हो उन्हे काट कर फेंक देना चाहिए, अगर शाखाएँ भूमि को छू रही हो तो उन्हें भी काट देना चाहिए।

(घ) **निराई गुड़ाई—**समय-समय पर खरपतवार निकालने चाहिए तथा पौधे के आस-पास की मिट्टी को गोड़ देना चाहिए।

(ङ) **पौधों का संरक्षण—**कीडो तथा बिमारियो की रोकथाम के लिए समय-समय पर 20-40 मिली मीटर डायमोक्रोन तथा 350 ग्राम बलाई टोक्स को 100 लीटरस पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।

फलों का आना—

कलिकायन पेड़ों पर लगभग चार साल बाद फल आने शुरू हो जाते हैं लेकिन सामान्य फसल कलिकायन के सात साल बाद आना शुरू करती है। फूल आने के करीब-करीब नौ मास बाद फल पकने शुरू हो जाते है। सीड लिंग पौधो पर 8 से 10 साल में फल आना शुरू होना है।

पैदावार—

फलो की पैदावार अलग-अलग क्षेत्रों के हिसाब से होती है जैसे

(1) स्वीट औरेंज 9200 किलो प्रति हैक्टयर (पंजाब में)।

(2) स्वीट औरेंज 12900 किलो प्रति हैक्टयर (बम्बई में)
(3) स्वीट औरेंज 16590 किलो प्रति हैक्टयर (आंध्र में)

स्वीट औरेंज के 10 से 20 साल के पौधे की औसत उपज एक पौधे पर 500 से 600 फल होती है।

कीड़े—

(1) **लेमन बटर फलाई**—नियंत्रण (1) हाथ से पकड़ कर मार देना चाहिए। (2) 50 प्रतिशत की डी. टी. टी. का छिडकाव करना चाहिए।

(2) **स्टेम बोरर**—(1) कैटरपिलर को तने से बाहर निकाल देना चाहिए। (2) हल्का केरोसीन तेल तथा पेट्रोल तने के छिद्र में भर देना चाहिए।

(3) **फ्रुट सकिंग मोथ**—नियंत्रण (1) फलो को बेंग करना चाहिए। (2) 50 प्रतिशत वेटेविल डी. डी. टी., 454 ग्राम गॅस रोल तथा 135 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

(4) **लीफ माइनर**—नियत्रण (1) हाथ से पकड कर मार देना चाहिए। 2) निकोटीन सल्फेट 40 प्रतिशत, 2 किलो ग्राम साबुन, 2 किलो वेटेविल डी. डी. टी. (50 प्रतिशत), 20 दिन के अन्तर से तीन बार छिड़कना चाहिए।

बीमारियां—

(1) **सिटरस केन्कर—**

नियंत्रण बोरडेक्स मिक्श्चर (4-4-50) का छिड़काव करना चाहिए। खराब पत्तियों को तोड कर फैंक देना चाहिये तथा नयी पत्तियों पर (3-3-50) बोरडेक्स मिक्श्चर छिड़कना चाहिए।

(2) **पिंक डिजीज्**

नियंत्रण (1) घाव को बोरडेक्स लूब्दी से बन्द कर देना चाहिये। (2) पेड़ पर (3-3-50) अनुपात का बोरडेक्स मिक्श्चर छिड़कना चाहिए।

(3) **ब्राउन रुट**

नियंत्रण (1) इसके लिए रजिस्टेन्ट रुट स्टाक जैसे जेमबरी का प्रयोग करना चाहिए। (2) बीमार भाग को 25 प्रतिशत वाले हल्के क्रुड कारबोनिक अम्ल से पेन्ट कर देना चाहिये।

(4) **डाइ बैक—**

नियंत्रण इसके प्रभावित भाग को तोड़ देना चाहिए।

REFERENCES

1. Brads, O. A. 1955 Prunning methods for fruit trees. Ont (Vine Lond,) rpt. 22-30.
2. Mathur, N. K. 1971 Neebu ke bag kaise lagayen. Kisan Bharti III (1): 31-33.

3. Norris, R. E. 1955 Hedging of florida citrus flacer. 115.
4. Prosser, D. S 1955 Grove hedging studies on citrus. fla, hort, Sae 18-20
5. Prosser. D. S. etal 1955 Bulk handling fresh citrus fruits. fla. bul. 564.
6. Reece, P. C. 1945 Fruits set in sweet orange in relation to flowering habit Ashs. 46. 81-82.
7. Reet, H. J. etal 1954 Fertilizers and nutrial sprays for citrus. fla. bul 536.
8 Reather, W. 1954 Effect of method of timing nitrogen fertilization on the yield and quality of orange. fla, hort. Sae 20-26.
9. Sites, J. W. 1951 Irrigation research with florida citrus. fla. hort Sae. 64 : 71:79.

केले की उन्नत कृषि क्रियायें

—एस० पी० त्यागी,
बी० एड० (कृषि)

केला प्राचीन काल से ही आहार के दृष्टि कोण से बहुत महत्वपूर्ण फल माना जाता है। उसे निर्धन लोगो का आहार भी कहते है। भारत मे सबसे अधिक मद्रास में 56171 हेक्टर क्षेत्र मे इसकी खेती होती है। उसकी औसत उपज 200-250 कुन्टल प्रति हैक्टर है जब कि उसकी उपज 600 कुन्टल प्रति हैक्टर तक हो सकती है। केले के फल में पोटाश, चूना, लोहा और विटामिन पाये जाते हैं। विटामिनो मे ए, बी 1 बी2 और सी अधिक मात्रा मे उपस्थित होते है। इनके साथ-साथ डी और ई भी कुछ मात्रा मे पाये जाते है। पके फलो में विटामिन सी. 01 से 0.11 मिली ग्राम व शक्कर 20 प्रतिशत तक पाई जाती है। केले के व्यापारिक मात्रा मे शुष्क पदार्थ जिसको (बनाना फिग) कहते है, बनाया जाता है जिससे काफी विदेशी मुद्रा प्राप्त की जाती है।

अतः इस फल की उपरोक्त महत्वताओं को दृष्टि में रखते हुए प्रति हैक्टर उत्पादन में वृद्धि करना अति आवश्यक है। उत्पादन में वृद्धि केवल उन्नत कृषि पद्धतियों को अपना कर ही हो सकती हे। केले की उन्नत कृषि निम्न प्रकार की जा सकती है।

जलवायु का चुनाव :

केला एक उष्ण कटिबन्धीय फल है। अतः इसे केवल गर्म व नम जलवायु में ही उगाया जा सकता है। केला न तो अधिक ठण्डे स्थानों पर और न उन स्थानों पर जहाँ की जलवायु शुष्क और सिंचाई का कोई प्रबन्ध न हो। केला 175 सेन्टीमीटर से 335 सेन्टीमीटर वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में बड़ी आसानी से उगाया जा सकता है लेकिन कम वर्षा वाले क्षेत्रों मे भी जहाँ सिंचाई का उचित प्रबन्ध हो केले की खेती आसानी से की जा सकती हे। केले के लिये तापक्रम व आर्द्रता निम्न प्रकार होने चाहिए:—

अधिकतम तापक्रम	35 डिग्री सेन्टीग्रेड
अनुकुल तापक्रम	26.7 डिग्री सेन्टीग्रेड
न्यूनतम तापक्रम	16.1 डिग्री सेन्टीग्रेड
आर्द्रता	63 प्रतिशत से 77 प्र० तक

भूमि :

प्रायः जिन भूमियो मे गन्ने और धान की फसलो की खेती आसानी से हो जाती है उन्ही भूमियों में केले की खेती भी सुगमता पूर्वक हो सकती है। लेकिन कपास की काली भूमि जो 4 फुट से 5 फुट तक गहरी हो केले के लिये उपयुक्त है। हल्की काली भूमि मे भी केला उगाया जा सकता है। लेकिन

केले के लिए दोमट व बलुई दोमट उत्तम मानी गई है। यदि उनमे सिचाई के साधनों का उत्तम प्रबन्ध हो। भूमि मे यदि अम्लीयता .05 प्रतिशत या इससे अधिक हो तो केले की खेती नही की जा सकती। प्राय: क्षारीय भूमि अथवा जिन भूमियों में चूने व ह्यूमस की मात्रा अधिक होती है, केले के लिए उत्तम होती है।

भूमि की तैयारी :

जिन भूमियों में जीवांश की मात्रा कम हो उनमे हरी खाद की फसलें जैसे ढैंचा व सनई उगाकर भली प्रकार मिट्टी पलटने वाले हल से मिला देनी चाहिए। जिन भूमियों मे हरी खाद देना असम्भव हो, उनमें गली सड़ी गोबर या कम्पोस्ट की खाद 30 से 35 टन प्रति हेक्टर मिट्टी में मिला देना चाहिए। भूमि की प्रथम जुताई किसी मिट्टी पलटते वाले हल, उसके बाद हेक्टर, हैरो से गहरी जुताई करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगा कर भूमि को समतल कर देना चाहिए। यदि भूमि में नमी का अभाव हो तो ऐसी भूमि की सिचाई कर देनी चाहिए।

उन्नत किस्में :

केले की बहुत सी किस्में होती है जिनमें से कुछ खाने की किस्मे और कुछ सब्जी की किस्में होती है।

सब्जी की किस्में :

1. नन्द्राण 2. मंथन 3. नीमेबन 4. पच मोन्थावादीस
5. पीले टेन 6. कुदीर वाली 7. मिन्डोली 8. हजारा
9 तोरू बोदान और 10. मुगिल, मुख्य है।

फल वाली जातियाँ :

1. लाल केला 2. बेलची 3. रामेली 4. बसरांई 5 मुँथेली
6. पूवन 7. चक्का केली और 8. राजा पुरी।

प्रसारण :

केले की जाति बीज पैदा नही करती अत. इसका प्रसारण वानस्पतिक प्रसारण विधि से किया जाता है। इस विधि में सकर में ही नये पौधे तैयार किये जाते हैं। सकर दो प्रकार के होते हैं।

1. **सोर्ड सकर :** ये सकर पौधों के राइजोम से निकल कर बहुत शीघ्र वृद्धि करते है। उनके नीचे का केन्द्र व्यास में लगभग तीन इंच मोटा हो जाता है। ये पतली और छोटी पत्तियां उत्पन्न करते है।

2. **वाटर सकर :** वाटर सकर पांच छः माह में निर्बल तथा नाटे कद के रह जाते है। इनकी पत्तियां सौर्ड सकर से चौड़ी पाई जाती है।

केले के प्रसारण के लिए सौर्ड सकर ही उत्तम समझे जाते है क्योंकि उनसे वाटर सकर की अपेक्षा

पौधे मजबूत, उत्तम गुण वाले फूल, शीघ्र फल दायक प्राप्त होते है। पौध के लिये 2-3 फीट की ऊँचाई वाले सकर उत्तम होते है।

गड्ढे बनाना

केला नालियो व गड्ढों में लगाया जाता है परन्तु उचित विधि गड्ढो मे ही प्रति रोपण करने की है। क्योकि इस विधि में उत्पादन अधिक, पौधो की मृत्यु कम होती है। गड्ढो का आधार $\frac{1}{2} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2}$ मीटर लम्बा चौडा व गहरा होना चाहिए। गड्ढों से गड्ढों की दूरी भिन्न-भिन्न किस्मो मे भिन्न-भिन्न होती होती है जो अग्र लिखित है:—

1. लाल केला	—	$2\frac{1}{2}$ — 3 मीटर
2. वेलची	—	$2\frac{1}{2}$ — 3 मीटर
3. राजेली	—	2 — $2\frac{1}{2}$ मीटर
4. बसराई	—	$1\frac{1}{2}$ — 2 मीटर
5. मुंथली	—	$2\frac{1}{2}$ — 3 मीटर
6. चक्र केली	—	2 — $2\frac{1}{2}$ मीटर

गड्ढे पक्ति में बनाने चाहिए। पंक्ति से पक्ति की आपसी दूरी ऊँची वाली जातियो में पाच मीटर और बोनी जातियों मे तीन मीटर उचित रहती है।

पौध की रोपाई

पौध रोपने से पहले 10 किलो ग्राम गोबर की खाद, 1 किलो ग्राम सुफर फासफेट का मिश्रण प्रति गड्ढा मिला देना चाहिए। रोपने का उत्तम समय दक्षिणी भारत में फरवरी–मार्च, बम्बई मे जुलाई, अगस्त माह है। लेकिन स्याल कोट एग्रीकलचरल रिसर्च स्टेशन पर किये गये प्रयोगो के अनुसार चक्र केली के रोपने का उत्तम समय जून बताया है। रोपने से पहले चुने हुए सकर को 2 प्रतिशत कापर सल्फेट में डुबो देना चाहिए। रोपाई करने मे इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि सकर का राईजोम भूमि मे बिल्कुल ढक जाय। रोपते समय पौधा गड्ढे के केन्द्र मे सीधा खडा होना चाहिए। बाद में तने के चारो ओर मिट्टी दबा देनी चाहिए। ऐसा करने से पौधे की मृत्यु न्यूनतम होती हैं। रोपने के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए।

सिंचाई :

प्रथम सिचाई के बाद 8-10 दिन के अन्तर पर सिचाई करते रहना चाहिए। गर्मी के दिनो में 3-5 एकड़ इच पानी की आवश्यकता होती है।

खाद :

(1) केले को नाइट्रोजन 6 औंस, फासफोरस 2 औंस, और पोटाश 4 औस प्रति गड्ढा देना चाहिए। या

(2) अंडी की खली 2-2.50 किलो ग्राम अमोनियम सल्फेट 750 ग्राम, सुपर फासफेट 11-12 ओस, पोटेशियम सल्फेट 1-11 औस का मिश्रण रोपाई के 20-25 दिन के अन्तर पर प्रति पौधा देना चाहिए। या

(3) अंडी की खाद तथा मछली की खाद का मिश्रण निम्न प्रकार देना चाहिए :

प्रथम मात्रा	—	2 किलो ग्राम अंडी की खली
द्वितीय मात्रा	—	3 किलो ग्राम अंडी की खली
तृतीय मात्रा	—	1 किलो ग्राम अंडी, 2½–3 किलो मछली की खाद
चतुर्थ मात्रा	—	2 किलो ग्राम अंडी की खली ।

इस मात्रा को 20-25 दिन के अन्तर पर 3-4 माह तक बराबर देते रहना चाहिए ।

मिट्टी चढाना:—

जब पौधों पर फल आये हुए हो उसे गिरने से बचाने के लिये मिट्टी चढाना अति आवश्यक है । प्रत्येक पौधे पर 23 सेन्टीमीटर मिट्टी और बांसों (लकड़ी) के सहारे से मदद देनी चाहिए ।

निकाई गुडाई.—

प्रत्येक सिचाई के वाद भूमि की गुडाई कर देनी चाहिए, इससे भूमि भुरभुरी हो जाती है, अधिक दिनो तक नमी स्थिर रहती है तथा खरपतवार नष्ट हो जाते है ।

मध्यस्थ फसलें: —

लगभग प्रथम वर्ष में जब तक पौधे अधिक न बढ़ सके पौधो के बीच बैगन, टमाटर, गोभी आदि सब्जियां उगाई जा सकती है ।

छटाई:—

तने के साथ साथ जो सकर निकलते हैं प्रथम और द्वितीय सकर को काट देना चाहिए और तीसरे सकर को छोड़ देना चाहिए । तीसरे सकर के बाद वाले सकर को भी काट देना चाहिए । ऐसा करने से हमे लगातार फल मिलते रहेंगे । जिस वृक्ष से गुच्छा काट लिया जाय उसे भी काट देना चाहिए ।

फल आना·—

केले की भिन्न-भिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न समय में ही फल आते है । बसराई केला 14 माह बाद लाल केला 12 माह बाद, पूवन 12-14 माह और मारिशस 7½ माह बाद फल देते है । प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि जून में बोई गई चक्र केली 85 प्रतिशत, बोन्ता 83 प्रतिशत और मारिशस 75 प्रतिशत जनवरी में फल देते है ।

तोड़ाई:—

केले को हरी अवस्था में ही जब पूर्ण प्रौढ हो जाय तेज चाकू से डठल सहित इतनी दूरी पर काटा जाय की गुच्छे के प्रथम फल और कटाव की दूरी 10 इंच हो ।

फलो का पकाना:—

गुच्छों के डंठल पर वैसलीन पोत कर या लहसुन का कुछ भाग डंठल के अन्दर दे कर फिर बंद कमरे में किसी भी साधन से धुआ पहुंचाते है । ऐसा करने से पकाव शीघ्र और फलों का रंग समान व सुन्दर हो जाता है ।

उपज:—

बसराई 650-700 कुन्तल प्रति हैक्टर, पूवन 650-700 कुन्तल प्रति हैक्टर और औसत उपज 550 कुन्तल प्रति हैक्टर हो सकती है ।

सुरक्षित रखना :—

गुच्छे में सडाव की क्रिया रोकने के लिये डंठल के कटे भाग पर वैसलीन या मोम या तारकोल लगाकर ऐसे कमरे मे जिसका ताप 57 डिग्री फा० और आर्द्रता 85 प्रतिशत हो तो केले को कुछ समय तक सुरक्षित रख सकते है ।

रोग व कीड़े. —

1. **बनाना रोग**—यह एक कवक रोग है । कवक के प्रभाव से पूरा पौधा सूख जाता है । ऐसे पौधो में फल नहीं बनता । प्रभावित पौधो को उखाड कर जला देना चाहिए । अवरोधी जाति जैसे इम्पीरियल नं. 1 उगानी चाहिए ।

2 **फ्रुट ऐन्थेकनोज**—यह बिमारी कवक द्वारा उत्पन्न होती है जो फलों पर लगती है । प्रभावित फलो पर काले धब्बे पडकर फल सड जाते है । इसके लिये अमोनिक कापर कार्बोनेट का हल्का घोल छिड़कना चाहिए ।

3. **बडराट:**—यह एक वैक्टीरिया से फैलती है इसका आक्रमण सकर पर होता है जो भूरे रंग के होकर सड़ जाते है । इससे बचाने के लिये पौधों को नाइट्रेट आफ सोडा उचित मात्रा में देना चहिए ।

4. **लीफ ब्लाइट**—यह रोग भी वैक्टीरियाँ द्वारा फैलता है । इसका प्रभाव पत्तियो की नसों पर होकर पत्तियाँ काली होकर तने में सडन पैदा कर देती है जिससे पौधे छोटे रह जाते है और फल नही आते है । ऐसे पौधो को उखाड देना चाहिए ।

5 **बंची टाप**—यह एक विषाणु रोग है । इसके आक्रमण से पतियाँ छोटी सकरी होकर किनारे ऊपर की और मुड़ जाते है । पौधे का ऊपरी भाग एक गुच्छे का रूप बना लेता है । इस प्रकार पौधो पर फल नहीं आते है । प्रभावित पौधों को काट कर भूमि मे दबा देना चाहिए ।

कीड़े.—

1. **तना छिद्रक**—यह कीट पौधे के तने में छिद्र करता है जिससे तना सड कर गिर पड़ता है । ऐसे पौधों को काट कर जला देना चाहिए या पेरिस ग्रीन और आटा मिलाकर पौधे के प्रभावित अंगो पर लगा देना चाहिए । इसे खाते ही ये कीट मर जाते है ।

2. **फल छिद्रक**—यह फलो पर निचले भाग से आक्रमण करते है और फिर फलों के मध्य भाग तक पहुँच जाते है । जिससे फल नष्ट हो जाते हैं । फलों पर डी० डी० टी० का घोल छिडकना चाहिए ।

REFERENCES

1. Anonymous 1963 Checking clorosis in banana plantation. Indian Horticulture. VII (3) : 9-10.
2. Gujral, S. R. 1963 The banana in India. Indian Council of Agriculture Research, New Delhi. 1-55.
3. Kumar, L. S. S. & etal 1963 Fruit Crops–Banana. Agriculture in India. Asia Publishing House, Bombay. 129-133.
4. Lal, G. & etal 1967 Canning fruit of banana. Preservation of fruit & vegetables. Indian Council of Agriculture Research, New Delhi. 60-63.
5. Lavania, M L. 1966 Banana. Bharat me fal aur fulon ki kheti. Single Book Depo., Baraut. 212-221.
6. Patil, M R. 1970 Organising banana export. Indian Horticulture VII (1) : 3-4.
7. Shanmugavelu, K. G. 1972 Horticultural Research in Tamil Nadu. Intensive Agriculture. IX (12) : 23-27.
8. Siddappa, S. G. & etal 1969 Utilization of Banana. Indian Horticulture XIV (1) : 7-8.
9. Singh, J. 1965 Bharat men fal utpadan. Kitab Mahal 56 A, Zero Road, Allahabad. 284-315.
10. Singh, S. & etal 1963 The Banana. Fruit culture in India. I. C. A. R., New Delhi. 108-127.
11. Singh, S & etal 1967 The Banana. Fruit culture in India. I. C. A. R., New Delhi. 102-117.

अंगूर की खेती

राजाराम कटियार
बी० एड० (कृषि)

परिचय--भारतवर्ष मे अगूर की खेती भिन्न भिन्न जलवायु मे होती है। उत्तरी भारत में अंगूर पंजाब, उत्तर प्रदेश, और हिमाचल प्रदेश में पैदा किया जाता है। यह वर्ष में बसत ऋतु में और गर्मी में फलता है, दक्षिणी भारत मे यह मुख्य रूप से बम्बई, हैदराबाद, मैसूर तथा मद्रास के भागो में पैदा किया जाता है। दक्षिण भारत में यह गर्मी मे फलता है।

ताजे अगूर मे 70 से 85 प्रतिशत पानी, 15 से 25 प्रतिशत शक्कर, 0·3 से 1·5 प्रतिशत अम्ल तथा 0·3 से 0·5 प्रतिशत नमक पाया जाता है। एक किलो ग्राम अगूर में 800 कैलौरी ऊर्जा होती है जब कि एक किलो ग्राम दूध मे 600 कैलौरी ऊर्जा होती है। अतः अंगूर स्वास्थ्य के लिए बहुत ही लाभदायक फल सिद्ध हुआ है। इसीलिए लोग इसे खाने के काम में लाते है।

जलवायु:—सिचाई की अच्छी सुविधा वाले सूखे क्षेत्रो में अंगूर की फसल सफलता पूर्वक ली जा सकती है। इसके लिए 30 सेन्टी मीटर से लेकर 75 सेन्टी मीटर तक वार्षिक वर्षा व 40 डिगरी सेन्टीग्रेड ताप वाले क्षेत्र उत्तम समझे गये है। इन क्षेत्रों में अंगूर सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है।

भूमि:—अंगूर की किस्म के अनुसार भूमि की आवश्यकता पडती है अधिकतर इसकी खेती हल्की दोमट भूमि में जहाँ पर जल निकास का उचित प्रंबध हो, इसके लिए सर्वोत्तम समझी गयी है।

गड्ढों की तैयारी:—अगूर के लिए गड्ढे से गड्ढे की दूरी 2 मीटर तथा पंक्ति से पक्ति की दूरी 3 मीटर रख कर लाइनों में 60×60×60 सेन्टी मीटर आकार के गड्ढे बोने के पहले ही तैयार कर लेते है और प्रत्येक गड्ढे मे 600 ग्राम पोटाश, 160 ग्राम फासफोरस 40 किलो ग्राम गोबर की अच्छी सड़ी हुयी खाद व 50 ग्राम गैमिक्सीन पाउडर मिला कर भर देते है और गड्ढे को मिट्टी से बन्द कर देते है।

कलम की तैयारी:—अगूर की बेलें अधिकतर कलम द्वारा तैयार की जाती है। उत्तरी भारत में एक वर्ष पुरानी टहनियो को कलम के लिए, फरवरी में बेलो की कटाई-छटाई के समय काट लेते हैं इन कटी हुयी कलमों की लम्बाई 23 से 30 सेन्टी मीटर रखते हैं फिर इनका बंडल बना कर नमीदार रेत में 1 माह तक रखते हैं जिससे कलमों की गाँठे अच्छी तरह से विकसित हो जायें।

कलमों को नर्सरी में लगाना:—विकसित गाँठो वाली कलमों को 3 माह के लिए नर्सरी में गाड़ते हैं, हाथ से तैयार की गयी कलमों को 20 सेन्टी मीटर से 25 सेन्टी मीटर की दूरी पर लगाते हें। मैसूर में 38 सेन्टी मीटर से 75 सेन्टी मीटर तथा मद्रास मे 30 सेन्टी मीटर से 62 सेन्टी मीटर की दूरी पर लगाते हैं।

गड्ढों में लगाने की विधि: —जिन कलमों में 4 से 5 पत्तियाँ तथा गाँठो पर जडे निकल आवे, तो उनको पहले से तैयार किये गये गड्ढों में जिसमे 40 किलो ग्राम गोबर की खाद, या 15 किलो ग्राम कम्पोस्ट खाद मिली है उनमे 15 सेन्टी मीटर गहरी कलमो को गाड़ देना चाहिए। और बाद मे सिंचाई कर देनी चाहिए।

उगाने की विधि:— अंगूर की बेलो की कटाई-छटाई करके उनको निम्नलिखित विधि से उगाते है।

1. **शीर्ष विधि**:—इस विधि मे बेलों को छोटी छोटी झाड़ी के रूप में तैयार किया जाता है। इसके तने को सहारा देकर ऊँचाई में बढने दिया जाता है बढ़ने वाली शाखा को जुलाई मे 5 फीट से 8 फ़ीट की ऊँचाई पर से काट लिया जाता है और 3 या 4 बगल की शाखाओं को बढने दिया जाता है। उनका आकार कलश की भाँति का बना लिया जाता है। फरवरी में पहली कटाई-छटाँई के समय फल लगने वाली शाखाओं से बगल वाली शाखाओं को थोडा छोटा करते है। गर्मी में ये फल लगने वाली डालियाँ ही वृक्ष का आकार बनाती हैं। दूसरी कटाई के समय 8 या 10 टहनियों को तीसरे साल फलने के लिए छोड देते हैं।

2. **बेंत विधि**:—इस विधि द्वारा बेलों को दो तार की जाली पर चढ़ाते हैं शीर्ष विधि की तरह तने को ऊपर से काट देते है। प्रत्येक कटी हुयी शाखा पर कमचियों का विकास होता हे। उन्हें तार की दो जालियो से बाँध देते है। प्रत्येक कमची पर 10 से 12 कलियाँ आती है। अगली वर्ष की फसल के लिए प्रत्येक शाखा पर बढने वाली और फल लगने वाली शाखा छोड़ देते हैं।

3. **कुन्ज विधि**:—जब बेल 5 फीट से 7 फीट ऊँचाई तक पहुँच जाती है तब तने को झुका कर तार वाली जाली के साथ लगा देते हैं काट-छाँट के समय तने के ऊपर जाने वाली शाखाओ के बिल्कुल पास नीचे की ओर अन्य फल वाली शाखायें छोड़ दी जाती हैं।

4. **मण्डप विधि**:—कुंज विधि से उगाई गयी बेलों को भूमि से लगभग 7 फीट तक 2 या 3 शाखाओ को बढ़ने दिया जाता है। इन शाखाओं को मण्डप के समतल तारों से बाँध कर बढ़ने तथा फैलने दिया जाता है।

खरपतवार निकालना: —प्रत्येक कटाई के बाद हल से या हाथ से गुडाई कर देना चाहिए। जिससे खरपतवार नष्ट हो जाय। तथा गड्ढो के भी खरपतवार हाथ से निकाल देना चाहिये।

सिंचाई:—पहली सिंचाई कलम लगाने के तुरन्त बाद कर देनी चाहिए। फिर प्रत्येक कटाई-छटाई के बाद सिंचाई करना आवश्यक होता हैं क्योंकि कटाई के बाद नयी-नयी बेलें आने लगती है। गर्मी के दिनों में हर 15वें दिन बेलों की सिंचाई करते रहना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक:— बेलो की कटाई छटाई के समय प्रति बेल 25 किलो ग्राम अच्छी सड़ी हुयी गोबर की खाद, तथा 75 ग्राम से 100 ग्राम फासफोरस व 150 ग्राम से 200 ग्राम पोटाश खाद डालना चाहिए। इसके बाद प्रति वर्ष निम्नलिखित ढंग से खाद व उर्वरक देना चाहिए।

वर्ष	अमोनियम सल्फेट	सुपर फासफेट	पोटाश
प्रथम वर्ष	0·5 कि. ग्राम	0·3 कि. ग्राम	0 4 कि ग्राम
द्वितीय वर्ष	1·00 कि. ग्राम	0·5 कि. ग्राम	0·5 कि. ग्राम
तृतीय वर्ष	1·5 कि. ग्राम	1·00 कि. ग्राम	1 00 कि ग्राम
चतुर्थ वर्ष	2·5 से 3 कि. ग्राम	2·5 से 3 कि ग्राम	2·5-3 कि. ग्राम

जातियाँ:—अंगूर की उन्नतशील जातियाँ निम्नलिखित हैं। जो क्षेत्र के अनुसार उपज देने में उत्तम है।

1. **मध्य भारत के लिए** —(i) अनावेशाही (ii) थामसन सीड लेस (iii) सुलताना और (iv) मोतिया।

2 **दक्षिणी भारत के लिए**:—(i) अनाबेशाही (ii) किसमिस (iii) बगलौरी ब्ल्यू और (iv) भोकरी।

3. **उत्तरी भारत के लिए**—(i) परलेट (ii) ब्यूटी सीड लेस (iii) अनावे शाही (iv) थामसन और (v) गुलाबी अंगूर।

4. **पश्चिमी भारत के लिए**—(i) ब्लैक हेग बर्ग (ii) भोकरी, (iii) सलेक्सन नं० 7 (iv) गुलाबी, (v) बंगलौरी और (vi) कन्धारी आदि।

बीमारियां—अंगूर मे मुख्य रूप से निम्नलिखित बीमारियाँ लगती हैं।

1. **अंगूर का ब्रूण रोग**—यह अगूर का प्रमुख रोग है यह बेलों के हरे भाग पर अपना आक्रमण करता है।। इस रोग की पहचान यह है कि पत्तियो पर खुरदरे भूरे रंग के धब्बे पडने लगते है। और पत्तियाँ सूख सूख कर गिरने लगती हैं। जिस से उपज पर काफी प्रभाव पड़ता है।

रोकथाम—इस बीमारी से बचाने के लिए निम्निलिखित उपाय करना चाहिए।

(i) बगीचो को साफ रखना चाहिए।

(ii) रोग ग्रस्त पौधों को उखाड कर जला देना चाहिए।

(iii) 3:3:50 के अनुपात मे वोर्डो मिक्सचर का छिड़काव प्रत्येक 15 दिन के अन्तर पर करते रहना चहिए।

2. **पाउड्री मिल्ड्यू**—यह रोग पत्तियों में धब्बे के रूप में सफेद चूर्ण जैसा जम जाता है। इसका प्रभाव अधिक सर्दी पड़ने पर होता है।

रोकथाम--(i) गन्धक का बारीक चूर्ण लगभग 20 से 25 किलो ग्राम प्रति हैक्टर भुरकने से यह रोग समाप्त हो जाता है।

3. **रोमिल फफूंदी**:—यह रोग अधिक खतरनाक होता है। यह फल आने के समय अपना प्रकोप करता है, इस रोग की यह पहचान है कि पत्तियों पर पीले-पीले धब्बे पडने लगते हैं।

रोकथाम :—(i) 3: 3. 50 के अनुपात में बोर्डों मिक्सचर का भुरकाव करना चाहिए।

(ii) रोगी पौधों को अलग करके जला देना चाहिए।

हानि कारक कीड़े:—अंगूर में निम्नलिखित हानि कारक कीट लगते हैं।

1. **अंगूर की मकड़ी**:—यह अंगूर की पत्तियों के निचले भाग पर रहती हैं। तथा पत्तियों के रस को चूसती है। जिससे पत्तियां सूख-सूख कर गिरने लगती हैं।

रोकथाम :—(i) डाई मेक्रान का 0.02 प्रतिशत अथवा मैलाथियान का 0.05 प्रतिशत के घोल को फल तोड़ने के 2 सप्ताह पूर्व छिड़काव करना चाहिए।

2. **थ्रिप्स**.—यह काले रंग का कीड़ा होता है इसका प्रकोप सितम्बर, अक्टूबर में पत्तियों पर होता है यह भी पत्तियों का रस चूसता है।

रोकथाम :—(i) मैलाथियान 0.05 प्रतिशत अथवा डी० डी० टी० का 0.05 प्रनिशत के घोल का छिड़काव फल तोड़ने के 2 सप्ताह पूर्व करना चाहिए।

3. **अंगूर का गिडार**:—यह अँगुली की बनावट के भाँति का कीडा होता है, यह पौधे के हरे भाग को बड़ी तेजी से खाता है। जिससे पौधा सूख जाता है।

रोकथाम :—5 प्रतिशत वाले बी० एच० सी० का भुरकाव करना चाहिए।

4. **दीमक**:—यह पौधो की जड़ों में लगती है तथा यह जड़ों को काट देती है जिससे पौधा सूख जाता है।

रोकथाम :—(i) बुआई के समय कलमों के दोनो किनारों को बी० एच० सी० के घोल में डुबा कर लगाना चाहिए।

(ii) 0 5 प्रतिशत ऐल्ड्रिन या 10 प्रतिशत वाला बी० एच० सी० चूर्ण 50 ग्राम प्रति गड्ढा मिला देना चाहिए।

5. **अंगूर की बर्रे**:—यह पके हुये फलो का रस चूसते हैं जिससे फसल खराब हो जाती है यह बर्रे लाल, पीले रंग के होते है।

रोकथाम :—0.5 प्रतिशत मैलाथियान के घोल का हल्का सा छिड़काव कर देना चाहिए।

फलों को तोड़ना:—जब अंगुर के दाने रग बदलने लगे तथा खाने में मीठे लगने लगे तब अंगूर के गुच्छों को तोड़ना चाहिए।

उपज:—अंगूर की उपज किस्म पर निर्भर करती है। जैसे—भोकरी किस्म की तथा अनावे शाही की उपज क्रमशः 4533 किलो ग्राम व 5443 किलो ग्राम प्रति हैक्टर हो जाती है।

मारकेटिंग तथा पैकिंग:—अगर अंगूर को बाहर भेजना है तो लकडी के 32.5 सेन्टी मीटर लम्बे

तथा 25 सेन्टी मीटर चौड़े व 12.5 सेन्टी मीटर गहरे डिब्बों में लकडी या धान का बुरादा डाल कर 4 किलो ग्राम ताजे अगूर को रख कर ऊपर से कागज की कटिंग रखकर वन्द कर देना चाहिए। जिस से अंगूर बाहर न निकल सकें। और इस प्रकार आसानी से बाहर भेजे जा सकते है।

स्टोरेजः—अगर अगूर को दो माह तक रखना है तो अंगूर तोडने के एक या दो सप्ताह पूर्व 0.2 प्रतिशत कैपटान का छिड़काव कर देना चाहिए जिससे स्टोरेज में रॉट बीमारी के धब्बे न लग सकें और फिर अगूर को तोडकर 2 डिगरी से० ग्रेड से 4° सेन्टीग्रेड वाले कोल्ड स्टोरेज में रखते हैं। इस प्रकार रखने से अगूर खराब नहीं होता है। और दो माह तक रक्खा जा सकता है।

REFERENCES

1.	Anonymous.	1967	What to do, when for grapes. Intensive Agriculture V (6) : 17.
2.	Anonymous	1968	All India grape show in Jaipur. Intensive Agriculture. VI (7) : 20.
3.	Anonymous.	1968	Gebberellic acid goes well with grapes. Intensive Agriculture, VI (3) : 3.
4	Agarwal, Keshaw Das.	1969	Anguron ke kheti. XXII (5) : 21.
5.	Byas, Shubhash Chandra	1969	Madhya Pradash ma Anguron ke Vydhiyan. Kheti. XXI (11) : 14.
6.	Bagwa. G. S.	1972	The famous Anabe-e shahi grape. Indian farming. XII (7), 31.
7.	Dhamdhere, S. V. & Saxana. D. K	1968	Grow grape in home garden Intensive Agriculture. V (11) : 19.
8.	Katiyar, J. N.	1969	Anguron ke upaj Barane ka liye Harmons. Kheti XXII (1) : 17.
9.	Kulkarni, V. J.	1970	Fruit bud studies in grapes The Andhra Agriculture XXII (3), 75.
10.	Jayarajan, R. Sinka, M. K. & Raghubir Sing	1970	Incidence of Anthracnose and cereospora leaf spot disease on grape varieties. The Madras Agriculture Journal. XXXXXVII (3), 160.
11.	Mukherjee, S. K. Nath, N. and Yadav, I. S.	1969	Beuty seedless and early grape variety. Indian farming. XIX (7), 18.
12.	Pal B. P.	1970	Bagwani me Anusandhan Kheti. XXII, (11-12) : 5.
13.	Randhawa, C.S. Mruthyajaya, B. C. and Kohli, R. R.		Some climpses of grape Industry in South India. Indian farming. XVIII (11) : 27.

14. Randhava, M.S. 1970 Uttar Bharat ma bal udyog. Kheti, XXII (11-12) : 12

15. Singh, R. K., Pande, V., and Yamunadhar 1970 Anguron ka keet Vyadhiyan. Kheti. XXIII (4) : 22.

16. Sri Ayodhya and Sri R. Bilash 1970 Vagyanic dhung se Anguron ke kheti our taknihiyan. Krashak Samachar. XIV (1) : 13.

17. Singh, Daljit 1965 The famous Anabe-e-shahi grapes. Indian farming. XV (7) : 31.

18. Verma, Davi 1968 Grape growing is a big business. Intensive Agriculture. V (6) : 24.

19. Vasu Dav J. K. 1968 Yes, grapes grow even in Rajasthan. Intensive Agriculture. VI (9) : 9.

भारत में पशु पालन की समस्यायें

अजय पाल सिंह
बी० एड० (कृषि)

भारतवर्ष के ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक दृष्टि से पशु पालन का विशेष महत्व है। लगभग 80 प्रतिशत मानव जन संख्या, 90 प्रतिशत पशुओ की जन संख्या भारत के साढे पाँच लाख गाँवो में ही रहती है। और $\frac{3}{4}$ लगभग मानव जन संख्या प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर ही निर्भर है। पशु हमको केवल संतुलित भोजन ही प्रदान नही करते है बल्कि उत्पादन बढाने के लिये हमें इनसे बैलो की शक्ति प्राप्त होती है। भारत मे ससार के पशु की कुल जन सख्या की $\frac{1}{4}$ पशुओं की जन सख्या है। 1961 के सर्वेक्षण के अनुसार भारतवर्ष मे लाइव स्टोक जन सख्या 3,36,441 हजार है जिसमें:—

गाय	175670 हजार	भैंस	51037 हजार
बकरी	60813 हजार	घोडे	1350 हजार
भेड	40280 हजार	अन्य पशु	7291 हजार

भारतवर्ष मे इतने पशु होते हुए भी कुल दुग्ध उत्पादन प्रति वर्ष 25 मिलियन टन है तथा प्रति गाय दुग्ध उत्पादन औसतन 295 लीटरस प्रति वर्ष है, जो कि डेनमार्क व यू० एस० ए० के उत्पादन का $\frac{1}{5}$ व $\frac{1}{6}$ है। कम उत्पादन के कारण भारतीय अधिक संख्या मे पशु रखते हैं। आजकल हमारे भोजन का स्तर बहुत निम्न है। 20 प्रतिशत उर्जा, 30 प्रतिशत प्रोटीन निम्न स्तर के कारण आवश्यकता से कम प्रति मनुष्य प्राप्त होती है। राष्ट्रीय सलाहकार समिति ने 1949 मे प्रति मनुष्य 110 ओंस दुग्ध, 10 ओस माँश व एक अंडा संतुलित भोजन के लिये नियत किया। अत.हमारे लिये बडा आवश्यक है कि हम अपने भोजन मे दुग्ध, माँश, अण्डों का अधिक प्रयोग करें। यह तभी सम्भव है कि दुग्ध उत्पादन दुगना बढाया जाय परन्तु पशुओं के खराब प्रबन्ध व अपर्याप्त चारे (असतुलित भोजन) के कारण दुग्ध उत्पादन बढाना बड़ा मुश्किल है।

संतुलित भोजन :

वह भोजन जिसमें पशुओ की 24 घण्टे की आवश्यकता की पूर्ति करने वाले सभी पोषक तत्व व पशु स्वस्थ रखने के लिये आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा व अनुपात मे मिलते हों। सतुलित भोजन कहलाता है।

लेकिन कुछ ऐसे कारण हैं जिनसे पशुओ को सतुलित भोजन हम नही दे पाते वे निम्न हैं, इन्हें पशुओ के आहार की समस्यायें कहते हैं।

पशुओं के संतुलित आहार की कुछ समस्यायें

(1) उत्पादन की अपेक्षा पशु जन संख्या में अधिक वृद्धि :—

भारत के कुल पशुओं में से 75 प्रतिशत पशु कम उत्पादन के कारण से आर्थिक नही समझे जाते हैं। शुद्ध जाति मे भी $\frac{1}{3}$ पशुओं से अच्छा दुग्ध उत्पादन मिलता है। हमारे देश का दुग्ध उत्पादन 1951, 56, 61 में सर्वेक्षण द्वारा 17, 19, 22 मिलियन टन पाया गया। 1967 मे देश का कुल दुग्ध उत्पादन 25 मिलियन टन था, जो कि पशु संख्या के अनुपात में काफी कम है।

(2) चरागाह की कमियां :—

जन संख्या 2, 4, 8, 16 के अनुपात में व कृषि भूमि 2, 3, 4, 5 के अनुपात में बढ़ रही है। जो क्षेत्र चरागाह के अन्दर था उस पर खेती होने लगी है। भारत में अब 2073 करोड़ हैक्टर भूमि चरागाह के लिये है। इसमें से कुछ ही क्षेत्रफल पूरे वर्ष चरागाह के काम आता है। अन्यथा वर्षात् में ही पशु यहाँ चरते हैं। चरागाह की कमी में पशु पूर्ण स्वस्थ नही रहते हैं।

(3) अपर्याप्त राशन :—

पशुओं को अपर्याप्त चारा मिलता है, जो कि पशुओं के नाश का मुख्य कारण है। ए० पी० सिंह, आर० पी० सिंह हरे चारे की फसलें प्रकाशन न० 4 के अनुसार यह अनुमान लगाया गया कि भारत के पशुओं के लिये 289 करोड़ हरे चारे की प्रति वर्ष आवश्यकता होती है जबकि पूर्ति केवल 111 करोड़ टन की है। इस प्रकार 178 करोड़ टन हरे चारे की कमी की समस्या हमारे सामने है। 23.8 मिलियन टन कंसन्ट्रेट की कमी है। जिसके कारण कम दुग्ध उत्पादन होता है। तथा अपर्याप्त चारे व खिलाने की गलत विधियों से परिपक्व अवस्था में देरी, दो ब्यातों के बीच अधिक दिनों का अन्तर, बछड़ों की अधिक, समस्यायें सामने आती हैं।

(4) मिलवां फसल और गलत फसल चक्र :—

किसान अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर फसलें उगाते है ज्ञान की कमी के कारण गलत फसल चक्र व मिलाकर फसल बो देते है। जिससे उत्पादन कम होता है चारे की मात्रा भी कम मिलती है।

(5) जहरीले पौधे :

कुछ जहरीले पौधे चरागाह की घास या चारे के साथ उग आते हैं। जैसे कंकरोर ओली एंडर। अधिक भूखे पशु, घास के साथ इन्हें भी खा लेते है या किसान फसल के साथ इन्हें काट लेते है। इनके बीज फसल में हो जाते है और दूसरे वर्ष इन हानिकारक पौधों की अधिकता हो जाती है इससे पशुओं को काफी हानि होती है।

(6) **सपानौजैनेटिक पौधे** ·

कुछ पौधे ऐसे है जिनमे छोटी अवस्था में हायड्रोसायनिक एसिड अधिक पाया जाता है। इस एसिड की 2-3 पौड, मात्रा पशुओ के लिये हानिकारक होती है। जैसे—ज्वार, स्टार ग्रास आदि के पौधे।

(7) **कीटोसिस :**

असंतुलित भोजन देने से कार्बोहाइड्रेट्स व प्रोटीन का संतुलन बिगड जाता है। कार्बोहाइड्रेट्स की कमी में फैट मैटाबौलिज्म बढ जाता है। रक्त में कीटौन पदार्थों की मात्रा अधिक हो जाती है। इसे कीटो-सिस कहते है।

(8) **मिलवां फार्मिग (खेती) की कमी :**

भारत के किसान कृषि भी करते हैं तथा दुग्ध के लिये गाय भेंस रखते है लेकिन ज्ञान की कमी के कारण मिश्रित खेती के सिद्धान्तो को नहीं जानते है, पशुओ को केवल अपनी आवश्यकता पूर्ति, घी व दूध के लिये पालते है। कृषि भी व्यक्तिगत आवश्यकता के लिये करते हैं वे फसल इस उद्देश्य से नहीं बोते कि पशुओ को चारा प्रचुर मात्रा में मिल सके।

(9) **उन्नत कृषि क्रियाएें व बीज की कमी :**

भारतवासी पुराने ढंग से खेती करते हैं पुराने बीज बोते है तथा सिंचाई के साधन भी कम है जिसके कारण उत्पादन कम मिलता है। सिंचाई की कमी के कारण फसलें कम वृद्धि करती है।

(10) **सूखाचारा तथा साइलेज बनाने की कमी :**

इनकी कमी में काफी चारा बेकार जाता है बहुत सी घास सूखने पर बेकार हो जाती है। सूखाचारा तथा साइलेज की कमी में पशुओं को पोषक तत्व कम मिलते हैं।

(11) **फोरेज डिमोंस्ट्रेशन केन्द्रों की कमी :**

इन केन्द्रों की कमी के कारण किसान साइलेज तथा सूखा चारा बनाना नही जान पाते है। एवं चारे की कमी के समय में उन्हे चारे की सहायता भी नहीं मिल पाती है।

उन्नतिशील क्रियायें तथा सुझाव

(1) **चरागाह तथा चारे के साधनों का विकास :**

गांव की सामूहिक भूमि मे नियमित तथा रुटेसनली चरागाह स्थापित करने चाहिये तथा उनके प्रबन्ध का अधिकार ग्राम पंचायत, सहकारी संस्थाओं का होना चाहिये। पहाडी जगहों पर जहाँ भूमि है चरागाहों को पशु संख्या के आधार पर बनाना चाहिये। कुछ भाग चरागाह का गर्मियों में घास की कटिंग के लिये छोड़ देना चाहिए।

(2) **मिश्रित फसल प्रणाली व अच्छे फसल चक्र :**

फसलें मिलाकर बोना भी हमारे लिये लाभदायक रहता है। जैसे चरी + काउपी शीघ्र उपयुक्त चारा देती है, बाजरा + काउपी + मौठ, व काउपी + मौठ बोने से अधिक मात्रा मे शीघ्र चारा मिलता है। फसल चक्र अच्छे बनाने से भूमि की उर्वरा शक्ति स्थिर रहती है जिससे अधिक उपज मिलती है। जिससे पशु खूब दूध देते है जैसे बाजरा–तोरई–गेहूँ–मूग व गेहूँ–मूग–मक्का–तोरई (1 वर्ष) गेहूँ–मूँग–ज्वार–आलू (1 वर्ष)।

(3) **प्राकृतिक घास की भूमि का अच्छा प्रबन्ध :**

खाली भूमि में कटाव हो जाते हैं। कांस आदि खरपतवार हो जाते हैं। अत. उर्वरा शक्ति का ह्रास होने लगता है इसके लिये चारे की फसलों की खेती करने से विशेपकर फलीदार फसले लेने से उर्वरा शक्ति कायम रहती है। और अधिक मात्रा में चारा प्राप्त होता है।

(4) **कल्टीवेटिड भूमि से अधिक मात्रा में चारे का उत्पादन :**

उन्नत कृषि क्रियाओं व उन्नत बीजो का प्रयोग करना चाहिये, जिससे अमुक क्षेत्रफल से अधिक मात्रा में चारे का उत्पादन मिल सके जैसे ज्वार की सादा उपज 23 टन होती है। परन्तु उन्नत कृषि क्रियाये अपनाने पर 60 टन प्रति हैक्टर उपज प्राप्त होती है।

(5) **हे और साइलेज बनाना :**

चारों को घास के रूप में सुखाकर रखने से चारे का पौषक मूल्य अधिक रहता है। खेत में जल्दी फसल काटने से दूसरे फसल बो देते है। साइलेज बनाने से चारा स्वादिष्ट होता है तथा दूसरे मौसम में भी मिल जाता है फसल के पौधे के सब भाग प्रयोग में आ जाते हैं। फसल को बीमारी से बचाकर शीघ्र काट लेते हैं कुछ घासें जो सुखा कर प्रयोग में नहीं आती साइलेज के रूप में काम आती हैं।

(6) **प्रोटीन कार्बोहाइड्रेट्स का संतुलन :**

पशुओं को सूखी अवस्था में मेंन्टीनेंस चारा देते है तो वे उसी से स्वस्थ रहते है लेकिन ब्याने पर उनकी खुराक मे वृद्धि आवश्यक है, अन्यथा प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स का सतुलन बिगड़ जायेगा और कीटोसिस हो जाती है ऐसे पशु को ब्याने के 5-6 सप्ताह बाद तक 1-10 पौंड प्रति दिन सीरा देना चाहिये।

(7) **धान के भूसे के पोषक तत्वों की लेग्यूम चारे से पूर्ति :**

धान के भूसे में पोपक तत्वों की कमी के कारण लेग्यूमस चारे पूरक के रूप में दिये जाते हैं। धान की काफी मात्रा से जो पोपक तत्व मिलते हैं वे लेग्यूमस की थोड़ी मात्रा से मिल जाते हैं, जैसें बरसीम

(8) **नहर की पटरियों की घास को चराना :**

वर्षात के मौसम में नहर की पटरियों की घास को रख कर चराना चाहिए।

(9) **चरागाह विकास, व प्रबंध :**

सामुहिक चरागाह के अतिरिक्त व्यक्तिगत चरागाह भी बनाये जायं पशुओं की संख्या के अनुसार चरागाह का क्षेत्रफल रखना चाहिये ओवर ग्रेजिंग से घास उखड़ कर बेकार हो जायेगी और अंडर ग्रेजिंग से घास पकने पर पौषक मूल्य कम हो जायेगा। अतः इन्हे रोकना चाहिये।

(10) **मिश्रित खेती का विकास :**

कृषि के साथ अन्य व्यवसाय जैसे, डेरी, व पोल्ट्री से काफी लाभ होता है। जिससे पशुओं का मल मूत्र खेती में काम आता है तथा खेती में उत्पादित चारा अच्छा व सस्ते रूप में पशुओं के काम आता है।

(11) **पशु बध ग्रह व गोसदन का विकास :**

बेकार पशुओं को गऊशाला में भेज देना चाहिये ताकि वे खड़ी फसल को हानि न पहुंचाये। अधिक बुड्ढे पशुओं का अमेरिका की तरह पशु वध ग्रहों में मरवा देना चाहिये उसकी हड्डी, चमडा प्रयोग मे ले लें।

(12) **जन्तु जन्य खाद्य पदार्थों का प्रयोग :**

बटर मिल्क, स्किम मिल्क, ब्लड मील, फिस मील छोटे बच्चों व पशुओं को देने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

(13) **फोरेज डिमोन्स्ट्रेशन केन्द्रों का विकास .**

गाव में फोरेज डिमोस्ट्रेशन केन्द्र होने चाहिये जो जनता को सूखा चारा और साइलेज बनाने, की विधि डिमोंस्ट्रेशन करके दिखाये व आपत्ति के समय चारा देकर मदद करें।

(14) फोरेज रिसर्च इन्स्ट्रीट्यट का विकास किया जाय ताकि लोगों को अधिक पैदावार देने वाले चारों की जाति एवं उत्पादन क्रिया सम्बन्धी ज्ञान करा सके।

आर. ओ. व्हाइट के अनुसार

कुछ कंसन्ट्रेटस मिक्सचर

(1)	रेप केक	25 भाग
	गेहूं की भूसी	15 भाग
	मक्का	35 भाग
	चना	25 भाग
(2)	चना	45 भाग
	गेहू की भूसी	20 भाग
	बिनौले	25 भाग
	मूगफली की खली	10 भाग
(3)	कोटन सीड केक	25 भाग
	दली हुई मक्का	35 भाग
	क्रसड जई	10 भाग
	गेहूं की भूसी	20 भाग
(4)	मूंगफली की खली	10 भाग
	राइस ब्रान	25 भाग
	चना	65 भाग

मिनरल मिक्सचर

बोन मील	57 भाग
ग्राउंड चौक	10 भाग

कामन साल्ट	24·4 भाग
आयरन औक्साइड	0·4 भाग
पोटेशियम आयोडाइड	0·25 भाग
स्टार्च सोडियम	0·75 भाग
कार्बोनेट	0·75 भाग
सोडियम थायोसल्फेट	0·75 भाग
कौपर सल्फेट	0·25 भाग
मेंगनीज सल्फेट	0 30 भाग
कौबाल्ट क्लोराइड	0·05 भाग

तालिका नं० 1

दो वर्ष तक के पशुओं का प्रतिदिन का संतुलित (आहार) भोजन

आयु	हरा चारा पौंड में	सूखा चारा पौंड में	दाने का मिश्रण पौंड में	साल्ट ओंस में	मिनरल मिश्रण औंस में	होल मिल्क पौंड में	स्किम्ड मिल्क पौंड में
जन्म से 5 दिन तक	—	—	—	0.5	0 25	5	—
6 से 15 दिन	—	—	—	0.5	0.25	6	—
16 से 30 दिन	—	0.5	0.25	0.5	0.25	7	—
1 से 2 माह	2	1.00	0.25	0.5	0.25	8	3
2 से 3 माह	3	1.50	0.75	0.5	0.25	5	8
3 से 4 माह	5	1.50	0.75	0 5	0.25	3	10
4 से 5 माह	6	2.00	1.00	0 5	0.25	—	12
5 से 6 माह	7	3.00	1.50	0.5	0.25	—	5
7 से 12 माह	10	5.00	2.00	1.0	0 25	—	—
1 से 2 वर्ष	20	5.00	2.00	1.0	0.25	—	—
2 वर्ष से ऊपर	30	5.00	2.00	2.0	0 50	—	—

तालिका नं० 2

प्रौढ़ पशुओं के लिये प्रतिदिन का संतुलित आहार

पशु	हरा चारा पौंड में	सूखा चारा पौंड में	कनसन्ट्रेटस पौंड में	साल्ट औस में	मिनरल मिश्रण औस में
दूध वाली गाय वजन 500-800 पौंड	20—25	10—12	3 पौंड व 1 पौड प्रति 3 पौड दूध पर	2	1
दूध वाली भैंस भार 600-1000 पौड	35—40	10—12	3 पौंड व 1 पौंड प्रति 2.5 पौड दूध पर	2	1
बैल भार 800-1000 पौंड	35—40	10—12	3 पौंड, व 2 पौड कार्य पर	2	1
गाय का सांड भार 1000-1500 पौंड	40—45	10—12	3 पौंड व 1 पौड सर्विस के लिए	2	1
भैंस सांड भार 1000-1500 पौंड	45—55	10—12	3 पौंड व 1 पौड सर्विस के लिए	2	1

REFERENCES

1. Anonymous 1970 Fodder (Nutritive value of green pala) Advances in farm research. Indian farming XX (4) : 41.
2. Deyee, G. P. 1962 Feeding live stock. Horticulture in our lives. The interstate. Danvll, Illiions, Put 279·
3. Harbans Singh. 1967 Your cattle need good ration intensive Agriculture V (6) : 5-6.
4. Hughes, H. D. Health, M. E. & Metcalfe, D. S. 1962 Composition & Nutritive value of forage, forages 50. The Lowa state university press, mer, Lowa, U. S. A.
5. Mahanta, K. C. 1961 Feeds & feeding Animal husbandry Kitabistan Allahabad 88-161.

6. Misra, R. C. 1967 Indian dairy industry still in its infancy. Indian farming XIX (1) : 43-45.

7. Murty, B .R. 1969 New hybrids of Bajra. Indian faɹming XIX (1) : 13-15.

8. Neumann, A. L. 1966 Grasses as a feed for feeding cattle, beef cattle 5th. John wiley & Sons, Inc. Newyork, Landon. 454-490

9. Patel, B. D. and Singh, O. N. 1966 Four Foreing fodders that against afraid of frost. Indian farming XVI (7) : 34-36.

10. Prajapati, M. C. 1970 Range inprovement in west Rajasthan Indian farming XX (2) : 34-37.

11. Ray S. N. & Sharma, G. L. 1966 Nutritional disorders in cattle' farm. Bulletin (New Series) (23) : I. C. A. R. New Delhi, 43-48.

12. Randhawa M. S. 1962 Agricultural and Animal husbandry region. Agriculture and animal husbandry in India I. C. A. R. New Delhi, 69-70.

13. Sen, K. C. 1962 Nutritive values of Indian cattle feeds and the feeding of the animals. I. C. A. R. New Delhi, Bulletin (25) : 2 9.

14. Serviss, G. H. & Ahlgren, G. H. 1965 Managing pastures. Grass land farming johan wiley and Sons, Ino. New Delhi, 81-91.

15. Whit, R. O. Moir, T. R. C. & Cerper, J. P. 1965 The feeding value of pastures & fodder grasses in the tropics, grass in Agri 141-161. Food and Agriculture organization of the United Nations.

16. White, R. O. 1964 Fodders feeds and concentrates. The grass land and fodder resource of India. 143-170. I. C. A. R. New Delhi, scientific monograph. (22).

चारागाह का महत्व एवं उसका प्रबन्ध

चरणजीतलाल धिगड़ा
बी. एड. (कृषि)

प्रस्तावना —

हमारे देश में मवेशियों की सख्या लगभग 33·6 करोड़ है जो कि संसार भर के मवेशियों की एक चौथाई संख्या से भी ज्यादा है। परन्तु इन्हे सन्तुलित आहार देने के लिए पर्याप्त हरा चारा नहीं मिलता है, क्योंकि कृषि योग्य भूमि का केवल चार प्रतिशत भाग ही चारा उगाने के काम आता है। जबकि अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में क्रमश: 60 प्रतिशत व 25 प्रतिशत भूमि पर पशुओं के लिए हरा चारा उगाया जाता है। इसके साथ-साथ अगर हम चारे की किस्म पर भी सोचें तो समस्या और भी जटिल मालूम पडती है। हमारे देश मे पशु आहार मे 16 प्रतिशत भूसा, 66 प्रतिशत हरा चारा तथा 75 प्रतिशत दाने की कमी है। इस कमी का सीधा प्रभाव पशु की उत्पादकता पर पड़ता है। यही कारण है कि विदेशो की अपेक्षा हमारे देश मे पशुओ का उत्पादन काफी पिछड़ा हुआ है।

भारतीय गाय वर्ष भर मे औसतन 137 कि. ग्रा. दूध देती है। जबकि नीदरलैण्ड, अमेरिका, डेनमार्क और पश्चिमी जर्मनी की गायें क्रमश: औसतन 4220, 4250, 3710 तथा 3530 कि. ग्रा. दूध देती हैं। इस प्रकार हमारे यहाँ गाय से औसत उपलब्धि अपेक्षित उपलब्धि का बीसवाँ भाग है।

दुनिया के कुछ विकसित देशों में दूध और दूध से बने हुए पदार्थ, जिनकी मात्रा 500 से 1500 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन होती है। हमारे देश में जबकि पशुओं की सख्या अधिक है फिर भी दूध प्रति व्यक्ति प्रतिदिन लगभग 125 ग्राम ही मिल पाता है। जो कि सन्तुलित भोजन के लिए बहुत ही कम मात्रा है।

पशुओ से जो दूध प्राप्त होता है उसकी भी मात्रा बहुत कम है। जिसके विभिन्न कारणों में से चरागाहों का कम होना भी एक मुख्य कारण है।

चरागाहों की उपयोगिता—

प्राचीन काल से ही पशुओ को खिलाने का सर्वोत्तम तरीका उन्हें चरागाहों में चराना ही काम में लाया गया है। पशुओं को बाँध कर खिलाने की अपेक्षा उन्हे चरागाहों में चराना अधिक उपयोगी है।

चरागाहों में पशुओं को चराने से पशुपालकों को निम्नांकित लाभ होते हैं—

(1) चरागाहो में पशुओं को चराकर उन्हें आहार प्रप्त कराना एक प्राकृतिक ढंग है। तथा पशुओं को आहार देने की यह सबसे सरल विधि है।

(2) चरागाहों में चरने वाले पशुओं का स्वास्थ्य उत्तम तथा उनका शरीर गठीला व मजबूत होता है।

(3) चरागाहों मे चरने वाले पशुओं का शारीरिक व्यायाम होता रहता है जिससे वे चुस्त तथा फुर्तीले होते हैं जबकि एक जगह बाध कर पशु को खिलाया जायेगा तो शारीरिक व्यायाम के अभाव में वह सुस्त रहेगा।

(4) चरागाहों मे पशुओं को धूप तथा स्वच्छ वायु मिलती है जो एक स्वस्थ पशु के लिए नितान्त आवश्यक है। ऐसे वातावरण मे पशु निरोग रहते है।

(5) चरागाहो में पशुओं को आहार देने की विधि सबसे सस्ती है इसमे खर्च कम आता है। तथा श्रम एवं समय दोनों की बचत होती है।

(6) चरागाहों मे चरने वाले पशुओं को एकदम ताजी व हरी घास मिलती है इससे घास मे स्थित सभी पोषक तत्व पशुवों को ज्यों के त्यो मिल जाते हैं। ये घास प्राकृतिक रूप से पशु आहार के सभी पोषक तत्वो से युक्त होती हैं।

आदर्श चरागाह की विशेषताएँ—

एक आदर्श चरागाह में निम्नलिखित गुणों का होना परमावश्यक है—

(1) चरागाह पशुशाला के नजदीक होना चाहिए ताकि दुधारू पशुओं को चरागाह तक पहुँचने में अधिक समय न लगे।

(2) पशुशाला के पशुओं के लिए चरागाह का आने जाने का मार्ग निजी होना चाहिये ताकि उनका सम्पर्क दूसरे जानवरों से न हो सके।

(3) एक आदर्श चरागाह मे खरपतवार एवं विषैले पौधे नहीं होने चाहियें। ऐसी जमीन जो खाली छोड़ दी जाती है तथा जिसमें विभिन्न प्रकार के खरपतवार उगे हुए हो उसे चरागाह नही कहा जा सकता।

(4) चरागाह कंटीले तारों से घिरा हुआ होना चाहिये ताकि जंगली या बाहरी अन्य पशु उसमें प्रवेश न कर सकें। डॉ० **रसल** के शब्दो मे जब तक चरागाह खुले एव बिना बाड़ के होंगे तब तक उनकी समुचित व्यवस्था नही हो सकती है। अच्छा बाड़ा लगाने से चरागाहों का काफी सुधार किया जा सकता है।

(5) जिन चरागाहो में सिचाई की जाती है उनका समतल होना बहुत ही आवश्यक है।

(6) चरागाहो की मिट्टी कठोर होनी चाहिये ताकि पशुओं के चरने से उनके खुरों द्वारा मिट्टी न खुद सके मिट्टी खुद जाने से चरागाह की मिट्टी खराब हो जायेगी तथा बरसात के दिनों में मिट्टी का क्षरण भी होगा।

(7) चरागाहों में स्थान-स्थान पर पशुओं के लिए छायादार वृक्ष होने चाहिये एवं पीने के लिए पानी का भी समुचित प्रबन्ध होना चाहिये।

(8) घास जमीन पर फैलने वाली एवं शीघ्र बढ़ने वाली होनी चाहिये ताकि पशुओं को चरने में सुविधा हो तथा मिट्टी का क्षरण भी न हो सके।

चरागाहों की व्यवस्था—

चरागाहो की भी अन्य फसलों की भाँति देख भाल की आवश्यकता पडती है। प्रत्येक चारागाह का समुचित प्रबन्ध निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है—

(1) **भूमि की स्थिति एवं उसकी तैयारी—**किसी जगह घास अथवा चारे की फसल लगाने के पूर्व उसके लिए योग्य भूमि की किस्म, उचित जलवायु तथा औसतन वर्षा का सही ज्ञान होना चाहिये। जिस भूमि पर चरागाह बनाया जाय उसका जल निकास ठीक होना चाहिये। इन बातों की उचित जानकारी के बाद ही चरागाहो के लिए उपयुक्त घास का चुनाव करना चाहिये।

बुआई से पूर्व जनवरी फरवरी मे खेत की दो-तीन जुताईयाँ कर देनी चाहिये। अन्तिम जुताई से पूर्व खेत में 50 गाड़ी प्रति हैक्टर गोबर की खाद डाल देनी चाहिये और उसे जुताई द्वारा भली प्रकार मिट्टी में मिला देनी चाहिये। इसके पश्चात् खेत को समतल कर देना चाहिए।

(2) **अच्छी किस्म की घास का चुनाव**—विभिन्न जलवायु एव मिट्टियों के लिए विभिन्न प्रकार की घासें उपयुक्त होती है। केन्द्रीय, मरु क्षेत्र अनुसंधान, संस्थान, जोधपुर के वैज्ञानिकों ने सूखे क्षेत्रों के लिए बहुत सी अच्छी एवं उपयोगी घासों पर परीक्षण किये है। रेतीली एवं रेत के बड़े-बड़े टीलों वाले क्षेत्रों में जहाँ पर औसतन वार्षिक वर्षा 350 मि. मी. से कम होती है वहाँ **'सेवन'** घास सबसे बढ़िया सिद्ध हुई है। इन क्षेत्रो मे 'अजन' एवं 'धामन' घास भी बडी सुगमता से उगाई जा सकती है।

कंकरीली, पथरीली, ढालू तथा ऊँची-नीची भूमि पर जहाँ पर औसतन वार्षिक वर्षा 150 से 500 मि. मी. होती है 'अंजन' घास, 'काला धामन' तथा ग्रामना' घास लगाना बहुत ही लाभदायक है।

अजन, धामन तथा ग्रामना घासें काली, चिकनी एव लाल मिट्टियों में उगाई जा सकती हैं। जहाँ पर 400 मि मी. से अधिक वर्षा होती है तथा जहाँ की मिट्टी भारी तथा चिकनी हो वहाँ पर 'करद' घास उगाना बहुत ही उपयुक्त है।

एफ. 2-5, पूसा जॉइन्ट नेपियर, नेपियर, हाथी घास, पैरा, गिनी, दूब, पलवन, सूडान, अजन, सेवन, धामन, करद, तथा ग्रामना आदि घासें बहु वर्षीय घासें हैं। एक बार लगाने से ये घासें 4-5 वर्ष तक हरा चारा देती रहती है।

पूसा जॉइन्ट नेपियर, हाथी घास और बाजरा के संकरण से पैदा की गई घास है। यह अच्छी उपजाऊ भूमि पर जहाँ सिंचाई की सुविधा हो, खूब अच्छी तरह उगाई जा सकती है।

यह एक सर्वोत्तम घास है जिसमें निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(1) जॉइन्ट नेपियर घास साधारण हाथी घास के मुकाबले में हरे चारे की दुगुनी पैदावार

देती है। साधारण हाथी घास की प्रति हैक्टेयर औसतन पैदावार 1400 क्विटल होती है जबकि जॉइन्ट नेपियर की प्रति हैक्टेयर पैदावार 2875 क्विटल तक हो जाती है।

(2) यह घास साधारण हाथी घास की अपेक्षा अधिक पौष्टिक होती है। इसमें 5 प्रतिशत अधिक प्रोटीन तथा 12 प्रतिशत अधिक मिठास पाया जाता हैं।

(3) जौइन्ट नेपियर घास की पत्तियाँ बड़ी तथा चिकनी होती हैं जबकि साधारण हाथी घास की पत्तिया खुरदरी होती हैं।

(4) इस घास में अन्य घासो की अपेक्षा कल्ले अधिक फूटते हैं जिससे ये अधिक पैदावार देती है।

(5) यह मुलायम तथा रसदार घास है। पशु इसको बडे चाव से खाते है।

(6) इस घास की वृद्धि दूसरे घासो की अपेक्षा अधिक तथा शीघ्र होती है जिससे इसकी पैदावार अधिक होती है।

(7) इस घास की जड़े अधिक तथा जल्दी बढती है जिसके फलस्वरूप ये भूमि में जल्दी स्थापित हो जाती है और इससे बोने के लिए अधिक जडे प्राप्त होती है।

(8) यह घास साधारण हाथी घास की अपेक्षा नाइट्रोजन के प्रभाव को अधिक मानती है।

(9) पूसा जौइन्ट नेपियर साधारण हाथी घास की अपेक्षा 50 प्रतिशत अधिक जड़ों की पैदावार देती है। इसकी जडें भूमि में एक फुट गहराई तक फैलती है। इस प्रकार ये भूमि को जीवांश पदार्थ भी प्रदान करती हैं।

एफ-2-5, बाजरा और ओरियन्टल घास के संकरण से पैदा की गई घास है। यह रेतीली भूमि और शीतकालीन मे खूब अच्छी तरह उगाई जा सकती है। यह एक सर्वोत्तम घास है।

बीज की उचित मात्रा एवं समय पर बुवाई—सेवन, अजन धामन, ग्रामना और करद घासें बीज तथा कलम दोनों ही तरीको से उगाई जा सकती है।

सेवन, रोड्स घास, जेन्ट स्टार घास, दूब, थिननेपियर, टोरपीडों घास कीकूयू घास के 70,000 से 80,000 कलमे प्रति हेक्टेयर के लिए प्रयाप्त होती है। इन घासों की बुवाई जुलाई मास में पहली अच्छी वर्षा होने पर आरंभ कर देनी चाहिये।

उत्तम विधि द्वारा बुवाई—इन घासों की बुवाई पंक्तियो में करनी चाहिये। बीज 1 से 2 सेंटी मीटर से ज्यादा गहराई पर न बोयें अन्यथा ज्यादा गहराई पर बीज बोने से अंकुरण बहुत ही कम होता है।

पूसा जौइन्ट नेपियर की बुवाई का ठीक ढंग अपनाइये—

(1) खेत मे 45 से 60 से. मी. के फासले पर मेड़ें बना लीजिये।

(2) मेडो पर 15 से. मी. के फासले पर जड़ों या तनों के टुकड़े लगा दीजिये।

(3) एक हेक्टेयर के लिए 20000 हजार से 30000 जड़ों या तनों के टुकड़े पर्याप्त होते हैं। प्रत्येक टुकड़े में कम से कम दो आखें होनी चाहिये।

खाद देना—अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए 102 कि. ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर के हिसाब से प्रति वर्ष चार बराबर भागों मे करके देना चाहिये। इस 102 कि. ग्रा. नाइट्रोजन की पूर्ति के लिए निम्नलिखित नाइट्रोजन उर्वरक उनके सामने लिखि हुई मात्रा में देना चाहिये।

(अ) केल्शियम अमोनियम नाइट्रेट या अमोनियम सल्फेट	560 कि ग्रा.	
या यूरिया	—	250 कि. ग्रा.

29 कि ग्रा. नाइट्रोजन हर तीन महीने के अवकाश से देना चाहिये। चारा काटने के पन्द्रह दिन बाद नाइट्रोजन की उपरोक्त मात्रा पौधो के गुच्छो के चारों तरफ डालकर भली प्रकार हाथ से या खुरपी से भूमि में मिला देना चाहिये। 135 कि ग्रा. सुपर फासफेट प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है।

चरागाह की सिंचाई —चारागाह से अधिक उपज लेने के लिए उसमे समय-समय पर पानी देना बहुत ही आवश्यक है। भूमि की जल धारण क्षमता के अनुसार ही चरागाह को पानी देना चाहिये। कम या अधिक सिंचाई करना दोनो ही हानिकारक है। अधिक सिंचाई से भूमि में स्थित, भोज्य पदार्थ रिसकर काफी नीचे चले जाते हैं और कम सिंचाई से घास की जड़ें जमीन की सतह पर निकल आयेंगी।

खरपतवार की रोकथाम—चरागाह मे उगे हुए विषैले एवं अनावश्यक पौधों को अवश्य ही उखाड़ देना चाहिये। ऐसा करने से केवल अवांछित एवं हानिकारक पौधों का ही विनाश नहीं होता है बल्कि अच्छे किस्म के हरे चारे की उपज भी बढ जाती है।

कटाई का सही तरीका—इस घास की कटाई, बुआई के समय के अनुसार की जाती है ये घास सर्दियों मे धीरे-धीरे बढती है। परन्तु वर्षा से शीघ्रता से बढ़ती है। अधिक कल्लें प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इसे जमीन से लगभग 10 से 15 से. मी. की ऊँचाई से काटा जाय।

नियमित विधि से चराई करना—चरागाह के सुप्रबन्ध के लिए उचित ढग से चराई करना अति आवश्यक है। प्रथम वर्ष चराई नही करके यदि कटाई की जाय तो अच्छा है। दूसरे वर्ष सितम्बर मास से चराई प्रारम्भ करना चाहिये। वैसे चराई की बहुत सी विधियां है परन्तु खण्ड क्रम विधि और होहेन विधि सर्वोत्तम है।

(क) **चराई की खण्ड क्रम विधि**—इस विधि से चरागाह की घास को कई छोटे-छोटे खण्डो में बाट दिया जाता है उसके बाद एक-एक खण्ड को एक या दो सप्ताह तक चराया जाता है। चराये हुए खण्डों की सिंचाई करके दो चार सप्ताह तक खाली छोड़ दिया जाता है।

(ख) **होहेन विधि**— चरागाह के सुप्रबन्ध व विकास के लिए सबसे अच्छी विधि है। यह ढग सर्व प्रथम जर्मनी मे प्रारम्भ किया गया था। इसके अन्तर्गत युवा एवं सूखे पशुओं को

दुधारू पशुओं से अलग रखा जाता है। चरागाह को 4 से 6 खण्डों में विभाजित करके पहले दुधारू पशुओं को तथा इन्हीं खण्डों में युवा एवं सूखे पशुओं को चराया जाता है।

उपज—भिन्न-भिन्न घासों की उपज भूमि और वर्षा पर निर्भर करती है जो निम्न सारिणी द्वारा स्पष्ट है—

विभिन्न घास की पैदावार सारिणी संख्या 1

घास की किस्म		प्रति हेक्टेयर घास की उत्पादन (टन में)	
(1)	अंजन	5–6	टन
(2)	सेव्रन	12–13	"
(3)	माखल	14–15	"
(4)	पन्दहरी कुशाल	8–10	"
(5)	पावन	5–6	"
(6)	रोड्स घास	12–13	"
(7)	जेन्ट स्टार घास	12–15	"
(8)	बारवारी	8–10	"
(9)	दूब	5–6	"
(10)	थिन नेपियर	12–15	"
(11)	पेरा घास	15–20	"
(12)	थिन गुनिया	12–15	"
(13)	पूसा जौइन्ट नेपियर	23–25	"

जहाँ पर चारागाह उन्नत होंगे वहाँ की पशुशाला भी उन्नत व विकसित होगी और वहाँ के मनुष्य मेहनती, होशियार तथा भाग्यवान होंगे।

भारत वर्ष में अब भी ऐसी भूमि का पर्याप्त क्षेत्र है जिस पर खेती नहीं की जाती है। इस भूमि का 345 लाख हेक्टेयर क्षेत्र ऐसा है जिस पर कृषि क्रियाएँ नहीं की जा सकती है परन्तु 213 लाख हेक्टेयर

भूमि ऐसी है जिस पर खेती की जा सकती है परन्तु वह बेकार पड़ी रहती है। इस प्रकार की सभी भूमि को सुन्दर चरागाह में विकसित किया जा सकता है तथा पशु पालन उद्योग को सुगमता पूर्वक चलाकर मवेशियों से अधिक से अधिक लाभ लिया जा सकता है।

REFERENCES

1.	Adhiya, V.	1966	Good fodder, a must for more milk, Indian Farming XVI (3) : 11-14.
2	Ahiya, L. D.	1970	Forage production in arid zone areas of Rajasthan. Indian Farming. XX (9) : 18-21
3.	Chakravarty, A. K.	1970	Forage production from arid deserts. Indian Farming XX (9) : 15-17.
4.	Dabadghao, P. N. & Sikka, S. M.	1966	Hand Book of Agriculture. I. C. A. R, New Delhi, 2nd Ed. 302-306.
5.	Daulay, H. C., Chakravarty, A. K. Bhatia, G. N.	1970	Inter cropping of grasses and legumes. Indian Farming. XIX (10) : 12-15.
6.	Ghosh, A. N.	1970	A plan for year round forage production in eastern India. Indian Farming. XX (9) : 11-13,
7.	Kulanand & Purohit	1963	Poisons, plants ot kumaon sheep pastures India live stock I (2) : 28.
8.	Kumar, L. S. S & etal.	1963	Agriculture in India Vol II. Crops, Asia Publishing House, 178-191.
9.	Lush, R. H.	1952	Pasture Production and Management. The Blockish Company, 1-171.
10.	Mehta, R.K., Singh, A. & Gosh, R.	1965	Inter Crop Pussa Giant Barseem with Napier Indian Farming. XV (9) : 45.
11.	Mehia, T. R.	1970	We can meximise forage production from unirrigated areas. Indian Farming XX (9) 5-6.

12. Paroda, P. S. & etal 1972 Ensure green fodder through out the year. Indian Farming. XXII (1) : 46.

13. Patel, B. D. 1966 Sheep grass for eastern Rajasthan. Indian Farming. XVI (1) : 37-40.

14. Patel, B. D. & Rathore, B. L. 1971 Grow two new forage crops. Indian Farming. XX (11) : 37-38.

15. Patel, B. M. 1970 Increased nutrients per unit area of land under fodders. Indian Faiming. XX (9) : 7-10.

16. Patro, R R. 1971 Fodder development in Andhra Pradesh. Dairy Extension. IX (2) : 9-10.

17. Raheja, P. C. 1966 Cultivating fodder crops and grasses in India. I. C. A. R. 68-85.

18. Rahya R. C 1966 Rajasthan desert can bloom with forage. Indian Farming. XX (12) : 4-7.

19. Ralwani, L. L. 1970 Cropping patterns for high milk production. Indian Farming. XX (9) : 26-30.

20. Singh, G. S. 1963 Grass that cuts your concentrates cost. Indian Live Stock I (2) : 37.

21 Singh, H. 1969 A Hand Book of Animal Husbandry for Extension Worker Revised Edition, I. C. A. R., 44-45.

22. Singh, H. K. 1971 Fertilization and inter cropping of setaria grass under irrigated condition. Indian Farming. XXI (5) : 11-13.

23. Singh, R. P. & Singh, S. P. 1966 Pussa Napier, Hare Chare Ki Pramukh Fasle, 1-7

24 Taneja, G. C. 1970 Essantials of a modern sheep pasture Indian Farming. XX (6) : 40-44.

25. Tomar, V. P. S Mahajan, J. M. & Chauhan, D. S. 1970 Rye grass for establishing temperate pasture. Indian Farming. XX (9) : 33-35.

26. Verma, M. L. Singh Mohinder, 1972 Ghatia Chare Ka Sudhar. Kheti XXIV (12) : 45-47;

27. Wheeler, W. A, 1957 Forage and Pasture Crops: D. Van Nostrand Company. 3-126.

28. Whyte, R. O. 1950 The Grass Land and Fodder Resources of India. I. C. A. R., 427-444.

29. Whyte, R. O. Moir, T. R. G. & Cooper, J. P. 1968 Grasses in Agriculture, F. A. O. 62-81.

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन तथा वितरण

भोपाल सिंह
बी. एड. (कृषि)

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। जिसकी 70-75% जन सख्या कृषि तथा इससे सम्बन्धित सहायक धन्धों पर निर्भर रहती है। जिसमें दूध-उत्पादन का कार्य भी एक सहायक आमदनी का धंधा है जो मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है परन्तु हमारे देश मे दूध की पैदावार बहुत कम है। दूसरी पंच-वर्षीय योजना में लगभग 190 लाख टन दूध का उत्पादन होता था। जिससे लगभग प्रत्येक व्यक्ति को 140 ग्रा. दूध औसत मिलता था। अब हमारे देश मे लगभग 200-220 टन दूध प्रति वर्ष पैदा होता है परन्तु जन सख्या के बढ़ने के अनुपात में यह बहुत कम है और इस प्रकार अब केवल प्रति व्यक्ति औसतन 100 ग्राम दूध प्रति दिन ही रह गया है, जबकि एक दिन में एक व्यक्ति को 250 ग्रा. दूध निश्चित किया गया है।

दूध की इतनी कम मात्रा होने पर भी जो कुछ दूध पैदा होता है वह भी स्वच्छ नही होता उनमे बीमारी के जीवाणु तथा अन्य प्रकार की गंदगी भरी रहती है। इस प्रकार हम दूध में होने वाली गदगी को दो भागो मे बांट सकते हैं।

(1) आंख से दिखाई देने वाली गंदगियां—

यह ऐसी गंदगी है जो आंख से दिखाई देती है जैसे चारे के टुकड़े, मक्खी, मच्छर, मिट्टी, बाल तथा अन्य प्रकार की गंदगियां जो 'ऐन' के बाहर से ही आती हैं।

(2) आँख से न दिखाई देने वाली गंदगी—

यह ऐसी गंदगी होती है जो आंख से दिखाई नहीं देती तथा इसे देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी यंत्र की सहायता लेनी पडती है। यह गदगी 'ऐन' के भीतर तथा बाहरी वातावरण दोनों से आती है। यदि बाहर से कोई गदगी न आये तो भी दूध में 300-1500 जीवाणु प्रति घन सेंटी मीटर तक होते हैं। बीमार पशु के दूध में जीवाणुओं की संख्या और भी अधिक होती है।

जिस दूध मे बाहर से कोई गंदगी न मिले तो ऐसे दूध को अपूति दूषित (अस्पटिकली ड्रोन मिल्क) कहते हैं। इस प्रकार यदि हम स्वच्छ दूध की परिभाषा करें तो वह निम्न प्रकार हो सकती है।

जिस दूध का उत्पादन स्वच्छ वातावरण में किया गया हो जो बाह्य दृश्य पदार्थ (विजिबल डर्ट) तथा बीमारी फैलाने वाले जीवाणुओ से मुक्त हो तथा जिसमें जीवाणु की संख्या भी कम हो ऐसे दूध को स्वच्छ दूध कहा जा सकता है।

स्वच्छ दूध पैदा न होने से कठिनाइयाँ—

यदि दूध स्वच्छता पूर्वक पैदा न किया जाय तो उसमें बहुत से हानिकारक कीटाणु जैसे टी. बी., टाइफाइड, मलेरिया इत्यादि के जीवाणु प्रवेश कर जाते हैं और उससे दूध के शीघ्र खराब होने का भय रहता है जो मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी बुरा असर डाल सकता है। स्वच्छ दूध पैदा न होने से निम्नलिखित कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती है।

(1) दूध के अन्दर गंदी बदबू प्रवेश कर जाती है।
(2) दूध शीघ्र खराब हो जाता है।
(3) दूध से बनने वाले पदार्थ जैसे दही, रबड़ी, लस्सी आदि भी अच्छी किस्म की नहीं बनती है।
(4) दूध का सेवन करने वालों में बिमारिया फैल सकती हैं।
(5) दूध का बाजार मे मूल्य भी कम हो जाता है।

उपरोक्त कठिनाइयों से बचने के लिए यह जरूरी है कि दूध को गंदा होने से बचाया जाय। दूध को गंदा होने से बचाने के लिए हमें यह देखना चाहिए कि कौन-कौन से कारक दूध को गंदा करते हैं।

दूध को गदा करने वाले मुख्य कारक—

(1) पशु का स्वास्थ्य और उसकी सफाई।
(2) दूध दुहने वालों की सफाई तथा स्वास्थ्य।
(3) दुग्ध-शाला की बनावट तथा सफाई।
(4) दूध दुहने में प्रयोग होने वाले बर्तन।
(5) पशुओं को चारा व दाना खिलाने की विधि।
(6) दूध निकालने में प्रयोग होने वाले यंत्र।
(7) पशु-शाला से दूध हटाने का समय।
(8) दूध छानने की विधि।
(9) अन्य कारण।

उपरोक्त कारण कैसे-कैसे दूध को गदा करते हैं इनका हम विस्तार से वर्णन इस प्रकार कर सकते हैं।

(1) पशु का स्वास्थ्य और उसकी सफाई—

जो पशु दूध देता है उसका स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए उसमें किसी भी प्रकार की बीमारी जैसे ऐन (अडर) की सूजन, थनैला तथा क्षय रोग, आदि बीमारिया नही होनी चाहिए। ऐसा होने से रोग के जीवाणु दूध में भी प्रवेश कर जाते हैं जिसका उपयोग मनुष्य द्वारा करने पर वह भी बीमारी से पीड़ित हो सकता है।

पशु के स्वास्थ्य के ठीक होने के साथ-साथ उसके शरीर की सफाई करना भी परम आवश्यक है। पशु की सफाई दूध निकालने से 1–1½ घंटा पहले कर देनी चाहिए। यदि गंदे पशु से दूध निकाला जाय तो वह गंदा हो जायेगा। एक प्रयोग द्वारा ज्ञात हुआ है कि पशु की सफाई करने पर जीवाणु की संख्या 2154 प्रति घन सेंटीमीटर तथा पशु की सफाई न करने पर 17027 जीवाणु प्रति घन सेंटीमीटर दूध में पाये गये। इसलिए पशु की सफाई तथा स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए।

(2) **दूध दुहने वाले की सफाई तथा स्वास्थ्य**—

पशु के स्वास्थ्य तथा उसकी सफाई के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उसके दूध निकालने वाले मनुष्य का स्वास्थ्य भी अच्छा हो उसमें किसी प्रकार की गंदी आदत जैसे थूकना, बीड़ी पीना, सिर को न ढकना, छींकना आदि नहीं होनी चाहिये।

दूध दुहने वाले मनुष्य को साफ तथा सफेद कपड़े पहनने चाहिए। दूध दुहने से पहले हाथों को साबुन से धोकर साफ करके तौलिये से पोंछना चाहिए तथा तब दूध निकालना चाहिए।

(3) **दुग्ध शाला की सफाई व बनावट**—

दुग्ध शाला सदैव साफ तथा स्वच्छ रहनी चाहिए। उसे दूध दुहने से 1–1½ घंटा पहले साफ कर लेना चाहिए। दीवालों पर कलई करनी चाहिये तथा पेशाब की नालियों मे फिनाइल डालना चाहिए। एक आदर्श पशुशाला के निम्नलिखित गुण हैं।

(1) पशुशाला प्रकाशमय होनी चाहिए।
(2) पशु शाला का खुला वातावरण होना चाहिए तथा हवा का आदान-प्रदान अच्छी तरह होना चाहिए।
(3) पशु-शाला का सवातन (वेन्टीलेशन) ठीक होना चाहिए।
(4) दूध इकट्ठा करने का कमरा पशुशाला से पश्चिम में होना चाहिए।
(5) कमरे पर जाली लगी होनी चाहिए जिससे मक्खी प्रवेश न कर सके।
(6) कमरे में दूध नापने वाले के अतिरिक्त कोई दूसरा आदमी प्रवेश नही करना चाहिए।

इस प्रकार पशुशाला की सफाई तथा बनावट अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(4) **दूध दुहने में प्रयोग होने वाले बर्तन**—

दूध दुहने वाले बर्तन का मुँह छोटा होना चाहिए यदि बर्तन बड़े मुँह वाला होगा तो उसमें जीवाणु शीघ्र तथा अधिक मात्रा में प्रवेश कर सकते है। प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि चौड़े मुँह के बर्तन में दूध निकालने से जीवाणुओं की संख्या लगभग 5000 प्रति घन सेंटीमीटर तथा छोटे मुँह के बर्तन में दूध निकालने से जीवाणुओं की संख्या लगभग 2700 प्रति घन सेंटीमीटर पाई गई, जबकि अन्य बातें समान रही।

दूध निकालने वाले बर्तनों को हत-जीवाणु (स्टरीलाईज) कर लेना चाहिए। हत-जीवाणु करने की विधि निम्न है।

(1) पहले बर्तनों को पानी से धोना चाहिए।
(2) गर्म पानी मे धोने वाला सोडा मिलाकर ब्रुश से रगड़ कर धोना।
(3) इसके बाद भाप या उबलते पानी से धोना।
(4) अंत में ठंडे पानी से धोना।

यदि बर्तनों को जीवाणु हनन के लिए सोडा तथा गर्म पानी न मिले तो 9-12% क्लोरीन जल से जीवाणु-हनन किया जा सकता है। मशीन द्वारा जीवाणु-हनन करने से बर्तन को 180^0 फा. पर 15 मिनट या 215^0 फा. पर 5 मिनट तक जीवाणु-हनन किया जाता है।

(5) **पशु को चारा व दाना खिलाने की विधि—**

वैज्ञानिको का विचार है पशु को चारा खिलाने के तुरन्त बाद दुहा **जाय और यदि पशु ने कोई दुर्गन्ध युक्त चारा खाया है** तो दूध मे उसकी बदबू आ जाती है। तथा चारे के छोटे-छोटे टुकड़े हवा में उड़ते रहते हैं, जो दूध को गंदा कर देते हैं। इसलिए पशु को चारा खिलाने के $1\frac{1}{2}$ या 2 घंटे बाद या चारा खिलाने से पहले दुहना चाहिए।

(6) **दूध दुहने में प्रयोग होने वाले यंत्र या मशीनः**—जिन डेरी फार्मों पर दूध निकालने के लिए मशीन का प्रयोग किया जाता है उनमें सबसे अधिक दूषण (कंटेमिनेशन) होता है। क्योंकि मशीन का रबड वाला भाग अच्छी तरह साफ नहीं होता इसलिये दूसरी बार दूध निकालने पर दूध दूषित हो जाता है।

(7) **पशुशाला से दूध हटाने का समयः**—दूध दुहने के तुरन्त बाद दूध को ढककर पशुशाला से हटा लेना चाहिये। ऐसा न करने पर दूध मे पशुशाला की गध तथा मक्खियाँ आदि प्रवेश कर जाती हैं। जिससे दूध गदा हो जाता है। इसलिए दूध को दूहने के तुरन्त बाद पशुशाला से हटा लेना चाहिये।

(8) **दूध को छानने की विधि—**

दूध को दुहने में चाहे कितनी भी सावधानी रखी जाय परन्तु उसमे कुछ न कुछ बाहरी गन्दगी अवश्य प्रवेश कर जाती है। **इसलिये दूध को अवश्य छानना चाहिए।** छानने में प्रयोग होने वाला कपडा या पैड बदलते रहना चाहिये नहीं तो वह दूध को और भी अधिक गदा कर सकता है। क्योंकि कपड़े पर गंदगी इकट्ठी होती रहती है।

(9) अन्य कारण—

उपरोक्त कारणो के अतिरिक्त दूध अन्य कारणो जैसे मक्खी, मच्छर, बिल्ली, कुत्ता, धूल भरी आंधी इत्यादि के कारण भी गंदा हो सकता है।

दूध का परिवहन करने में भी दूध गंदा होता है जैसे दूध एक स्थान से दूसरे स्थान को डिब्बों द्वारा ले जाया जाता है तो वह छलकता है और गंदा होता है। कभी-कभी परिवहन के समय ग्वाले भी दूध में नदी, नाले तथा तालाब का गंदा पानी उसमें मिला देते हैं, जिससे दूध गंदा हो जाता है।

यदि दूध को तुरन्त निरोगित (पास्चुराईज) नहीं किया जाता तो दूध को तुरन्त ठंडा कर देना चाहिए नही तो दूध मे जीवाणुओं की संख्या बढने लगती है। नीचे तालिका संख्या 1 में तापक्रम का प्रभाव दिखाया गया है।

तालिका संख्या 1

जीवाणुओं की संख्या पर तापक्रम का प्रभाव

दूध संचय करने का तापक्रम	ताजे दूध में जीवाणु संख्या	24 घंटे पश्चात जीवाणुओं की संख्या	48 घंटे बाद जीवाणुओ की संख्या	72 घटे बाद जीवाणुओ की संख्या
40° फा.	4295	4138	4566	8246
50° फा.	4295	13961	126626	5625266
60° फा.	4295	587333	33011111	326500000

हमारे देश में स्वच्छ दुग्ध उत्पादन पर कोई ध्यान नही दिया जाता इसी कारण हमारे देश मे जो दूध पैदा किया जाता है उसमें जीवाणुओं की संख्या अधिक होती है। दूध में जीवाणुओं की सख्या अधिक होने के निम्नलिखित कारण हैं —

(1) दूध दुहने से पहले बच्चों को थनों से दूध पिलाना।
(2) थनो को पानी से धोना तथा फिर भीगे थनों से दूध निकालना।
(3) दूध दुहने, परिवहन करने तथा वितरण में गंदे बर्तनो का प्रयोग करना।
(4) गदे पशुओं से दूध निकालना।
(5) गंदे हाथो से दूध निकालना।
(6) दूध निकालते समय गंदी आदतों का प्रयोग करना जैसे थूकना, बीडी पीना, छींकना आदि।
(7) अस्वस्थ मनुष्यों का कार्य करना।
(8) दूध निकालते समय सफाई का ध्यान न रखना।
(9) दूध को देर तक पशुशाला मे रखने से दूध का मच्छर, मक्खी द्वारा दूषित होना।
(10) परिवहन के समय दूध में पेड़ो की पत्तियाँ डालना।
(11) गन्दे पानी से दूध का अपमिश्रण करना।
(12) देश की गर्म जलवायु का होना।

(13) स्वच्छ दुग्ध उत्पादन की महत्ता को न समझना ।
(14) अशिक्षित व्यक्तियों का इस व्यवसाय में कार्य करना ।
(15) दूध व्यवसाय का अविकसित होना ।
(16) दूध व्यवसाय में अधिक धन का व्यय तथा कम लाभ का होना ।

उपरोक्त कारणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि हमारे देश में दूध का उत्पादन बहुत गंदे ढंग से होता है ।

दूध वितरण की समस्या—

हमारे देश मे बडे-बड़े शहरों में दूध के वितरण की बड़ी समस्या है क्योंकि अधिकतर दूध देने वाले पशु गावो में पाले जाते हैं । शहरो मे कुल दुग्ध उत्पादन का 5% ही पैदा होता है इसलिए दूध की समस्या रहती है । शहरों मे जो दूध पैदा होता है उसका वितरण दो प्रकार के ग्वाले करते है—

(1) पहली प्रकार के ग्वाले वे होते है जो 2-4 भैंसें दूध देने वाली रखते हैं । और उन्हें गली, मोहल्लो मे दूध लेने वाले ग्राहकों के पास जाकर दूध दुहते हैं । इस प्रकार का दूध वैसे तो शुद्ध होता है परन्तु उसमें जीवाणुओं की सख्या बहुत ज्यादा प्रवेश कर जाती है क्योंकि वे स्थान की स्वच्छता का कोई ध्यान नहीं रखते । पशु के रस्से नाली में भीग कर गदे हो जाते हैं और वह उन्हे पकड़ कर चलता है तथा फिर उन्ही हाथों से दूध निकाल देता है । जिससे दूध में गंदगी प्रवेश कर जाती है इसी प्रकार से दूधिया के कपड़े भी गंदे होते हैं तथा यही आदमी पशुओ को चारा भी डालता है ।

(2) कुछ ग्वाले शहरों मे किसी स्थान पर 10-15 पशु दूध देने वाले रखते हैं तथा वे निश्चित समय पर पशुओं का दूध निकालते है और सब ग्राहक वही पर अपने बर्तन लेकर आ जाते हैं तथा दूध ले जाते हैं। इस विधि द्वारा भी दूध अच्छा तो होता है परन्तु उसमें जीवाणु काफी मात्रा में प्रवेश कर जाते है । और वे सफाई का अधिक ध्यान नही रखते ।

शहरों मे पैदा होने वाले दूध का 75% बेचने में तथा 25% निजी काम मे लाया जाता है। परन्तु यह भी दूध व्यवसाय करने वाले ग्वालों के दुग्ध विज्ञान के विषय में अज्ञानता तथा पशु व बर्तनों की गंदगी के कारण गंदा ही रहता है।

शहरो मे सप्लाई होने वाले दूध का अधिकतर भाग गाँवो से ही शहरों में जाता है । जब ग्वाला शहरों में दूध ले जाता है तो वह अधिकतर खुले बर्तनों मे ही ले जाता है तथा दूध छलकने पर वह उसमें पत्ते इत्यादि डाल देता है जो दूध को और गंदा कर देता है । इसके अतिरिक्त गांव से शहरों तक दूध आने में कई घंटे लग जाते हैं । तथा वह रास्ते में उसमे पानी भी मिलाता है । जिससे दूध में जीवाणु वृद्धि कर जाते हैं तथा बीमारी फैलने का भय रहता है ।

हमारे देश में जो दूध के मानक (स्टैंडर्ड) बनाये गये है उनकी अपेक्षा शुद्ध दूध में वसा तथा

अन्य पदार्थों की मात्रा अधिक होती है। इसलिए दूध का व्यवसाय करने वालों को उसमें पानी मिलाने का अवसर मिल जाता है। पानी मिलाने में वह स्वच्छता का कोई ध्यान नहीं रखता तथा दूध में मिट्टी, जोंक, तथा अन्य बैक्टीरिया प्रवेश कर जाते हैं।

जब यह दूध हलवाई के पास जाता है तो वह भी उसमें (लाभ कमाने के लिए) पानी मिला देता है। इस प्रकार दूध में केवल $\frac{2}{3}$ भाग ही दूध रह जाता है और शेष पानी का रहता है।

शहरों में जो दूध निरीक्षण करने वाला निरीक्षक रहता है वह भी रिश्वत ले लेता है, इससे अपमिश्रण होता है। यदि कोई निरीक्षक ईमानदारी से कार्य करे, तो भी अपमिश्रण को नहीं रोक पाता क्योंकि गाय के दूध मे 5% तक वसा पाई जाती है जबकि गाय के दूध का मानक 3·5% वसा तथा 8·5% वसा रहित पदार्थ का है। भैंस के दूध का मानक 6·0% वसा तथा 9% वसा रहित पदार्थ का है। जबकि भैंस के दूध मे 7·5% तक वसा पाई जाती है। कुछ ग्वाले भैंस के दूध में पानी मिला कर उसे गाय का दूध कह कर बेच देते हैं।

गांव से शहरों तक दूध ठीक हालत में पहुँचाना भी एक जटिल समस्या है। क्योंकि यहाँ की जलवायु गर्म होने से दूध 3-4 घंटे मे ही खराब होने लगता है। दूध के बहुत से गुण दूध को पहुँचाने के साधनों पर भी निर्भर करते हैं। दूध गांवो से प्रायः शहरों में साइकिल, घोड़ा, तांगा, रेल, बैलगाड़ी, मोटर, ऊँट इत्यादि साधनों द्वारा ले जाया जाता है। सिर पर रख कर, बैलगाडी, ऊँट, नाव खच्चर आदि द्वारा एक से दो मील का दूध आता है घोड़ा ताँगा, साइकिल इत्यादि द्वारा 8-10 मील की दूरी तक का दूध आता है तथा रेल, मोटर तथा ट्रक द्वारा 30 से 100 मील तक दूध का वितरण होता है। इस प्रकार ये साधन भी दूध का वितरण करते हैं परन्तु इनमें भी दूध गंदा हो जाता है।

दूध वितरण की समस्याओं के हल के लिए सुझाव—

आजकल हमारे देश में दूध की बहुत जटिल समस्या है, क्योंकि यहाँ पर दूध कम मात्रा में पैदा होता है तथा जो दूध पैदा होता है वह गांवों में ही पैदा होता है। गावों से ही दूध शहरों में बेचने के लिए लाया जाता है। दूध की समस्या को सुधारने के लिए निम्नलिखित सुझाव है।

(1) जिन शहरों में सहकारी दुग्ध सघ स्थापित हो गये हैं उनमें कुछ हद तक दूध की समस्या हल हो गई है, इसलिए जिन शहरों में दुग्ध संघ स्थापित न हुए हों उनमें दुग्ध संघ स्थापित करने चाहिये।

(2) सहकारी दुग्ध संघो के स्थापित होने से दूध की समस्या शहरो की हल हो जायेगी परन्तु गांव वालों द्वारा सारा दूध देने से उनका स्वास्थ्य खराब हो जायेगा। इसलिए सहकारी संघ को चाहिए कि ग्रामीणों से सारा दूध न लेकर कुछ दूध उनके लिए अवश्य छोड़ दें।

(3) शहरों तथा गांवों में स्वच्छ दूध पैदा करने का प्रचार करना चाहिये। जिससे दूध के गुणों मे सुधार हो।

(4) दूध के अपमिश्रण को रोकने के लिए दूध के मानक (लीगल-स्टैंडर्ड) में सुधार होना चाहिए। क्योंकि आजकल के स्टैंडर्ड बहुत कम है।

(5) फूड अडलट्रेशन (अपमिश्रण एक्ट) के नियमों को कठोर करना चाहिए तथा अपमिश्रण करने वालो को कठोर दंड मिलना चाहिए।

(6) शहरों में क्रय-विक्रय मंडल (सघ) या बोर्ड होने चाहिए जो स्वच्छ तथा अधिक दूध पैदा करने वालों को सहायता दे सके।

(7) दूध के यातायात या परिवहन में मोटर, ट्रक, या रेलगाडियो में प्रशीतन या कूलर का प्रबन्ध होना चाहिए।

(8) बीमारी से बचाने तथा पशु प्रजनन के लिए डाक्टरों का प्रबन्ध होना चाहिए।

(9) पशुओ को सतुलित आहार देने के लिए पशुपालकों में प्रचार करना चाहिए।

(10) अच्छी नस्ल के पशु पालने के लिए पशुपालको को सलाह देनी चाहिए।

(11) किसानो में अच्छी नस्ल के पशु पालने का तथा नस्ल सुधारने का प्रचार करना चाहिए।

(12) सरकार को अनुसधानात्मक कार्य पर अधिक बल देना चाहिए तथा ब्रीडिंग द्वारा 'करन-स्विस' जैसी उत्तम नस्लो की जाति निकालने के लिए वैज्ञानिको को सहायता देनी चाहिए।

(13) सरकार को 'हरित-क्राति' के साथ-साथ श्वेत-क्रांति पर भी बल देना चाहिए तथा इसमे अनुसधानात्मक कार्य किये जाने चाहिए।

(14) दूसरे पदार्थ जैसे सोयाबीन इत्यादि का दूध बनाने से भी दूध की समस्या मे काफी सुधार हो सकता है यदि इसे बडे स्तर पर लागू किया जाय।

(15) दूध के जीवाणु स्टैंडर्ड भी निर्धारित करने चाहिए जिससे दूध के ताजा होने का अनुमान लगाया जा सके।

इसके अतिरिक्त अवारा साडों का कास्ट्रेशन (बधिया) करना, अच्छे पशुओं को काटने से रोकना, बेकार पशुओं को गोसदन पहुँचाना आदि कारणों के हल होने से काफी हद तक स्वच्छ दूध वितरण की समस्या का हल हो सकता है।

REFERENCES

1. Anonymous 1971 Guide to good milking. Indian Farming, IX (3) : 20-25-

2. Anonymous 1971 Mastitis means milk loss. Intensive Agriculture. VIII (2) : 14-16.

3. Bhati & Lavania 1965 Swachchh dugdha utpadan. Dairying. Vth add. VIIth chapter : 133-144.

4. Bhati & Lavania 1965 Dugdha ki samasya aur usaka hal. Dairying. Vth add 342-361.

5. Burde, S. D. 1970 More to managing dairies. Dairy Extension. VIII (4) : VIII (4) : 10-12.

6. Dudani, A. T. 1968 Organisms that spoil your milk. Indian Farming. VIII (4) : 50-51.

7. Eckles, Combs & Macy. 1965 Market milk. Milk and Milk Products. IVth add. Macgraw Hill Book Company Inc. New York : 203-224.

8. Ganguli, N. C. 1970 Why does milk clot ? Indian Farming. XIX (12) : 35-36.

9. Gupta, Krishna & Kumar. 1971 Badhta hua dairy udyog aur uski samasya. Kheti VI VI (3) : 16-17.

10. Harbans Singh. 1968 Handling and processing of milk. Milk and milk products : 3-7.

11. Harbans Singh. 1969 Care of milk cattle. A Hand Book of Animal Husbandry. Revised Ist add. 10-14.

12. Harbishan Singh. 1968 How to be a successful dairy manager. Indian Farming XVIII (6) : 51-52.

13. Juneja, R. K. 1971 Cleanliness, a must for dairy men. Indian Farmer's Digest. IV (4) : 13-14.

14. Khurody, D. N. 1963 Adultration of milk. Indian Live Stock. I (2) . 17.

15. Lal, S. M. 1971 Towards safe milk. Indian Farmer's Digest. IV (2) : 45-46.

16. Laxminarayan, H. 1970 Bacteriological quality control. Dairy Extension. VIII (3) . 9-11.

17. Muthuswamy, D. 1968 The little milk coop that supplied lakhs. Intensive Agriculture. VI (3) : 16-17.

18. Olson, T. M. 1960 Market milk. Elements of dairying. 7th print. 460-481

19. Patro, R. R. 1971 Plant tips. Dairy Extension. IX (2) : 14-15.

20. Rao, T. R. 1972 Towards better service in milk. Dairy Extension. X (2) : 25.

21. Rao, T Vishwas 1972 Annual report of department of technology. The Allahabad Farmers. XIIV (6) : 363-367.

22. Rawat, B. S. 1970 Avoid losses in your dairy. Dairy Extension. VIII (6) : 20-22.

23. Rawat, B, S. 1972 Maintaining milk account in dairies. Dairy Extension X (1) : 20-22.

24. Sethi, R. C. 1963 How save milk from contamination. Indian Live Stock. I (2) : 39-40.

25. Thapliyal, D. C. 1970 Milk and human health: Indian Farmer's Digest. III (5) : 16-17.

मुर्गीपालन की समस्यायें एवं सुझाव

मन्नुराम सिंह, एम एस-सी० (कृषि)
बी० एड० (कृषि)

भूमिका :—

भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश होते हुये भी कृषि से हम संतोष जनक फसल नही ले पा रहे हैं। जिसके कारण प्रति व्यक्ति आमदनी कम है। साथ ही बेकारी की समस्या भी भयकर रूप धारण कर रही है, ऐसी स्थिति मे मुर्गीपालन एक ऐसा व्यवसाय है जिससे बेकारी की समस्या को कुछ हद तक कम करते हुये प्रति व्यक्ति आमदनी में कुछ वृद्धि हो सकती है।

भारत वर्ष में प्रति व्यक्ति प्रोटीन की मात्रा लगभग 57 ग्राम प्राप्य है जबकि 70 ग्राम होनी चाहिए। जिसमें 15-20 ग्राम प्रोटीन "पशु-प्रोटीन" के रूप में होनी चाहिए। पशु-प्रोटीन के रूप मे दूध का प्रयोग किया जाता है। दूध का उत्पादन कम होने के कारण लोग विभिन्न पदार्थों को उसमें मिलाकर बेचते है जिससे आवश्यक मात्रा में प्रोटीन नही मिल पाती क्यों कि दूध अशुद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त साग-सब्जियों तथा फसल से प्राप्त होने वाली "वनस्पतिक प्रोटीन" बिना "पशु-प्रोटीन" के पचना संभव नहीं है। अंडे का प्रयोग आजकल काफी दवाओं में प्रयोग किया जाता है जैसे—वेक्सीन आदि।

अगर इस व्यवसाय को उन्नतशील ढग से शुरू करते हैं तो निश्चय ही हम मुर्गी से एक रु० प्रतिमाह नकद आमदनी कर सकते हैं। इस प्रकार यदि कोई किसान 100 मुर्गियों से व्यवसाय शुरू करता है तो उसे 1000-1200 रु० तक की वार्षिक आय हो जाती है। इस तरह आर्थिक समस्या को सुलझाने में मदद मिलती है। मुर्गी व्यवसाय शुरू करते समय निम्न समस्याओं की तरफ ध्यान जाता है जो वास्तव में इस व्यवसाय को प्रभावित करती हैं।

[1] उचित नस्ल का चुनाव—

(**अ**) **उद्देश्य**—किस नस्ल का चुनाव करे ? इसके लिए अपनी आवश्यकता पर ध्यान देना चाहिए कि बाजार में किस नस्ल की मांग ज्यादा है। जैसे यदि बाजार मे सफेद अंडे अथवा लाल (बैंगनी) अंडो की मांग हो तो उसी प्रकार की नस्ल का चुनाव करना है। यदि गोश्त के लिए है तो दूसरी नस्ल का चुनाव करना पड़ेगा। यदि अंडे तथा गोश्त दोनों के लिए बाजार में मांग है तो हमें ऐसी नस्ल का चुनाव करना है जो दोनों मांग की पूर्ति कर सकें।

उदाहरणार्थ—	सफेद अंडा	—	ह्वाइट लेग हार्न
	लाल अंडा	—	रोड आइसलैन्ड रेड
	गोश्त	—	ब्लैक राक
	अंडा एवं गोश्त दोनों	—	रोड आइजलैड रेड

(ब) **उम्र, संख्या एवं कहाँ से खरीदें ?**—नस्ल का चुनाव करने के बाद यह देखना चाहिए कि किस उम्र के चूजे खरीदे जांय, कितनी संख्या में खरीदें तथा कहाँ से खरीदें आदि पर विचार करना पड़ता है।

एक दिन का चूजा-अच्छा रहता है। अथवा 2-4 सप्ताह का भी चूजा खरीदा जा सकता है। लेकिन एक दिन का चूजा खरीदकर ही मुर्गीपालन व्यवसाय लाभदायक होता है क्योंकि यह सस्ता भी होता है।

संख्या इस बात पर निर्भर करती है कि हम कितनी अंडे देने वाली मुर्गियो से मुर्गीपालन शुरू करना चाहते है। उस संख्या से 10-12% सख्या में अधिक चूजे खरीदना आवश्यक है।

अगर आर्थिक समस्या सामने न हो तो सदैव उन्नतिशील एवं प्रभुत्व प्राप्ति किए हुये हैचरी से सैक्सड चूजे ही खरीदने चाहिए। अन्यथा नजदीक किसी हैचरी से खरीदना लाभदायक होता है। अन्डे उत्पादन के लिए हमेशा सेक्सड चूजे ही खरीदना चाहिए। चूजो मे लिंग विश्लेषण करना भी एक समस्या है, फिर भी अनुभव के आधार पर समस्या हल हो जाती हैं। कभी-कभी रंगो के अनुसार भी चूजों में लिंग विश्लेषण किये जाते हैं। जैसे—

आर. आई आर × लाइट ससेक्स
(नर) | (मादा)
↓
चूजा { मादा (लाल)
नर (सफेद)

उपरोक्त में यदि लाल रंग हुआ तो मादा, यदि सफेद हुआ तो नर चूजा होगा। इसके अतिरिक्त कई नई विधिया निकाली गई हैं जिनसे लिंग विश्लेषण आसानी से हो जाता है। जो निम्न हैः—

(1) **वेन्ट मेथड**—जापानी वैज्ञानिक ने इस तरीके को बताया था। वेंट परीक्षण के द्वारा पता चल जाता है कि कौन सा लिंग है। नर चूजे में वेन्ट के जगह निपिल की तरह उभार होता है।

(2) **मशीन मेथड**—इस तरीके में वेन्ट के अंदर एक नली डाली जाती है, नली के दूसरे सिरे पर एक लाइट होती है और आई पीस दिखलाने वाला शीशा के द्वारा जाँच की जाती है।

(3) **फेदर सेक्सिग मेथड**—इस विधि मे थोड़े ज्ञान एवं अनुभव की आवश्यकता होती है। परों की व्यवस्था व फैलाव के अनुसार लिंग विश्लेषण किये जाते हैं। कभी -कभी पैरो पर कुछ खास किस्म के क्रास होते हैं जिनसे पता चलता है कौनसा चूजा किस लिंग का है।

(स) **चूजों की हिफाजत**—चूजो की काफी हिफाजत करनी पड़ती है अन्यथा मुर्गीपालन को काफी हानि उठानी पड़ जाती है। ब्रूडर का तापमान गर्मियों मे 35 से० ग्रे० 12 घंटे तक; सर्दियों में 35 से० ग्रे० 16 घंटे तक रखना चाहिए। भोजन फीडर में तैयार रहना चाहिए साथ ही ताजे पानी की व्यवस्था हमेशा

होनी चाहिए। 24 घंटे तक खास हिफाजत करनी होती है जिससे गर्मी' सर्दी से बचाव हो सके। ब्रूडर का तापमान पहले सप्ताह में 35° से० ग्रेड०, दुसरे सप्ताह में 32° से० ग्रे० और चौथे सप्ताह मे 27° से० ग्रे० होना चाहिए। इसके बाद ब्रूडर की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। 3-4 सप्ताह बाद डिबेकिंग कर देनी चाहि। तथा प्रमुख बीमारियों से बचने के लिए टीका आदि लगवा देना चाहिए।

[2] प्रबंध सम्बन्धी समस्या—

(अ) **विशेष ज्ञान का अभाव**—प्रबंधक के पास साधनों के होते हुये भी ज्ञान एवं अनुभव की कमी के कारण इस व्यवसाय को नही शुरु कर पाते शुरू करने के पहले सैद्धान्तिक एव प्रयोगात्मक (क्रियात्मक) दोनो प्रकार का ज्ञान का होना अति आवश्यक है।

(ब) **मुर्गीशाला**—मुर्गीघर की आवश्यकता इसलिए होती है जिससे पक्षियों को जंगली जानवर सर्दी, गर्मी, बरसात और नमी आदि से बचाया जा सके। उन्हें ऐसा वातावरण मिल सके जहाँ सर्दी, और गर्मी की अधिकता न हो और मौसम वसंत ऋतु की तरह बना रहे। ऐसी जगह पर बनाया जाय जहाँ पर सूर्य, प्रकाश, खुली एवं स्वच्छ वायु मिल सके तथा मुर्गीघर स्वच्छ एवं जीवाणुविहीन हो।

(स) **व्यवसाय का आकार**—व्यवसाय छोटा हो या बड़ा हो ? इसके लिए यह आवश्यक है कि पहले छोटा व्यवसाय शुरु करना चाहिए, बाद में ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर व्यवसाय को धीरे-धीरे बढाना चाहिए, इस तरह मुर्गीपालक को नुकसान नही उठाना पड़ता है। अधिक आमदनी के लिए यह जरूरी है कि उद्योग बड़ा हो लेकिन यह ज्ञान और अनुभव के आधार पर ही शुरू करनी चाहिए।

(द) **उपकरण**—मुर्गीशाला में आवश्यक उपकरण का होना अति आवश्यक है और यह उद्योग के आकार पर निर्भर करता है कि कितनी संख्या में कौन-कोन से उपकरण रखे जांय। जैसे फीडर, वाटरर, केजेस, बिजली, इनकुबेटर और ब्रूडर आदि। छोटे उद्योग के लिए स्थानीय उपकरण ही प्रयोग में लाना चाहिए अन्यथा अधिक खर्च उपकरण पर ही जायेगा।

(य) **सीजनल प्रोडक्शन**—बहुधा देखा गया है कि बहुत से किसान एक समय में ही चूजे खरीदते है जिससे किसी खास माह में उत्पादन होता है अतः मूल्य में भारी कमी आ जाती है। अतः सभी उपकरण एक खास मौसम के बाद बेकार हो जाते हैं। अतः जो चूजे खरीदे जाय वे विभिन्न तीन-चार मौसम मे खरीदे जाय ताकि लगातार उत्पादन हो सके।

(र) **लेखा-जोखा**—लेखा द्वारा ही पता चल सकता है कि व्यवसाय मे हानि हो रही है अथवा लाभ हो रहा है। कितनी मुर्गियाँ हैं, कितनी अडे दे रही है और प्रतिदिन कितने अंडे पैदा हो रहे है। कितना आहार प्रतिदिन उपयोग किया जा रहा है। अतः लेखा रखना अनिवार्य है। जिससे आय व व्यय का पूरा विवरण प्राप्त हो जाता है।

(ल) **उत्पादित वस्तुओं के गुण**—यदि उत्पादित वस्तुओं के गुण खराब है तो मूल्य में काफी कमी आयेगी क्योंकि उपभोक्ता गुण को देखकर ही खरीदना चाहेगा। फरटाइल अंडे जल्दी खराब हो जाते हैं।

अतः इनफरटाइल अंडे ही उत्पादित करना चाहिए क्योंकि इनमें रखने के गुण अधिक दिन तक होता है। तथा ये जल्दी खराब नही होते। अंडे गन्दे नही होने चाहिए।

(ब) **मजदूर**—प्रबन्धक को यह ध्यान रखना पडता है कि वह कम से कम समय में अधिक से अधिक कार्य मजदूरों से ले सके। बहुत से कार्य को वह स्वयं एव परिवार के अन्य सदस्य करते है। सस्ते मजदूर मिल जाय तो बहुत ठीक है यदि सस्ते मजदूर नहीं मिलते तो एक समस्या वन जाती है। ऐसे स्थान में इस व्यवसाय को चलाना चाहिए जहाँ सस्ते मजदूर उपलब्ध हो सके।

(श) **अधिक उत्पादन**—कभी-कभी एक ही समय मे अधिक उत्पादन हो जाता है तो 'डिस्पोज आफ' की समस्या खडी हो जाती है। यदि बाजार-व्यवस्था अथवा यातायात की सुविधाएं नही है तो मुर्गीपालक को काफी हानि उठानी पड जाती है। अतः प्रबन्धक को चाहिए कि अंडो एव गोस्त दोनो को इस प्रकार पैदा करे कि बाजार की माँग के अनुसार ही हो तथा एक ही समय में किसी एक चीज का अधिक उत्पादन न हो। लेयर और चिक्स दोनो साथ में दो मुर्गीघरों में पाले जायं ताकि यह समस्या न खडी हो।

(ष) **स्थानीय सम्बन्ध**—प्रबन्धक का मुख्य कार्य यह है कि वह स्थानीय लोगों से अच्छा सम्बन्ध स्थापित करे एव उनके 'पोल्ट्री-नीड्स' के बारे मे जानकारी ले साथ ही बाजार से सम्बन्ध स्थापित रखना चाहिए। इसके अलावा विभिन्न सोसाइटी एवं कमेटी से सम्बन्ध स्थापित रखना चाहिए। ताकि उसके सामान की बिक्री एव अन्य सहायता समय के भीतर मिल सके। इस तरह वह एक कुशल प्रबन्धक बनकर अधिक लाभ उठा सकता है।

[3] आहार सम्बन्धी समस्याः—

किस प्रकार खिलावे ? आहार में क्या-क्या खाद्य-पदार्थ मिलावे तथा सन्तुलित आहार दें। आहार सस्ता हो तथा सभी भोज्य तत्व शामिल रहे ताकि उत्पादन अच्छा हो सके। लेकिन इसमे निम्न समस्या सामने आती है।

(अ) **फीड इन्डस्ट्रीज की कमी**—फीड इन्डस्ट्रीज के कमी के कारण बहुत कम ऐसे स्थान हैं जहाँ से अच्छे आहार मिल सके तथा जिनमें सभी भोज्य तत्वो का उचित मिश्रण हो जब मुर्गियो को सन्तुलित आहार न मिलेगा तो उत्पादन पर बुरा असर पड़ता है। स्थानीय आहार जो मिलता है वह पूर्ण रूपेण सन्तुलित नहीं होता।

(ब) **आसानी से उपलब्ध**—जो भी आहार मिले वह आसानी से यदि प्राप्त हो जाय तो व्यवसाय में कम खर्चा लगेगा अन्यथा बाहर से खाद्य पदार्थ मंगाने मे अधिक खर्चा करना पडेगा। अतः ऐसा खाद्य पदार्थ की खोज करना चाहिए जो स्थानीय हो साथ में आवश्यक तत्वों की मात्रा भी हो।

(स) **सस्ता**—जो भी आहार दिये जायं सस्ते होने चाहिए, अन्यथा लाभ के बदले हानि उठानी पड सकती है। अतः ज्यादा खर्चीला आहार न दिया जाय जिससे उत्पादन-लागत कम रहे, और आय अधिक रहे।

(द) **सन्तुलित आहार**—सभी आवश्यक पदार्थों का उचित मिश्रण होना अति आवश्यक है, क्योकि किसी एक की कमी से बीमारियाँ आदि फैलती है तथा उत्पादन पर बुरा असर पड़ता है। अतः सतुलित आहार मे निम्न चीजों का समावेश करना अति आवश्यक है।

[1] **कार्बोहाइड्रेट**	—	इसकी कमी से	—	कमजोरी, दुबला-पतला, मृत्यु एवं गर्मी तथा शक्ति कम होती है।
[2] **प्रोटीन**	—	इसकी कमी से	—	कम उत्पादन, देर से परिपक्वता, प्रतिरोध, क्षमता कम, और विभिन्न बीमारियों को पैदा करता है।
[3] **चर्बी**	—	इसकी कमी से	—	असामान्य वृद्धि, रक्त सचार मे रुकावट एवं कम शक्ति हो जाती है।
[4] **विटामिन**	—	इसकी कमी से	—	भार में कमी, भूख में कमी, कम वृद्धि, कैलसियम का ठीक से प्रयोग न होना एवं तमाम बीमारियाँ पैदा होना—रीकेट आदि।
[5] **खनिज पदार्थ**	—	इसकी कमी से	—	कमजोर हड्डी, हड्डी बनना बन्द, पाचन के स्थान में गडबड़ी, कम उत्पादन आदि।
[6] **पानी**	—	इसकी कमी से	—	रक्त संचार ठीक से न होना, पाचन संस्थान में गड़बड़ी आदि।

[4] **कीड़े मकोड़े एवं बीमारियाँ:**—

सबसे प्रमुख समस्या बीमारियो की है। 50% हानि बीमारियों के कारण होती है। इन्हें चार भागों में बाँटा जा सकता है।

1 **प्रीडेटर**—कुल हानि का 50% केवल इससे प्रबंधक को उठानी पडती है। जिससे जगली जानवर, चिडियाँ आदि द्वारा होती है। वैसे बिल्ली, लोमड़ी, सियार, चूहा, नेवला, कौवा, उल्लू, गिद्ध एवं साप आदि द्वारा भी हानि हो जाती है।

2. **छुआछूत**—कुछ बीमारियां वाइरस एवं वैक्टीरियाँ द्वारा फैलती है जो एक मुर्गी से दूसरी मुर्गी में भी फैल जाती है। इससे कुल हानि का 40% मुर्गीपालन को हानि उठानी पड़ती है।

3. **परजीवी**—कुछ प्रोटोजोआ बाह्य एवं भीतर से मुर्गी को मुत्यु के घाट उतार देती है इससे कुल हानि का लगभग 6% नुकसान होता है।

4. **बेछूतदार**—इससे कुल नुकसान का 4% नुकसान होता है। इसमें निम्न तीन बातें आती है। (i) वातावरण (ii) आहार (iii) पैतृक गुण। इसके द्वारा 4% नुकसान उठाना पडता है।

[5] **आर्थिक समस्या**.—

(1) **गरीबी**—गरीब देश होने के नाते मुख्य समस्या–आर्थिक समस्या है। इच्छा होते हुये भी धन के अभाव में इस व्यवसाय को शुरू नही कर पाते।

(2) **ऋण**—सरकार की ओर से इधर काफी ध्यान नही दिया जा रहा है। राष्ट्रीयकृत बैंकों से इस व्यवसाय को चलाने के लिए ऋण आदि की व्यवस्था बडे पैमाने पर करनी चाहिए।

(3) **सहकारिता**—सहकारी समितियों द्वारा भी इस व्यवसाय को चलाने के लिए ऋण की व्यवस्था करनी चाहिए। ऋण उसे ही मिलना चाहिए जिसकी वास्तविक इच्छा हो। अच्छा तो यह रहे जो भी ऋण दिये जाय वह वस्तु में दी जाय न कि रुपये पैसों में। यदि किसानो में सहकारिता की भावना हो तो वे स्वयं अपने आर्थिक समस्या को सुलझा सकते हैं।

[6] **बाजार सम्बन्धी**:—

कहाँ, किस दर पर उत्पादन को बेचा जाय कि अधिकतम लाभ हो सके अतः ग्रेडिंग करके, अच्छे स्वच्छ एवं ताजे अण्डे बाजार मे भेजना चाहिए ताकि अधिक से अधिक दाम मिल सके। निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए—

(1) **गन्दे अण्डे**—अधिकतर गन्दे अडों को उपभोक्ता कम पसन्द करते है अत. मारकेट वैल्यू कम हो जाती है।

(2) **फरटाइल अण्डे**—जब फरटाइल अण्डों का 'डिस्पोज आफ' नहीं हो पाता तो बहुत बडी समस्या आ जाती है क्योकि उसे अधिक समय तक सुरक्षित रखना मुश्किल हो जाता है। जिससे इसका मूल्य कम हो जाता है।

(3) **अनग्रेडेड अण्डे**—अन्डों का वर्गीकरण उनके रग, आकार आदि के आधार पर विभाजन कर देने से अधिक पैसा मिलता है। एक साथ सभी प्रकार के अण्डे मिलाकर बेचने से लाभ कम प्राप्त होता है।

(4) **डिफेक्टिव पैंकिग**—कभी-कभी डिफेक्टिव पैंकिग के द्वारा तमाम अण्डे नष्ट हो जाते है, जिससे काफी हानि होती है। अत. बाजार मे भेजने से पूर्व अच्छी पैंकिग करनी चाहिए ताकि एक अण्डा दूसरे अण्डे से न छुए और रगड़ या धक्के लगने से नष्ट न हो।

(5) **हाट वेदर कन्डीशन**—हाट वेदर कन्डीशन के कारण अण्डों में तमाम रासायनिक परिवर्तन होने लगता है। जिससे एल्ब्यूमिन क्वालिटी खराब हो जाती है। फलतः मूल्य में कमी पड़ जाती है।

(6) **स्टोरेज एन्ड हैन्डलिंग**—स्टोरेज की सुविधा न होने से कम मूल्य में ही उत्पादन को बेचना पड़ता है क्योंकि खराब होने का डर लगा रहता है।

(7) **विद्युत का अभाव**—विद्युत के अभाव में अण्डों को अधिक दिन तक सुरक्षित नहीं रखा जा

सकता । विद्युत की सुविधा हो तो कोल्ड स्टोरेज अथवा रेफ्रिजरेटर द्वारा अण्डों को अधिक दिन तक सुरक्षित रख सकते हैं जिससे अधिक उत्पादन की समस्या भी हल हो जाती है ।

(8) अण्डे की देखभाल—जैसे ही अण्डा प्राप्त हो उसे तुरन्त उठा लेना चाहिए अन्यथा मुर्गी बैठ जाती है इसके अतिरिक्त मुर्गियों द्वारा कभी-कभी नष्ट हो जाता है । तथा उसे फिलर-प्लेट मे रखनी चाहिए ताकि एक अण्डा दूसरे अण्डे से न छुये । एक घोसला 4-5 मुर्गियों के लिए काफी होता है तथा 2-3 दिन में सामान बदल देना चाहिए और सामान सूखा होना चाहिए । अण्डे को तुरंत साफ करना चाहिए । इसके लिए दो तरीके है । (i) **सूखा**–जिसमें सैन्ड पेपर, ब्रुश आदि का प्रयोग किया जाता है और (ii) **गीले**–जिसमे सोडियम हाइड्राक्साइड 1% घोल के कपडे से पोछ कर चूने के घोल में डुबोने से सर्दी में 4 माह और गर्मी में दो सप्ताह तक ताजा रहता है ।

बाद मे आयलिंग कर देना चाहिए ताकि सभी छेद बन्द हो जायं जिससे कार्बन डाई आक्साइड और नमी की कमी न हो । तथा साथ ही छेद बद होने से दुर्गधयुक्त बक्टीरिया आदि अन्दर नहीं घुस पाते । यदि कार्बन डाई आक्साइड़ की कमी हो गई तो एल्ब्यूमिन की क्वालिटी कम हो जाती है । जो तेल प्रयोग मे लाया जाय उसमें कोई गन्ध न हो, कोई स्वाद न हो, सस्ता तथा आसानी से उपलब्ध हो जाय । नारियल का तेल अच्छा होता है । आधा मिनट तक नारियल के तेल में डुबोना चाहिए । वैसे बाजार में ऐग-कोटिंग-आयल मिलता है जिससे आप अण्डों के उपर स्प्रे अथवा अण्डों को डुबोया जा सकता है ।

ऑयलिंग के बाद ठंडा करने की प्रक्रिया आती है । निम्न मुख्य विधियाँ काम में लाई जाती है (1) ठण्डा कमरा (2) जमीन के नीचे गड्ढे (3) मिट्टी के बर्तन (4) कोल्ड स्टोरेज (5) रेफ्रीजरेटर ।

(9) यातायात की असुविधा—यातायात के अभाव में वस्तुओं को अधिक दूर तक नही ले जा पाते जिससे अधिक लाभ नहीं हो पाता । कभी-कभी यातायात के अभाव मे वस्तुये बाजार तक उचित समय में नहीं पहुच पाती जिससे काफी नुकसान उठाना पड़ता है । यदि रेल, बस, हवाई जहाज आदि की सुविधायें हो तो मुर्गी पालक अपने सामान को बहुत दूर तक कम से कम समय में भेजकर उचित मूल्य प्राप्त कर आमदनी कर सकता है ।

[7] **अशिक्षा**—

अधिकतर मुर्गी-पालक अशिक्षित होने के कारण इसकी आवश्यकता एव महत्व के बारे में नहीं समझते, तथा इसके प्रति घृणा की भावना रखते है, तथा अण्डे में जीव का होना समझकर पाप नहीं करना चाहते । बहुत से लोग तो अण्डों को छूना ही पाप समझते है, ऐसे लोग इस व्यवसाय को कभी नही चला सकते । साथ ही इस व्यवसाय की ट्रेनिंग देने के लिए कोई विशेष सुविधा भी सरकार द्वारा नहीं की जाती जिससे लोग इस व्यवसाय से परिचित होकर अधिक लाभ उठा सके ।

[8] **सामाजिक**—

इच्छुक व्यक्ति होते हुये भी इस व्यवसाय को नहीं अपना सकते, क्योंकि इस धन्धे को बहुत गिरा हुआ एवं निम्न श्रेणी का समझते हैं । इसका एक कारण यह है कि इस धन्धे को सर्व प्रथम निम्न वर्ग के

व्यक्तियों ने अपनाया था। अशिक्षित होने के कारण इस व्यवसाय के महत्व और आवश्यकता पर ध्यान नहीं देते, अतः समाज से मान्यता भी प्राप्त नही होती। सबसे बडी रुकावट धर्म है—क्योंकि ब्राह्मण आदि शायद ही इस व्यवसाय को शुरू करने की सोचेगा और मुसलमान पिग रेंजिग नही करेगा।

[9] **सरकारी नियम—**

कुछ सरकारी नियम है कि घनी आबादी में मुर्गीपालन नहीं होगा क्योंकि इससे गन्दगी फैलती है जिससे तमाम बीमारियाँ फैलती है। साथ ही बहुत शोर होता है। लेकिन बदबू, गन्दगी आदि को अच्छे प्रबन्ध द्वारा दूर किया सकता है। इस तरह से सरकारी नियम भी इस व्यवसाय में हस्तक्षेप करती है।

एक सफल मुर्गीपालक बनने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना जरूरी है

1. उचित नस्ल का चुनाव।
2. खरीदने के स्थान।
3. उम्र क्या हो।
4. लिग क्या हो।
5 उत्पादन क्षमता के बारे मे ज्ञान।
6. कलिग और डिबेकिंग।
7. संतुलित भोजन।
8. मुर्गीशाला।
9. कीडे-मकोड़े एव बीमारियों से रक्षा।
10. लेखा-जोखा (हानि-लाभ का ब्योरा)।
11. अन्य प्रबन्ध आदि।

REFERENCES

1. Adhiya, V. 1966 You can get four times more eggs. Indian Farming. XV (12) · 16-17.
2. Adlakha. 1969 Infections coryza of poultry. Indian Farming. XIX (4) : 45-47.
3. Agrawal, C. K. 1964 Story of stress in poultry. Indian Farming. VI (1) ; 33-34.
4. Anonymous 1969 How to recognise a good layer. Poultry farming. VI (3) : 15-17.
5. Bhattacharya, P. 1968 Poultry will play an important role in livestock development scheme. Indian farming XVIII (9) : 8-11.
6. Bhave, N. D. 1970 Eggs : you can prevent deterioration inquality. Indian Farming. XIX (12) : 40-41.

7. Biddle, G. H. 1963 Approved Practice in Poultry Production. Third Ed. Inc. Dancille, Illinos. 1-21, 71-85 and 271-283.

8. Bundy & Diggins 1960 Poultry Production. First Ed. Prentice Hall Englewood cliffs. N. J.

9. Bundy & Diggins 1961 Live stock & Poultry Production. Second Ed. Prentice-Hall Inc. Englewood Cliffs. N. J. 547-558, 559-613 and 627-664.

10. Christopher, & Roman, N. V. 1966 Death Comes to poultry in diverse guises. Indian Farming. XV (12) : 16-17.

11. Ernst, R. A. 1969 Avoid stress in egg production. Poultry Guide. VI (2) : 9-15.

12. Garewal, N. S. 1965 Eggs can be exacting. Indian Farming, XV (10) : 17-18

13. Goodman & Tudor 1960 Poultry Farming. Prentice-Hall Inc. Englewood cliffs N. J. 345-367 and 237-247.

14. Gupta, D. P. 1972 Ande ko adhik din tak taja kaise rakhen. Poultry Guide. IV (7) : 25-27.

15. Habberman 1956 Poultry Farming for Profit. Second Ed. U. S. A. 1-6, 50-52, 77-79, 80-100 and 101 to 110.

16. Kirloskar, M. S. 1966 Cost of table eggs. Indian Farming. XVI (3) : 42-43.

17. Kirloskar, M. S. 1969 Better breeding practices for more eggs. Indian Farming, XIX (2) : 39-42.

18. Mahadevan, T.D. & Kumrah, R. K. 1971 Preservation of eggs & poultry meat. Indian Farming. XXI (3) : 35-36.

19. Marley, A. J. 1951 Poultry Husbandry. Third Ed. Mc. Graw Hill Book Co. Inc. Newyark 390-435.

20. Mathur, R. P. 1969 Some of the common diseasein which birds are likely to become lame. Poultry Guide. VI (3) : 25-27.

21. Misra. G. P. 1969 Factor influencing egg size. Poultry Guide. VI (11) : 20-21.

22. Mukharjee, B. 1966 How to spot adulterated poultry feed. Indian Farming. XV (10) : 19.

23. Naidu, P. M. N. 1964 Poultry keeping in India. I. C. A. R., New Delhi. 222-228.

24. Panda, N. C. 1972 Factors influencing breakage. of eggs in summer. Indian Farmers Digest. V (6) : 11-34.

25. Panda, P. C. & Panda, B. 1969 Microbial problems during cold storage of eggs & their prevention. Poultry Guide. VI (3) : 23-24.

26. Puri R. K. 1967 A model poultry farm in Maharastra. Indian Farming. XVII (7) : 29.

27. Rathna Sathapathy D. V. 1972 Poultry production in India, problem and prospects. Indian Farmer's Digest. V (6) : 5-6.

28. Reddy, C. V. & Mathur, C. R. 1972 Importance of balanced feed in egg production. Indian Farmer's Digest. V (6) : 13-14.

29. Sethe, B. S. 1969 Problems of economic poultry production. Poultry Guide. VI (7) : 16-18.

30. Sharma, G. L. 1968 Protecting Poultry health. Indian Farming. XVIII (9) : 48-52.

31. Sharma, R. K. & Satya K. C. 1972 Kukkut palan fayademand kaise ho. Poultry Guide. IV (6) : 16-19.

32. Sharma, U. K. 1970 How fresh is the egg you get. Indian Farmar's Digest. III (5) : 29-30.

33. Singh, R. A. 1967 Poultry needs light all the times. Indian Farming. XVII (4) : 11-16.

34. Sondhi, D. N. 1966 Starting a hatchery. Indian Farming. XVI (3) : 32-35.

35. Sondhi, D. N. 1966 Getting more eggs from fewer birds. Indian Farming. XVI (8) : 39-43.

36. Srivastava, B.P. & Sharma, V. P. 1966 How to get rid of octoparasites of poultry. Indian Farming. XVI (1) : 20-23.

37. Tandan, H. P. 1966 Poultry birds require double care during the rains. Indian Farming. XVI (7) : 37-40.

38. Tandon, H. P. 1968 Making poultry keeping more profitable. Indian Farming. XVIII (3) : 41-43.

39. Taneja, B. S. 1969 Care of eggs. Poultury Guide. VI (6) : 21-23.

40. Taneja, B. S. & Singh, U. 1969 Factor influencing the production of quality egg. Poultry Guide. VI (8) : 15-18.

41. Whitcomb, E. 1969 What you should know about feeds and feeding. Poultry Guide. VI (2) : 19-22.

42. Winter, A. R. 1967 The Poultry Industry. Claridge's Press, New Delhi. 12-13.

43. Worthington, J. 1964 Poultry Keeping Simplified. First Ed. Faber and Faber 24, Russee squarl London. 65-71.



चूजों को पालने की उन्नत विधि

राजवीर शर्मा
बी. एड. (कृषि)

हर जीव जन्तु व्यवसाय इत्यादि की प्रगति का मूल आधार उसके शिशु काल या प्रारम्भिक जीवन एव आरम्भ की देख रेख पर आधारित रहता है। पोल्ट्री पालन व्यवसाय की सफलता में चूजो का पालन-पोषण तथा देख रेख बहुत ही जरूरी है जिससे वे बड़े होकर उनसे सही उत्पादन मिल सके। अगर पोल्ट्री पालन इस बारे में अच्छी जानकारी नहीं रखता है तो उसको अच्छे परिणाम प्राप्त नही हो सकते हैं इसलिए अधिक उत्पादन के लिए चूजों को उन्नत ढंग से पालने की विधि का जानना आवश्यक है। अधिक उत्पादन के लिए स्वस्थ तथा रोग रहित ही चूजे होने चाहिए।

चूजों को पालने की उन्नत क्रियायें—

चूजों को इस प्रकार से पाला जाय कि वह स्वस्थ तथा रोग रहित रहें और वे सही समय पर उत्पादन के योग्य हो सकें और उचित मात्रा में उत्पादन दे सकें।

(1) **अच्छे चूजों को प्राप्त करना—**

अच्छे चूजों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:—

(क) **चूजें कहां से प्राप्त करें**—चूजे किसी विश्वास पात्र या मान्यता प्राप्त हेचरी से ही खरीदने चाहिए। सस्ते चूजें नहीं खरीदने चाहिए क्योंकि उनमें बहुत सी बीमारियाँ तथा वे कमजोर होते हैं तथा उनकी किस्म के बारे में भी कोई खास पता नही होता है।

(ख) **चूजें सदैव प्रजनन फार्म से ही खरीदने चाहिए**—चूजों का पालन भी स्वयं का एक व्यवसाय बन गया है तथा इन दिनों हमारे देश में बहुत सी बड़ी-बडी हैचरियां स्थापित हो गयी हैं जहा पर उत्तम गुण वाले चूजों का उत्पादन होता है। ऐसी ही हैचरियों से चूजों को खरीदना चाहिए। इनसे निम्न लाभ है—

(1) इनसे अन्डा उत्पादन शीघ्र होता है।
(2) ये कम आहार खाकर भी अधिक उत्पादन देते हैं।
(3) इन पक्षियों में रोग को रोकने की शक्ति होती है।

(ग) **अंडे व चूजों का चुनाव करना**—अंडे व चूजे ऐसी मुर्गियों के झुन्ड से खरीदने चाहिए जिनकी क्षमता कम से कम 200 से 250 अंडे देने की हो।

(घ) **चूजें कितने दिन के लाने चाहिए**—पालने के लिए चूजें एक ही दिन के लाने चाहिए इसके लिए फरवरी या मार्च मे हैचरियों मे खबर भेज देनी चाहिए। यही समय इसके लिए उत्तम रहता है। जिससे अप्रेल मे चूजें मिल जावेगे और इन चूजों से नवम्बर या दिसम्बर में उत्पादन मिलना शुरू हो जावेगा।

(2) **एक ही दिन के चूजों की चोंच स्थायी रूप से काटना**—

इस विधि मे चूजो की चोंच जब काटी जाती है जबकि वे एक ही दिन के होते है। इस विधि मे पहले ब्लैड को लाल सुर्ख कर लेते है तथा चोच के उपरी भाग को 1/6 से 1/8 को काट देते है। इन चोंच कटें चूजों को 95^{0} फा. पर रखा जाता है। जहाँ सही ताप मिलकर चोंच सूख जाती है। इससे निम्न लाभ है—

(क) इस क्रिया के करने से चूजो में दाना चुगने की आदत शुरू से ही पड़ जाती है।

(ख) यह लडते नही है।

(ग) शुरू से ही 95 फा. तापक्रम मिलने से चोच का रक्त सूख जाता है।

(3) **चूजों को बड़ी मुर्गियों से अलग रखें**—

मुर्गी का बच्चा भी इन्सानी बच्चे की तरह है जो छुआछूत के कारण जल्दी ही और आसानी से बीमार पड़ जाता है। इसलिए चूजों को बडी मुर्गियो से 250 से 300 फीट की दूरी पर रखना चाहिए। जिससे किसी प्रकार के दूषण की सम्भावना न रहे।

(4) **चूजों के लिए अच्छा ब्रूडर हाऊस**—

चूजो की खराब मौसम से रक्षा करने के लिए अच्छे ब्रूडर हाउस होने चाहिए। तथा उनको बदलते रहे तो और भी अच्छा है जिससे रोग न फैलने पावें एक चूजें के लिए 8 वर्ग इंच स्थान की आवश्यकता होती है और एक ब्रूडर हाउस में 200 से 250 चूजे रखें जा सकते हैं।

तालिका संख्या 1
चूजों के लिए आवश्यक स्थान

उम्र सप्ताह में	क्षेत्रफल वर्ग फुट में
0-4	0.5
4-8	1
8-12	2
12 से ऊपर	3

(अ) स्तर—स्थानान्तरित घर बनवाने के लिए मैदानो में 4 इंच, 6 इंच के लकडी तथा 6 इंच के खम्बों पर रखना चाहिए।

(ब) फर्श घर का फर्श दोहरा तथा चिकना होना चाहिए दोहरा फर्श पाना अवरोधक कागज का होना चाहिए ।

(स) दिवारें—दिवारें भी पानी अवरोधक होनी चाहिए इसके लिए पलाई वुड प्रयोग में लाना चाहिए।

(द) छत—स्थानांतर ब्रूडर में प्राय: ढालू छत ही प्रयोग करनी चाहिए।

(य) खिड़की तथा रोशनदान—खिड़कियों का आकार 10 इंच से 12 इंच होना चाहिए जो कि दीवार पर 4 फीट की ऊँचाई पर हो।

(5) चूजों के लिए आराम दायक दड़बें—

चूजो को आराम से रखने के लिए दडबे प्रयोग में लाये जाते हैं। ये दड़बे बाजार में भी मिल जाते हैं लेकिन ये पेचीदा होते हैं और साथ ही साथ इनकी कीमत भी अधिक होती है। इस परेशानी को हटाने के लिए आप भी स्वयं घर पर ऐसा दड़बा तैयार कर सकते हैं इसके लिए निम्न वस्तुओ की आवश्यकता होती है।

आवश्यक सामग्री—

(1) लकड़ी के दो तख्ते जिनका आकार $4 \times 10 \times \frac{3}{4}$ फुट।

(2) लकडी के दो तख्ते जिनका आकार $4 \times 13 \times \frac{3}{4}$ फुट।

(3) लकड़ी के चार तख्ते जिनका आकार $2\frac{1}{2}'' \times 10'' \times \frac{3}{4}$ फुट।

(4) लकड़ी का एक तख्ता जिसका आकार $10'' \times 2\frac{3}{4}' \times \frac{3}{4}$ फुट।

(5) दो इंच वाले दो कब्जे।

(6) पीतल के दो होल्डर।

(7) धातु के बने दो शेड, एक प्लग, बिजली का तार।

इस प्रकार से एक दड़बा तैयार किया जा सकता है और इस दड़बे में 150 चूजे रखें जा सकते हैं। इस दड़बे में अगर बिजली न हो तो लालटेन से काम कर लिया जा सकता है। फिर केवल एक नम्बर से पांच नम्बर तक के सामान की आवश्यकता पडती है।

(6) ब्रूडर हाऊस स्वच्छीकरण तथा निसंक्रमीकरण—

कभी-कभी मुर्गी घर के फर्श, कोने, दीवार इत्यादि पर रोग के जीवाणु छिपे रहते है उनको नष्ट करने के लिए मैलाथियान से खूब अच्छी तरह से धुलाई कर देते हैं तथा किवाड़ खिड़की इत्यादि की भी धुलाई करते हैं। जिससे उसके जोड़ में छिपे रहने वाले जीवाणु भी नष्ट हो जाय जहा धुलाई न हो सके वहां पर तार के ब्रुश से रगड़ कर धुलाई कर देनी चाहिए। धमन दीप द्वारा भी कीटाणुओं को नष्ट किया जा सकता है। इसके अलावा कोलतार तथा फिनोंल 51:4 में लेकर एक गैलन पानी में घोल कर प्रयोग मे लाते है।

(7) विभिन्न उपकरणों की सफाई एवं निसंक्रामण—

अच्छे प्रकार के चूजों को पालने के लिए उचित प्रकार के उपकरणों को साफ करना तथा जीवाणु

रहित करना जरूरी है जिससे उनमें कोई भी बीमारी न फैलने पावे। इनको साफ करने के लिए साबुन का पानी तथा सज्जीखार के गर्म घोल से साफ कर देना चाहिए। इसके बाद आयोडीन के घोल से साफ कर लेना चाहिए।

(8) उचित बिछावन का प्रयोग—

जब कोई भी बीमारी शुरू होती है तो वह बिछावन में छिपे हुए जीवाणुओं द्वारा फैलती है। काक्सीडियोसिस, सी. आर. डी. कौराइजा, ल्यूकोशिस इन्ट्राइटिस या ऐसी ही बहुत सी दूसरी बीमारिया होती है जिनका कारण लीटर ही होता है। खराब लीटर—अच्छे चूजों, अच्छे फीड और उनमें मिलें एंटीबायोटिक सभी की उत्पादन क्षमता को कम कर देता है। यह बीमारी का भी सूचक है। बीमारी हो— लीटर देखिये, वेन्टीलेशन ठीक न हो लीटर देखिये। चूजें आवश्यकता से अधिक रखे गये हों, लीटर देखिये लीटर हर अवस्था में आपके प्रश्नो का उत्तर देता है।

(अ) अच्छे लीटर की विशेषतायें—

(क) वह लीटर जो अधिक से अधिक नमी सोखकर वायु मंडल में उडा सकें।
(ख) अच्छे लीटर का नमी के कारण ढेला न बन सकें।
(ग) लीटर सदैव भुरभुरा बना रहना चाहिए।

इस प्रकार से अच्छे लीटर लकडी का बुरादा, धान की भूसी, गन्ने की खोयी, भुट्टे के बाद का भाग इत्यादि को प्रयोग में लाते हैं। यह सड़ा-गला तथा फफूंदी से रहित होना चाहिए।

(ब) अच्छे लीटर रखने के उपाय—

(क) अच्छे लीटर का प्रयोग किया जाय जिसकी किस्म अच्छी हो।
(ख) मौसम के अनुसार गहराई रखें जैसे गर्मियो मे 3 इन्च तथा सर्दियों में 9 इंच।
(ग) लीटर को उलट-पलट दें, गीले को निकाल दें तथा जो ढेले बन जाय उनको तोड दें।
(घ) अगर किसी कारण लीटर सूखा रहने में कठिनाई पड़ रही है तो निम्न कारण हो सकते हैं।
 (1) पक्षियों का स्थान आवश्यकता से कम हो तथा हवा का आवागमन ठीक न हों।
 (2) राशन मे नमक की मात्रा तो अधिक नहीं है।
 (3) आतो में कीडे तो नही पड़ गये हैं।
 (4) पानी प्राकृतिक रूप से नमकीन तो नहीं है।
 (5) वर्षा के पानी की बौछार अन्दर तो नहीं आती है।
 (6) हरा चारा तो अधिक मात्रा में प्रयोग में नहीं लाया जाता है।
(ड) अगर लीटर की मात्रा अच्छी नहीं है तो 9 किलो चुना 100 वर्ग फुट लीटर में अच्छी प्रकार से फैला दो।

(9) ब्रूडिंग (चूजों का पालन पोषण)—

चूजों के जीवन के पहले दो सप्ताह का समय बहुत कठिन होता है अतः पोल्ट्रीपालक को चाहिए कि इस अवधि में चूजों के रख रखाव, दाना, पानी इत्यादि का बहुत ध्यान रखे।

(10) उचित ब्रूडर का प्रयोग—

तापक्रम को सही रूप में बनायें रखने के लिए बहुत सी तरह के ब्रूडर का प्रयोग किया जाता है।

(क) कोयला ब्रूडर—वह कोयला जिसमें कोयलें का प्रयोग किया जाता है। इसमें 19 सप्ताह मे 900 से 1200 पौंड कोयले का प्रयोग किया जाता है।

(ख) तेल से जलने वाले ब्रूडर—ऐसे ब्रूडर में मिट्टी का तेल प्रयोग लाया जाता है इसमे 8 से 10 सप्ताह में 150 गैलन तेल खर्च होता है।

(ग) विद्युत ब्रूडर—इसमें विद्युत द्वारा गर्मी मिलती है इसमें दो वाट का बल्ब प्रति चूजा को आवश्यकता होती है।

(घ) गैस ब्रूडर—यह ब्रूडर गैस से चलायें जाते है तथा यह कम काम में लाये जाते हैं।

(ङ) गर्म पानी के ब्रूडर—ऐसे ब्रूडर स्थायी होते हैं इनमें बीच में गरारी होती है जिसमें गर्म पानी भर दिया जाता है इसी से गर्मी मिलती रहती है।

विभिन्न अवस्था के चूजों के लिए आवश्यक तापक्रम—

तालिका संख्या-2

क्र. सं.	चूजों की आयु सप्ताह मे	तापक्रम डिग्री फारेनहाइट में
1.	0–1	93–95
2.	1—2	88—90
3.	2—3	83—85
4.	3—4	78—80
5.	4—5	73—75
6.	5—6	70—72

(11) ब्रूडरों का सही ढंग से प्रयोग—

चूजों के आने से पहले ब्रूडर को 10 या 12 घंटे पहले चालू कर देना चाहिए तथा ब्रूडर के किनारों का तापक्रम थर्मामीटर की सहायता से नोट करना चाहिए। अधिकतर तापक्रम सुबह चार बजे तथा दोपहर को नोट करना चाहिए।

(12) उचित भोजन पात्रों का प्रयोग—

चूजें शुरु में भोजन के अभाव में वह बिछावन को खाने लगते हैं इससे बचाने के लिए अखबार

या बोरों को बिछाकर उस पर दाना बिखेर देना चाहिए। तीन दिन बाद बर्तन काम में लाते हैं। यह बर्तन चूजों की पीठ की ऊँचाई के बराबर होने चाहिए तथा आधे भाग में ही आहार भरा होना चाहिए तथा आयु के साथ ही साथ बर्तनो का आकार बढाते हैं।

तालिका संख्या 3

चूजो की आयु व बर्तन का आकार

क्र.सं.	आयु सप्ताह में	बर्तन का आकार वर्ग इंच मे
1.	एक दिन से 2 सप्ताह	1
2.	2 – 6	2
3.	7 – 12	3.5
4.	12 से अधिक	5

(13) चूजों के लिए पानी व पानी के पात्रों का उचित प्रयोग—

चूजो के लिए स्वच्छ पानी के पात्रों का होना जरूरी है जिसमें साफ पानी हो तथा चूजों के आते ही उनकी चोच पानी में डूबो कर उन्हे पानी का परिचय दे देना चाहिये उन्हें पानी पीने के स्थान का भी पता लग जावेगा इसलिए निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिये।

(1) पानी साफ ताजा तथा प्रति दिन पानी के बर्तनों को किसी कीटाणु नाशक से साफ करना चाहिये अगर मिट्टी के बर्तन काम में लाये गये हो तो काम आये हुए बर्तनों से दूने रखने चाहिये। तथा खाली बर्तनो को साफ करके धूप में सुखा देना चाहिये।

(2) कभी भी चूजों के लिए पानी पीने के लिए 10 फिट से अधिक न जाना पड़े।

(3) पानी हर समय मिलता रहना चाहिए। पानी की कमी नही होनी चाहिये।

(4) पानी एवं पानी की अस्वच्छता मे तनिक भी असावधानी हानिकारक हो सकती है।

(5) निश्चय ही पानी अधिक खारा नही होना चाहिए।

(14) उचित बसेरा का प्रबन्ध—

जब चूजे 3 या 4 सप्ताह के हो जाय तो उनके लिए बसेरा का प्रबन्ध कर देना चाहिए यह बेसेरा जमीन के पास ही हो जब वह 6 सप्ताह के हो जाय तो उनको स्थायी बसेरा का प्रबन्ध कर देना चाहिए। यह बसेरा 1 इंच × 4 इंच, 1 इंच × 3 इंच, 2 इंच × 3 इंच, और 2 इंच × 4 इंच का भी हो सकता है। यह जमीन से 0·8 इंच की ऊँचाई पर हो। इसके साथ ही साथ उसके किनारो को समतल बना देना चाहिये।

(15) चूजों को ब्रुडर से अलग करना—

इस क्रिया मे चूजों को ब्रूडर से अलग ले जाते हैं तथा गर्मियो में 3 सप्ताह बाद सर्दियों में 5 सप्ताह बाद ऐसा करने से चूजों के पंख जल्दी निकलते हैं।

(16) प्रकाश तथा हवा का उचित प्रबन्ध—

इसमें हवा तथा प्रकाश को उचित रखने के लिये खिड़की तथा रोशनदानों का उचित प्रबन्ध होना जरूरी है जिसके साथ ही माथ चूजों द्वारा छोड़ी गयी दूषित हवा भी निकल जाय और लीटर भी सूखा रहें। डा. एल. आर. वर्मा (अधिक्षक, राज. कुक्कुटशाला अजमेर) ने बताया है कि 1 दिन से लेकर 8 सप्ताह तक चूजों को प्रकाश की आवश्यकता होती है। दिन की रोशनी के अलावा 4 से 6 घटे प्रकाश देना आवश्यक होता है। 40 वाट का बल्व 100 वर्ग फुट स्थान के लिए काफी होता है। इसमें चूजों मे बीमारी रोकने की शक्ति और एक दूसरे पर चढ़ कर दबने से मरने की क्रिया नष्ट हो जाती है।

संतुलित भोजन—

चूजों की पूर्ण बढ़वार के लिए सतुलित भोजन का होना जरूरी है जिसमें निम्न तत्व मौजूद हो जैसे प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेटस, लवण, विटामिन और उचित मात्रा में पानी। इस प्रकार के आहार घर पर तैयार किये जा सकते हैं अथवा बाहर मे भी मंगा सकते है।

तालिका संख्या 4

प्रारम्भिक आहार एक दिन से दो माह की आयु तक

क सं	वस्तुएं	परिमाप	क्र. सं.	विटामिन और मिनरल (खनिज)	परिमाप
1.	मूंगफली की खली	32 प्र.	1.	कोक्सिडियोस्टेट वाइफयुरन नेफ्टिन	334 ग्रा.
2.	चावल का सफेद छिकला	30 प्र	2.	टी. एम. फीडसफिमेंन्ट	1 कि.
3.	मक्का (पीली)	25 प्र.	3.	विटामिन ए. (32500 आई. यू.)	33·5 ग्र.
4.	फिश मील (मछली का चूरा)	6 प्र.	4.	विटामिन डी-3 (200000 आई. यू)	6·5 ग्रा.
5.	शीरा (मोलासेज)	4 प्र.	5.	रिवोफलेविन	6·5 ग्रा.
6.	पंख, सीपी, घोघा आदि का चूर्ण	2 प्र.	6.	मिनरल प्रिमिक्स	2·5 ग्रा.
7.	बोन मील (हड्डी का चूरा)	1 प्र.		एक टन मिश्रित आहार के लिए	
	कुल	100 प्र.			

तालिका संख्या 5

एक से 6 सप्ताह के चूजें लिए

प्रथम प्रकार का भोजन — द्वितीय प्रकार का भोजन

क्र. सं	वस्तुएं	परिमाप	क्र. स	वस्तुएं	परिमाप
1.	पीली मक्का	31 भाग	1.	ज्वार	15 ,,
2.	जौ	10 ,,	2.	रागी	14 ,,
3.	गेहूँ की भूसी	10 ,,	3.	गेहूँ की भूसी	15 ,,
4.	मक्खन निकला हुआ दूध	5 ,,	4.	धान की भूसी	7 ,,
5.	मछली का चूरा	5 ,,	5.	मछली का चूरा	25 ,
6.	मूंगफली की खली	30 ,,	6.	मूंगफली की खली	10 ,,
7.	बरसीम की पत्तियाँ (सूखी)	5 ,,	7.	नारियल की खली	5 ,,
8	चूने का पत्थर	2 ,,	8.	बरसीम की सूखी पत्तिया	5 ,,
9.	हड्डी का चूरा	1 ,,	9.	चूने का पत्थर	2 ,,
10.	नमक	0 5 ,,	10,	नमक	0·5 ,,
11.	मछली का तेल	0·5 ,,	11	हड्डी का चूरा	1 ,,
			12.	मछली का तेल	0·5 ,,
	कुल	100 भाग		कुल	100 भाग

REFERENCES

1. Anonymous 1970 Important factors influencing mortality during and after delivery. Poultry Guide. VII (4) : 39.
2. Anonymous 1971 Chuja Palan. Poultry Guide. III (4) : 25-27.
3. Gausuddin, M. 1971 Poultry Palan men Postic Ahar Ki Jankari. Poultry Guide. III (I) : 37.

4. Harbanman Jules, J. 1956 Feeding the young and growing birds. Poultry farming for Project. 46-49.

5. Harbanman Jules, J. 1956 Purchasing Pullorum free birds. Poultry farming for protect. 28-33.

6. Kapoor, Shasi 1971 Chujon Ka Palan Posan. Poultry Guide. III (5) : 25-31.

7. Mahanta, K. C. 1961 Poultry Management. An introduction to animal Husbandry. 244-276.

8 Mathur, P. D. 1969 Pullorum disease or basillary white diarrhoea (B.W.D.) or sal monellasis. Poultry Guide VI (4) · 24-25.

9 May, G. G. 1962 Management of chicks and growers. Starting Poultry Keeping. 50-59.

10. Mohivddin, Gosh 1969 How good start rearing chicks. Poultry Guide VI (5) : 20-23.

11. Morrison Frank, B. 1948 Feeding and caring for Poultry. A hand book for the student stockmen. 1028-1082.

12. Naidu, P. M. N. 1964 Management of chicks. poultry Keeping in India. I. C A. R : 211-214.

13. Singh, Brij Bhushan 1971 Murgy Ka Santulan Ahar Poultry Guide. III (12) : 22-24.

14. Superker, Padama 1971 Chujon Meyn Ling Bhed Ke Kriya Kya Aur Kaise Poultry Guide. III (7) 17-19.

15. Testers, Hari 1971 Chujon Ki Nai Khurak. Poultry Guide, III (12) ; 22-24.

16. Willam C, Miller 1959 Poultry Management. Practical Animal Husbandry. 549-555.

17. William W. Stopper, & Vohra, pran 1962 Rearing baby chicks. Poultry Management I (3) . 7-15.

18. Wilson, Wilber 1966 Heat's role in chicks growth. Poultry Guide. 479-483:

मुर्गी–पालन में भोजन व्यवस्था

भानुप्रतापसिंह शिशौदियाँ
बी० एड० (कृषि)

हमारे देश मे कुछ ही वर्षों से कुक्कट पालन एक व्यवसाय के रूप में माना जाने लगा है। फिर भी यह अपनी बाल्य अवस्था में है। मुर्गियो से अधिक अंडे व माँस प्राप्त करने हेतु उन्हें उत्तम आहार तथा व्यवस्था प्राप्त करना आवश्यक है। पोल्ट्री पालको को मुर्गी पालन के सारे खर्च मे फीड़ का खर्च 60-70% तक उठाना पड़ता है। यदि मुर्गियों को काफी पौष्टिक आहार नहीं मिलेगा तो फीड़ का खर्च बढ़ जायेगा तथा पोल्ट्री पालन मंहगा पडेगा। पोल्ट्री में लाभ पाने के लिये पोल्ट्री राशन में अनाज दाने की मात्रा 50% से भी कुछ अधिक मिलानी चाहिये। जब तक हमारे देश में मानव जाति के आहार के लिये अनाज की उपज काफी नहीं हो जाती तब तक मुर्गियो के लिये अनाज दाने का उचित प्रबन्ध होना कठिन है।

मानव आहार के प्रयोग न आने वाली अखाद्य पदार्थ या खाद्य पदार्थों की उपजात वस्तुयें मुर्गी आहार के लिये काफी मात्रा में प्रयोग होती हैं। परन्तु ऐसी वस्तुओं की उपलब्धि भी ज्यादा नहीं है। मृतक पशुओ का माँस भी मुर्गी आहार के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। प्रयोगो और अनुसंधानों से यह भी सिद्ध हो गया है, कि सुखाये हुये लिवर का अवशेष, खून का मील, मेज गुलुटिन मील, शीरा, रेशम के कीडे का खोल, इन्कूबेटरों का कूडाकरकट, टैपीओका इत्यादि को पोल्ट्री आहार मे मिलाकर आर्थिक लाभ उठाया जा सकता है। अतः पोल्ट्री पालकों को इस बात का ध्यान व ज्ञान होना आवश्यक है कि मुर्गी आहार, जिस पर सबसे ज्यादा खर्च किया जाता है, वह कैसा व क्या हो ?

मुर्गी आहार क्या हो तथा क्यों ?

1. **आहार संतुलित हो**:—मुर्गी आहार सतुलित होना चाहिये, जिससे मुर्गियों को जीवन निर्वाह, कार्य करने एवं उत्पादन के लिये सभी तत्व अथवा पदार्थ अनुपात मे उपलब्ध हो सके, जैसे—प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स, वसा, कैलशियम तथा विटामिन्स आदि। कोई भी एक खाद्य-पदार्थ मुर्गियों की सभी आवश्यकता की पूर्ति नही कर सकता अतः कई खाद्य-पदार्थों को उचित अनुपात में मिलाकर एक संतुलित आहार बनाया जाना चाहिये। यदि आहार सतुलित नही है तो पक्षी अपनी उत्पादन क्षमता खो देगा तथा अस्वस्थता के लक्षण दिखाई देनेलगेंगे। अतः मुर्गी पालन व्यवसाय में लाभ की दर, आहार के संतुलन पर आधारित है।

2. **मुर्गी पालने का उद्देश्य**.—इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये कि पक्षी किस उद्देश्य को लेकर पाले जा रहे हैं। ताकि उनका आहार उसी दृष्टि से बनाया जाय। चूजे का दाना अन्डे देने वाली मुर्गी से भिन्न होता है।

3. **मुर्गियों की आवश्यकता**.—विभिन्न वर्ग की मुर्गियों को अपने जीवन निर्वाह, वृद्धि तथा उत्पादन के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है।

4. **पक्षियों की आयु**:—विभिन्न आयु वाले पक्षियों की आवश्यकता किन्ही-किन्ही तत्वों के लिये भिन्न रहती हैं। उदाहरणार्थ जैसे प्रोटीन % विभिन्न आयु व उद्देश्य वाले पक्षियों के लिये अलग-अलग है।

5. **ऋतु**:—मुर्गियों की आहार मात्रा ऋतु के अनुसार भी घटती-बढती रहती है। मुर्गिया ग्रीष्म ऋतु में कम खाती हैं। इसलिये आहार मात्रा की वृद्धि के लिये पक्षियों का आहार रोचक होना चाहिये।

6. **मुर्गी आहार के दाम**:—यदि आहार घर बनाया जाय तो उसके दाम कम होंगे तथा वह अच्छे प्रकार का दाना माना जायेगा। आप इस बात से अवगत होंगे कि दाने में क्या 2 पदार्थ किस अनुपात में मिले हैं। अच्छे प्रकार के पदार्थ तथा पोषक तत्वों की मात्रा आहार में अधिक हो। ऐसे दाने का उपयोग करना चाहिये, भले ही मुर्गी आहार का दाम प्रति क्विंटल 1-2 रुपया अधिक हो।

भोजन की आवश्यकता—भोजन वह पदार्थ है जिसके प्रति पाचनतंत्र क्रिया करता है। निम्नलिखित कार्यों के लिये शरीर को भोजन की आवश्यकता पडती है।

1. शरीर के ताप को बनाये रखने, श्वसन, रक्त प्रवाह तथा समस्त मानसिक और मास-पेशीय क्रियाओ के निर्माणार्थ शरीर मे गर्मी तथा शक्ति प्रदान करने के लिये।
2. शरीर के कोषों तथा तन्तुओं की टूट-फूट जो कि जीवन भर निरन्तर चलती रहती है की क्षतिपूर्ति करने के लिये।
3. चूजो तथा युवा पक्षियों की वृद्धि के लिये शरीर को आवश्यक तत्व प्रदान करने के लिये।

भोजन के तत्व:—

भिन्न-भिन्न भोजन की शरीर में क्रिया उस भोजन में निहित विभिन्न रासायनिक तत्वों पर निर्भर करती हैं अतएव भोज्य पदार्थों को उनके रासायनिक निर्माण के अनुसार निम्न भागो में वर्गीकृत किया जाता है।

(1) **प्रोटीन**:—

प्रोटीन तत्व कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, गन्धक और फासफोरस का मिश्रण होता है। यह शरीर के तन्तुओं के निर्माण और उनकी टूट फूट की क्षति पूर्ति करता है।

(2) **कार्बोहाइड्रेटस**:—

इसमें भी कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन तत्व पाये जाते हैं। इसमें सभी प्रकार के श्वेतसार तथा शक्कर शामिल हैं। यह शरीर में गर्मी तथा ऊर्जा उत्पन्न करता है।

(3) **वसा**:—

इसमें भी कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन तत्व पाये जाते है। परन्तु इसमे कार्बोहाइड्रेटस की अपेक्षा

इन तत्वो के अनुपात में अन्तर होता है। मुर्गी को वसा की कम आवश्यकता होती है क्योंकि मुर्गी इसका उपयोग आसानी से नहीं कर पाती।

(4) **खनिज लवण:—**

खनिज लवण शरीर के भार का लगभग 20वे भाग का निर्माण करते हैं और शरीर के लिये अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक है। पाचक रसो को उत्प्रेरित करने का कार्य खनिज लवण ही करते है तथा अम्ल और क्षार मे संतुलन बनाये रखते है।

(5) **विटामिन्स:—**

ये रासायनिक पदार्थ भोजन में सूक्ष्म मात्रा मे पाये जाते है, परन्तु शरीर तथा स्वास्थ के लिये आवश्यक तत्व है। मुर्गियों के लिये अत्यन्त आवश्यक विटामिन ए, डी व राइफ्लेवोविन है जिनका कि मुर्गी आहार में होना अत्यन्त आवश्यक है।

(6) **जल:—**

जल पाचन क्रिया के सुसचालन के लिये, रक्त को तरल बनाये रखने के लिये नितान्त आवश्यक है। यह शरीर के दूषित पदार्थों को निष्कासित करने के लिये आवश्यक है। जल के बिना चूजे व मुर्गी एक दिन भी जीवित नही रह सकती है जबकि आहार को एक दिन न देने से जीवित रह भी सकते है। अत मुर्गियो को स्वच्छ जल की व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है।

सन्तुलित खुराक कैसे बनाई जाय:—

मुर्गियों के लिये सतुलित आहार बनाने के लिये उनकी अलग अलग पौष्टिक आवश्यकताओ की जानकारी होना आवश्यक है। विकास और उत्पादन के समय का विचार और खुराक मे मिलाये जाने वाले पौष्टिक सघटकों का बहुत महत्व होता है। चूजो की जरूरतों को प्रकट करने के दो तरीके है:—

(1) प्रतिशतता अथवा खुराक के वजन की मात्रा में।
(2) प्रति 1000 कैलोरीज उपापच्य शक्ति।

वजन की मात्रा मे पौष्टिक जरूरतों को लिखने या प्रकट करने का तरीका संसार भर मे प्रचलित है, क्योकि यह जल्दी समझ मे आ जाता है।

कुछ प्रायोगिक कार्यो के द्वारा मात्राऐं निर्धारित की गई हैं ये प्रायः औसत मात्राये है, अत. स्थिर नही है। अनुसंधानों द्वारा जैसे जैसे विस्तृत सूचनायें मिलती रहती है इन मात्राओं को बदल दिया जाता है। इस प्रकार की एक तब्दीली कैल्शियम की आवश्यकता में आई, जिसकी अन्डे देने वाली मुर्गी के लिये सन् 1960 में आवश्यकता 2·25% की थी तथा 1966 में 2·75% आवश्यकता हो गई। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि ये मात्राएँ सदैव टिकाऊ नहीं है, और सारे संसार के लिये एक समान नही हो सकती, क्योकि ये औसत आवश्यकतायें खोजो के परिणाम स्वरूप है। जो कि नियत्रित वातावरण मे नही जानी जा सकती। अमेरिका तथा ब्रिटेन जैसे विकसित देशों में सुखाये दूध, जिसमें पौष्टिकता का अंश बहुत अच्छा होता है जैसे—सप्रेटा दूध का पाऊडर, तथा सुखाया हुआ दही का तोड़ जो कि काफी मात्रा मे बाजार में

मिलता है, पौल्ट्री आहार में मिलायें जाते हैं। भारत में हम अभी इन चीजो को मुर्गी आहार में मिलाने के बारे में सोच भी नहीं सकते। सोयाबीन के तेल की खुराक, मूंगफली के तेल से अधिक उच्च है क्योंकि इसमें अमीनोंएसिड़, लाइसिन, तथा मैथ्योनाईन की मात्रा बहुत ज्यादा होती है, परन्तु यह वस्तु भारत में पर्याप्त नहीं है। इस प्रकार उच्च कोटि का पालिशदार चावल भारत के कुछ ही प्रदेशों में मिलता है और इसके विपरीत कुछ अन्य प्रदेशों में निम्न कोटि का गेहूँ का चोकर ही मिल पाता है। अतः स्थानीय आहार बनाने वालों के लिये यही अच्छा होगा कि वे अपनी-अपनी हालत के अनुसार आहार के सघटको को अपनाये और कुछ खास-खास हालतों के अनुसार विभिन्न संघटकों को गुंजाइश अवश्य रखें। साथ ही साथ हमें मुर्गी पालने हेतु मुर्गी के भोजन का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है।

(अ) **प्रारम्भिक भोजन (स्टार्टर)**

1 से 6 सप्ताह की उम्र के चूजे इस वर्ग के अन्तर्गत आते है। भोजन में 20-22% तक प्रोटीन की मात्रा देनी चाहिये।

इस वर्ग के चूजों को निम्नलिखित भोजन देना चाहिये :—

(1) **प्रथम प्रकार का भोजन :—**

1. पीली मक्का	31 भाग
2. जौ	10 भाग
3. गेहूँ की भूसी	10 भाग
4. मक्खन निकला हुआ दूध (सूखा)	5 भाग
5. मछली का चूरा	5 भाग
6. मूंगफली की खली	30 भाग
7. बरसीम की पत्तियाँ (सूखी)	5 भाग
8. चूने का पत्थर	2 भाग
9. हड्डी का चूरा	1 भाग
10. नमक	0·5 भाग
11. मछली का तेल	0·5 भाग

हरा चारा 1 सप्ताह की उम्र के चूजों को देना आरम्भ करना चाहिये।

(2) **द्वितीय प्रकार का भोजन :—**

1. ज्वार	15 भाग
2. रागी	14 भाग
3. गेहूँ की भूसी	10 भाग
4. धान की भूसी	10 भाग
5. मछली का चूरा	7 भाग
6. मूंगफली की खली	25 भाग

7. नारियल की खली	10 भाग
8. बरसीम की पत्तियाँ (सूखी)	5 भाग
9. चूने का पत्थर	2 भाग
10. हड्डी का चूरा	1 भाग
11. नमक	0·5 भाग
12. मछली का तेल	0·5 भाग

(ब) **बढ़ाव का भोजन:—**

मुर्गी की बढ़ने वाली उम्र 6 सप्ताह से 24 सप्ताह तक होती है। इस समय भोजन में विटामिन की मात्रा 18 प्रतिशत होना आवश्यक है। इस वर्ग की मुर्गियों को निम्नलिखित भोजन उत्तम सिद्ध हुआ है—

(1) **प्रथम प्रकार का भोजन :—**

1. पीली मक्का	31 भाग
2. गेहूँ की भूसी	20 भाग
3. मछली का चूरा	5 भाग
4. जौ	10 भाग
5. मूँगफली की खली	25 भाग
6. बरसीम की पत्तियाँ (सूखी)	5 भाग
7. चूने का पत्थर	2 भाग
8. हड्डी का चूरा	1 भाग
9. नमक	0·5 भाग
10. मछली का तेल	0 5 भाग

(2) **द्वितीय प्रकार का भोजन :—**

1. ज्वार	20 भाग
2. रागी	20 भाग
3. गेहूं की भूसी	10 भाग
4. धान की भूसी	10 भाग
5. मछली का चूरा	7 भाग
6. मूंगफली की खली	13 भाग
7. नारियल की खली	10 भाग
8 बरसीम की पत्तियाँ (सूखी)	5 भाग
9. चूने का पत्थर	3 भाग
10. हड्डी का चूरा	1 भाग

11. नमक	0·5 भाग
12. मछली का तेल	0·5 भाग

(स) **अण्डे उत्पादन हेतु राशन :—**

अण्डे देने वाली मुर्गी को 17% प्रोटीन देना चाहिये। इस वर्ग की मुर्गियो को निम्नलिखित भोजन देना चाहिये।

(1) **प्रथम प्रकार का भोजन :—**

1. पीली मक्का	34 भाग
2. जौ	10 भाग
3. गेहूँ की भूसी	20 भाग
4. मछली का चूरा	5 भाग
5. मूगफली की खली	20 भाग
6. बरसीम की पत्तियाँ (सूखी)	5 भाग
7. चूने का पत्थर	4 भाग
8. हड्डी का चूरा	1 भाग
9. नमक	0·5 भाग
10 मछली का तेल	0·5 भाग

(2) **द्वितीय प्रकार का भोजन :—**

1. ज्वार	20 भाग
2. रागी	20 भाग
3. गेहूँ की भूसी	10 भाग
4. धान की भूसी	10 भाग
5. मछली का चूरा	7 भाग
6. मूगफली की खली	13 भाग
7. नारियल की खली	10 भाग
8. बरसीम की पत्तियाँ (सूखी)	5 भाग
9. चूने का पत्थर	3 भाग
10. हड्डी का चूरा	1 भाग
11. नमक	0·5 भाग
12. मछली का तेल	0·5 भाग

अण्डा देने वाली मुर्गियों को उपर्युक्त भोजन मिलाकर 100 किलो भार का बनालो और उसमें निम्नलिखित पदार्थ मिश्रित पदार्थ मिश्रित करो।

1.	विटामिन 'ए'	4·5 ग्राम
2.	विटामिन 'बी'	0 5 ग्राम
3.	विटामिन 'डी'	0·6 ग्राम
4.	मैगनीज सल्फेट	22·0 ग्राम

बहुत दिनों से एक ऐसे फार्मूले की खोज थी जो कि पूर्ण रूप से भारतीय हो। उस फार्मूले मे ऐसी वस्तुओं का प्रयोग किया गया हो जो अपने देश में बहुतायत से मिलती हो एव उनकी कीमत भी अधिक न हो। ऐसे ही फार्मूले कैग फार्म्स ने अपने सर्विस बुलेटिन में प्रस्तुत किये हैं। यह फार्मूला 'अनुभवी' भी है। इसे ठाकुर राम अवतार सिंह ने जो कैग फार्म के पार्टनर एवं तकनीकी विशेषज्ञ हैं, अपने 28 वर्षों के अनुभव से बनाया तथा लगभग 3.4 लाख मुर्गियो पर कई वर्षों तक प्रयोग करने के बाद मुर्गी पालकों के लिये उपलब्ध किया है।

अनुभवी फीड़ फार्मूला

तालिका संख्या–1

क्रम. सं	तत्व	स्टार्टर मैश%	ग्रोअर मैश %	लेयर्स मैस %
1	पीली मक्का	28	25	30
2	राइस पालिश	30	36	27
3	गेहूँ का चोकर	—	10	10
4	मूँगफली की खली	30	18	20
5	फिश मील	6	5	5
6	शीरा	3	3	3
7	लाइम स्टोन	2	2	3.5
8	बोन मील	1	1	1.5
		100	100	100

विटमिन्स, मिनरल्स तथा दूसरे तत्वों को निम्न अनुपात से उपरोक्त राशनो में मिलाना चाहिए।

तालिका संख्या–2

क्रम सं.	तत्व	प्रति 100 कि. ग्राम फीड़ में
1	रोबीमिक्श 'के'	15 ग्राम
2	रोबी 'बी'	20 ग्राम
3	मिनरल्स	21.6 ग्राम
4	नमक	250 ग्राम (पानी नमकीन होने पर कम)
5	काक्सीडियो स्टैट	केवल स्टार्टर मैश में

विभिन्न प्रकार की मुर्गियां, उदाहरणार्थ—स्टार्टैरस, हाइब्रिड, ब्रायलरस कम व अधिक भार की अण्डे देने वाली मुर्गियाँ पहले सप्ताह की आयु में 24 सप्ताह की आयु तक प्रति सप्ताह कितना आहार खाती है, इस प्रकार की सूचना कहीं भी भारतवर्ष में लिखित रूप से एक साधारण मुर्गी पालक के लिये एक स्थान पर मिलना कठिन है। इस विचार को ध्यान मे रखते हुए मुर्गी पालकों के लिये एक निम्नलिखित तालिका तैयार की गई है जिससे बड़ी आसानी से यह ज्ञात हो जाता है कि विभिन्न प्रकार की मुर्गियों में एक मुर्गी आयु के किसी एक सप्ताह में कितना आहार खायेगी व कितना आहार प्रति मुर्गी देना चाहिये। इस तालिका के आंकड़े विभिन्न स्थानों व कुक्कुट विभाग, भारतीय पशु अनुसंधान शाला, इज्जत नगर में किये गये नियंत्रित पोष्टीकरण प्रयोगों से लिये गये हैं।

प्रति दिन प्रति मुर्गी आहार की मात्रा

तालिका संख्या–3

आयु सप्ताह में	व्हाइट लैग हार्न का आहार (ग्राम में) (कम भार वाली मुर्गियाँ)	व्हाइट राक, आर० आई० आर० का आहार (ग्राम में) (अधिक भार वाली जातियाँ)
1	6–5	6–5
2	13–0	14–0
3	17–0	16–0
4	24–0	26–0
5	32–0	36–0
6	37–0	42–0
7	40–0	45–0

आयु सप्ताह मे	व्हाइट लैग हार्न का आहार (ग्राम में) (कम भार वाली मुर्गियाँ)	व्हाइट राक, आर० आई० आर० का आहार (ग्राम में) (आर्थिक भार वाली जातियाँ)
8	41–0	54–0
9	53–0	60–0
(बड़े बच्चो के लिये) 10	58–0	60–0
11	60–0	65–0
12	60–0	65–0
13	60–0	65–0
14	62–0	65–0
15	62–0	65–0
16	65–0	70–0
17	70–0	75–0
18	75–0	80–0
19	75–0	80–0
20	80–0	87–0
21	85–0	90–0
22	88–0	100–0
23	90–0	100–0
24	97–0	110–0

पोल्ट्री आहार मँगाने का पता :—

1. मार्डन पौल्ट्री फीड स्टोर, 7218 चौक आजाद मार्कैट, देहली—6।

2. नन्दी प्रोवेण्डर मिल्स, 33 नजफगढ़ रोड़, नई दिल्ली—15।

3. गोल्डन प्रोवेण्डर मिल्स, 16 नजफगढ़ रोड़, नई दिल्ली—15 ।

4. अमर एजेंन्सीज, 119/530 दर्शन पुरवा, कानपुर—12 ।

5. गोल्डन ग्रेन, भण्डारी क्रास फीलड्स्, प्रा० लि—इन्दौर ।

6. हिन्द लीवर पौल्ट्री फीड, नई दिल्ली ।

REFERENCES

1. Annonymous. 1961 Keeping Diseases off Poultry Pens, Poultry Information. No. 21.
2. Annonymous. 1961 Poultry keeping for Egg Production, Poultry Information No. 22
3. Annonymous. 1963 Feeding Poultry for Profit, Poultry Information Leaf No. 2
4. Annonymous. 1971 Grower Ration Sai Layer Ration ki Badli, Poultry Guide, III, (7) : 22-23.
5. Goshudden, M. 1971 Poultry Palna mai postic Ahar ki Jankari. Pertham Bhag Poultry Guide, III (1) : 30-40.
6. Goshudden, M. 1971 Poulty Palnamai postic Ahar ki Jankari, Doosra Bhag, Poulty Guide III (2) : 11-16.
7. Goshudden, M. 1971 Poultry Palna mai Postic Ahar ki Jankari, Teesra Bhag. Poultry Guide III (3) : 30-38.
8. Goshudden, M. 1971 Poultry Palna Mai Postic Ahar ki Jankari, Chotha Bhag Poultry Guide III (4) : 26-32.
9. Goshudden, M. 1971 Poultry Palna mai Postic Ahar ki Jankari, Panchwa Bhag, Poulty Guide III (11) : 26-32.
10. Gupta, D. P. 1971 Murgi Ahar Mai Khanij Padarth, Poultry Guide III (3) : 22-24.
11. Jain Pradeep 1971 Murgi Ahar Samasya Avam Sujhav, Poultry Guide, III (11). 15-19.
12. James Christopher 1972 Don't Forget Salt in your Bird's diet. Intensive Agriculture, X (4) : 27-28.
13. Johari, T. S. 1971 Fishmeel Tatha Meetmeel Kai Na Melanay Par Poultry Rason Banana Poultry Guide. III (8) : 31-34.
14. Johari, T. S. 1971 Ahar Mai Vibhinn Posak Tatavo Ki Kami Sai Utpann Beemariya.

15. John, D. Sumers 1969 A nutritionist analysis of the nutritional requirment of Birds, Poultry Guide, VI (10) : 26-31.

16. Julls, J. Haberman 1956 Feeding The Young and growing Bird, Poultry Farming for Profit, Engle wood. Prentice Hall I. N. C.

17. Khan, Sabbir Ahamad 1972 Anubhavee Feed Formula, Poultry Guide, IV (5) : 9-12.

18. Khan, Sabbir Ahamad 1972 Gram Ritu Aur Murgi Ka Rasan. Poultry Guide. IV (4) · 19-22.

19. Lary Taster 1971 Parafin East-Chuga Ki Nai Khurak, British Agricultural Journalist, Poultry Guide. III (9) : 36-38.

20. Mishra, G. P. 1971 Hamare Feed Banane Ke Karkhane, Poultry Guide. III (3) : 22-24.

21. Pal, K. K. & Johan, T. S. 1971 Vibhinn Parkar Ke Murgio Kae Ahar Ke avasyktayaen., Poultry Guide. III (5) : 19-22.

22. Reddy, C. V. & Mathur, C. R. 1972 Importance of Balanced Feed in Egg Production. Indian Farmer Digest. V (6) : 13-14.

23, Satapathy, N. 1969 Poultry Feeding in India. Poultry Guide. VI (8) : 19-23.

24. Singh, Brij Bhushan 1971 Murgi Ka Santulit Ahar. Poultry Guid. III (12) : 22-25.

25. Titus Horryw 1961 The Scientific Feeding of Chickens, The Interstate Printed & Publishers, I. N. C.

26. Vohara Pran 1962 Poultry Feed Manul, Poultry Specialist V. S. Agency for International Development Mission to India, New Delhi.

मुर्गियों की सामान्य बीमारियाँ एवं उपचार

सत्य नारायण त्रिपाठी
बी एड. (कृषि)

परिचय—

एक कहावत है कि जुए की तरह संसार में कोई व्यापार नही, यदि इसमे हार न हो, इसी तरह मुर्गी पालन के बारे मे कहा जा सकता है, कि इससे लाभदायक कोई व्यापार नही, यदि मुर्गियो में बीमारी न हो। कुक्कुट उत्पादन उद्योग की असफलता का मुख्य कारण है, मुर्गियों मे होने वाले रोगों की जानकारी का न होना। मुर्गी पालन में रुचि रखने वाले नये कुक्कुट पालक यह कह कर कि मुर्गी पालन का धन्धा लाभ-प्रद नही है, छोड़ देते हैं। परन्तु वस्तुत स्थिति ऐसी नही है, क्योंकि यदि मुर्गियों को बिछावन पर पाला जाय, (डीप लिटर पद्धति) तो 20 मुर्गियो से ही इतनी खाद प्राप्त हो जायेगी जो आधे एकड़ धान की फसल के लिये या चौथाई एकड़ तरकारियाँ उगाने के वास्ते खाद, आवश्यक खाद से कही अधिक होगी। अर्थात मुर्गी खाद से जो मक्का, गेहूँ तथा धान की अधिक उपज पैदा होगी उससे ही उतना लाभ होगा कि केवल खाद के लिये ही आप मुर्गियों को पालना चाहेगे, जैसा कि आस्ट्रेलिया के किसान कर रहे हैं।

अत' मुर्गियों में होने वाले प्रमुख रोगों की रोकथाम के बारे मे कुछ ऐसी बाते जिनके अनुकरण से मुर्गियो को रोग से मुक्त रखा जा सके जानना आवश्यक है।

(अ) विषाणु जन्य बीमारियाँ।
(ब) कीटाणु जन्य बीमारियाँ।
(स) परोपजीवी जन्य बीमारिया।
(द) अन्य बीमारियाँ।

(अ) विषाणु जन्य बीमारियाँ

(1) रानी खेत रोग –

यह रोग सर्व प्रथम उत्तर प्रदेश के रानी खेत नामक ग्राम में देखा गया, इसीलिये इसका नाम रानी खेत पड़ा। यह एक मुर्गियों की अत्यंत घातक छूत की बीमारी है।

लक्षण—

(1) बीमार मुर्गियों में खाँसी, तेजी से साँस लेना, साँस की नली में गड़गड़ाहट की आवाज, आहार न खाना, घास लगना इत्यादि।

(2) एक ही स्थान पर झुण्ड बना कर खड़े या बैठे देखे जाना ।

(3) बड़े पक्षियों मे ज्वर की स्थिति पायी जाती है । तापमान 110° फा. से 112° फा. तक बढ जाता है ।

(4) नाक से गाढ़ा पदार्थ गिरता दिखाई देता है । तथा कभी-कभी नासिका अविरुद्ध होकर श्वसन क्रिया में बाधा होती है ।

(5) अण्डों के छिलके पतले होने लगते हैं । सिर में कम्पन होने लगते है । सिर कन्धो के बीच चला जाता है व एक तरफ झुक जाता है ।

(6) दुर्गन्ध युक्त दस्त होने लगते हैं ।

उपचार व्यवस्था—

(अ) इस रोग के विषाणुओं का प्रभाव हो जाने पर कोई कारगर दवा उपलब्ध नहीं है । प्रभाव से बचाने के लिये मुर्गी घरो व उसके आस-पास की सफाई, मृत पक्षियों को हटा कर बाहर ले जाकर जलाना तथा पक्षियो से निकले द्रव्य पदार्थ तथा वहाँ के लिटर आदि को भी सावधानी पूर्वक एकत्रित करके बाहर जला देना चाहिये ।

(ब) **प्रति बंधक टीकों की व्यवस्था**—टीकों का ठीक समय पर उपयोग कर लेने से पक्षियों को रोगी होने से बचाया जा सकता है । इस उद्देश्य से निम्न दो टीको का उपयोग किया जाता है ।

(i) **एक स्ट्रेन वेक्सीन**—यह वेक्सीन एक दिन से चार सप्ताह की आयु के बच्चों में लगाया जाता है । इसका उपयोग करने से 16 सप्ताह तक रोग नहीं लगता है ।

(ii) **मुक्तेश्वर स्ट्रेन वेक्सीन**—यह वेक्सीन 8 सप्ताह से अधिक आयु के पक्षियों में लगाया जाता है । इसके उपयोग से 4 वर्ष तक के लिये रोग की रोकथाम हो जाती है ।

(2) चेचक रोग या फाउल पाक्स—

यह रोग दो प्रकार का होता है ।

(अ) ड्राई पाक्स या सूखी माता—

लक्षण—इस बीमारी में चमडी के ऊपर दाने व पपड़ी पड़ जाती है । जो कि कलगी, मुँह, आँखों की पलकों पर, पैरों की खाल पर देखे जाते हैं ।

(ब) वेट पाक्स—

लक्षण—यह रोग मुँह के अन्दर झिल्ली को रोग ग्रस्त करता हैं । मुँह के अन्दर पीली मोटी झिल्ली चढ़ जाती है । यह बीमारी 2-4 सप्ताह तक चलती है । यह बीमारी छुआ छूत से फैलती है ।

उपचार व्यवस्था—

रानी खेत का टीका लगवाने के दो सप्ताह बाद चेचक निरोध टीका लगवा देना चाहिये । यह टीका दो प्रकार का होता है ।

(1) **पिजन पाक्स वायरस**—इसका उपयोग 4 सप्ताह की आयु के पक्षियों में किया जाता है। इसके प्रयोग से 3-6 माह के लिये रोग की रोकथाम होती है।

(2) **फाउल पाक्स वाइरस**—इस टीके का प्रयोग 8 या 10 सप्ताह से अधिक की आयु के पक्षियों में किया जाता है। इसके उपयोग से 1 वर्ष के रोग की रोकथाम होती है। एक सप्ताह के अन्दर टीका लगे स्थान पर दाने निकल आने चाहिये, अन्यथा दूसरा टीका लगा देना चाहिये।

इसके अतिरिक्त मुर्गी घर की सफाई, खाने पीने के बर्तनो की सफाई इत्यादि रखनी चाहिये।

(3) एवियन ल्यूकोसिस काम्प्लेक्स रोग—

यह एक भयानक रोग है जो कि ज्यादातर बड़े पक्षियो मे पाया जाता है। यह रोग देशी मुर्गियों में कम व हाइब्रिड मुर्गियों में ज्यादा पाया जाता है।

लक्षण—पक्षी लंगड़ाने लगते हैं। पंख गिर जाते हैं, गर्दन में लकवा मार जाता है। आंखों का रंग सफेद हो जाता है, रक्त बनना कम हो जाता है, भूख कम लगती है, पक्षी खाना कम खाते हैं।

उपचार तथा प्रतिबंध के उपाय —

इस रोग के विरुद्ध कोई कारगर दवा नहीं है। निम्न बातों को ध्यान मे रखना चाहिये।

(1) उपरोक्त लक्षण युक्त पक्षी को समूह से हटा देना चाहिये।
(2) छोटी व बड़ी आयु के चूजों को अलग पालना चाहिये।
(3) रोग मुक्त समूह से चूजो को खरीदना चाहिये।
(4) पक्षियों को पौष्टिक आहार पर पालें।
(5) मुर्गी शाला की सफाई रखें।
(6) खाने-पीने के बर्तनों की सफाई रखें।
(7) मुर्गीशाला के अन्दर बाहरी जानवरों को न आने दें।

(4) मैरिक रोग—

मैरिक एक जर्मन का वैज्ञानिक था, जिसने सन् 1907 ई. में सर्व प्रथम इस रोग का विश्लेषण किया। इसी आधार पर इसका नाम मैरिक रोग पड़ा।

लक्षण— वर्तमान काल मे इस रोग के मुख्य दो प्रकार हैं।

(1) **एक्यूट फार्म**—जो कि सामान्यतः चूजों की 6-7 सप्ताह की उम्र में होता है। इसमें बच्चों के वजन में भारी कमी का हो जाना, विसरल ट्यूमर्स का पाया जाना, स्नायुओ व बगल का पक्षाघात आदि लक्षण हैं।

(2) **क्लासीकल फार्म**—यह रोग 12 से 20 सप्ताह की उम्र के पक्षियो मे पाया जाता है। इस रोग के ज्यादातर टांगों, डैनों व गर्दन का पक्षा घात, वजन मे कमी आ जाना, अकस्मात् मृत्यु का होना, अण्डों के उत्पादन में कमी आ जाना, अन्धापन हो जाना मुख्य लक्षण पाये जाते है।

यह रोग अत्यन्त सक्रामक रोग है जो कि वायु के माध्यम से फैलता है।

मैरिक रोग पर नियंत्रण –

मैरिक रोग व उसकी संक्रामकता से बचाव हेतु प्रबन्ध व्यवस्था के निम्न तरीके सुझाये गये हैं।

(1) ब्रीडिंग द्वारा मैरिक रोग निरोधक शक्ति के चूजे तैयार करना।
(2) मुर्गियों को अत्यधिक सावधानी से अलग कर, अलग-अलग खण्डों मे रखना।
(3) किसी भी मुर्गी के मरने पर उसकी पूरी-पूरी जाँच करना व सही रोग निदान करना।
(4) समय-समय पर इस रोग की संक्रामकता की उपस्थिति के लिये मुर्गी घरो की जाँच करते रहना चाहिये।
(5) मुर्गी घरो की सफाई, कर्मचारियो व बर्तनो की सफाई का ध्यान रखना चाहिये।

(ब) कीटाणु जन्य बीमारियाँ

(1) **किलनी ज्वर**—यह बीमारी पतझड के समय ज्यादा फैलाती है। बडी मात्रा मे मृत्यु हो जाती है।

लक्षण—इस रोग को उत्पन्न करने वाले कीटाणु का नाम—'बोनिया अन्सेरिना' है इस रोग मे पक्षी का तापक्रम 111° फा. तक हो जाता है। रोगी पक्षी उदास व सुस्त दिखाई देते हैं। खाने-पीने मे रुचि नही रखते, कलगी का रग सफेद, काला व अन्त मे नीला हो जाना, हरे रग के दस्त होने लगना इत्यादि लक्षण पाये जाते हैं।

उपचार व्यवस्था—

(1) माँस पेशियों में पेनसिलिन का इन्जेक्सन डाक्टर की सलाह से देना चाहिये।
(2) रक्त की जाँज करना। जाँच जीवित पक्षी की कर लेनी चाहिये।
(3) सभी मुर्गियो को इस रोग का प्रतिबन्ध टीका लगवा दिया जाय।
(4) मुर्गी घरो की सफाई, फर्श, छत व दीवारों पर मेलाथियान के 0·5% घोल का छिड़काव हर माह किया जाय।

(2) **फाउल कालरा**—

यह रोग तीन अवस्था में पाया जाता है। उग्र, कम उग्र व सौम्य।

लक्षण—यह रोग पेश्च्यूरेल्ला एवीसिडा नामक कीटाणु के द्वारा फैलता है। निम्न लक्षण है।

(1) रोगी पक्षी का तापक्रम 110° फा. तक बढ़ जाता है।
(2) स्वस्थ पक्षी अचानक गिरते हैं व कुछ देर पंख फड़फड़ाने के बाद मृत्यु हो जाती है।
(3) मुँह तथा नासिका द्वारा से गाढ़ा पदार्थ गिरना, खाने-पीने मे अरुचि हो जाती है।

उपचार व्यवस्था—

इस रोग के उपचार हेतु कोई अच्छी दवा प्राप्त नहीं है। निम्न बातों का ध्यान रखते है।

(1) फाउल कालरा सीरम का उपयोग रोग की प्रारम्भिक अवस्था में करने पर इसमें काफी

सफलता मिलती है। इसकी मात्रा 0·5 सी. सी. है। इसके उपयोग से 8-9 माह के लिये रोग की रोकथाम हो जाती है।

(2) मुर्गीशाला की सफाई कार्य कर्ताओं की सफाई व बर्तनों की सफाई आदि का ध्यान रखना चाहिये।

(3) **काक्सीडिय्रोसिस या खूनी पेचिस—**

यह रोग काक्सोडिया (इमेरिया टेलेना) नामक कीटाणु द्वारा फैलता है। इस रोग के कारण आहार नली क्षतिग्रस्त हो जाती है जिससे भोजन अच्छी तरह पच नहीं पाता। यह बीमारी एक पक्षी से दूसरे पक्षी द्वारा व खाने-पीने के बर्तन द्वारा फैलती है।

लक्षण—निम्न लक्षण पाये जाते हैं।

(1) दस्त पहले पीले व बाद में खूनी व बदबूदार होने लगते हैं।
(2) कलंगी पीली पड़ जाती है। तथा भूख कम लगती है।
(3) चूजों की आंखें बन्द हो जाती हैं। सिर झुक जाता है।
(4) वजन कम हो जाना व अण्डे देने की शक्ति कम हो जाती है। पंख खुरदरे व बिखर जाते हैं।
(5) तापक्रम 110° फा. तक हो जाता है व पक्षी ज्यादा संख्या मे मरने लगते हैं।

उपचार व्यवस्था व रोकथाम—

(1) चूजों के प्रारम्भिक आहार में काक्सीडिओस्टेट नामक दवा मिलाकर खिलाना चाहिये।
(2) मुर्गी शाला, बर्तन व लिटर की सफाई का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये।
(3) विटामिन ए. की मात्रा खाद्य पदार्थ के साथ बढ़ा देना चाहिए।
(4) मुर्गी शाला में बाहरी आदमियों को न आने दिया जाय।
(5) मृत्यु पक्षियों को बाहर ले जाकर गाढ़ देना या जला देना चाहिये।
(6) इम्बार्जान, सल्फाथिजेथीन, वाइफुरान को पानी के साथ देना चाहिये।

(4) **चूजों का सफेद दस्त या पुल्लोरम—**

इस रोग को वेसलरीह्वाइटडायरिया भी कहते हैं। इस रोग का कारण एक सूक्ष्म कीटाणु है जिसका नाम "साल्मोनेल्ला पुल्लोरमं है।

लक्षण—इस रोग के निम्न लक्षण हैं।

(1) चूजों में सुस्ती व उदासी आ जाती है।
(2) सफेद व बदबू दार दस्त होने लगते हैं।
(3) चूजों को श्वांस लेने में कठिनाई होती हैं।
(4) मृत्यु 90% तक हो जाती है।

उपचार व्यवस्था —

(1) रोगी पक्षी को पहचान कर समूह से अलग कर देना चाहिये ।

(2) समय-समय पर पक्षियों के रक्त की जाँच करते रहना चाहिये ।

(3) मुर्गी घरों व उनके खान-पान की पूरी सफाई रखनी चाहिये ।

(4) हर बार उपयोग के उपरान्त सभी इनक्यूबेटर को कीटाणु रहित किया जाना चाहिये ।

(5) दर्शको को मुर्गी घरों मे प्रवेश नहीं देना चाहिये ।

(6) केवल ज्ञात रोगरहित पक्षियो को ही प्रजनन के काम मे लाना चाहिये ।

(7) मुर्गीशाला में कीटाणु नाशक दवाओ का प्रयोग करते रहना चाहिये ।

(स) परोपजीवी जन्य बीमारियाँ

ये दो भागो मे बाटी गई हैं ।

(1) **आन्तरिक परजीवी**—ये कीडे होते है, जो कि मुर्गियो के शरीर के अन्दर संदूषण पैदा करते हैं ।

(अ) **राउण्ड वर्म्स**--ये कीड़े प्रायः $1\frac{1}{2}$ से 3 इच तक लम्बे होते है जो कि पक्षियों की अतड़ियों मे पाये जाते हैं ।

(ब) **केपिलरी वर्म्से**—ये कीडे $\frac{1}{2}$ इच तक लम्बे होते हैं तथा ये अतिड़यों व भोजन नलिका में पाये जाते हैं ।

(स) **टेपवर्म्स**—ये कीडे चपटे सफेद फीते जैसे होते हैं ।

लक्षण—(1) भूख की कमी हो जाती है ।

(2) उत्पादन कम, पक्षी कमजोर हो जाते हैं ।

(3) अतडियाँ सूज जाती हैं ।

(2) **बाह्य पर जीवी**—जैसे जुएँ, किलनी, खटमल, पिस्सू इत्यादि ।

लक्षण—(1) अण्डो मे कमी आ जाना ।

(2) पैरों व चोच से शरीर कुचरना इत्यादि ।

उपचार व्यवस्था—निम्न उपचार करना चाहिये ।

(1) मुर्गीघरो की सफाई व बर्तनो की सफाई करना ।

(2) मेलाथियान (50% डस्ट), 1 किलो को 60 मुर्गियों के परों पर लगाइये ।

(2) मुर्गीघरो के लिये 10 सी. सी. न्यूवाय को 5 लिटर पानी में मिलाकर घोल छिड़किये ।

(4) डीप लिटर के पोल्ट्री घरों में लिटर को समय-समय पर हिला-मिला दें ताकि वह सदैव सूखी रहे ।

(द) अन्य बीमारियाँ

(अ) पोषक तत्वों की कमी से उत्पन्न बीमारियाँ, जैसे केल्सियम, फास्फोरस, नमक की कमी से और विटामिन ए. बी. डी. की कमी से ।

लक्षण—शारीरिक हड्डियाँ पूर्णतया विकसित नहीं हो पाती, टाँगे कमजोर हो जाती है। उत्पादन शक्ति कम हो जाती है। पक्षी अन्धे हो जाते हैं।

उपचार व्यवस्था—भोजन के साथ विभिन्न पोषक तत्वों की कमी के लिये आहार में मछली का चूरा, हरी सब्जी अधिक मात्रा में दीजिये। तथा केल्सियम, नमक इत्यादि को उचित मात्रा में देनी चाहिये।

(ब) केनाबालिज्म—यह मुर्गियों में एक बुरी आदत है जो कि एक दूसरे को चोंच मारती हैं व पंख नोचती है।

कारण—मुर्गी शाला में नमी होना, आहार में विभिन्न पोषक तत्वों की कमी आदि के कारणों से यह आदत पड़ जाती है।

रोकथाम—निम्न व्यवस्था करनी चाहिये।

(1) इनकी चोंच के नुकीले भाग को काट देना चाहिये।

(2) आहार में नमक की उचित मात्रा देनी चाहिये।

(3) मुर्गियों के परों मे यदि जूँ हो गये हैं तो जूँ मारने वाली दवा परों में लगा देनी चाहिये।

(4) मुर्गीशाला में उचित तापक्रम रखना चाहिये।

REFERENCES

1. Anonymous 1969 Prevention of viral disease, Poultry Guide. VI (2) : 11-12.
2. Anonymous 1971 Coecciodiosis Se Bachae. Poultry Guide. III (9) : 26-30.
3. Anonymous 1971 Control lice in poultry. Intensive Agriculture. IX (5) : 27-28.
4. Anonymous 1971 Murgion Ki Bimariyan. Poultry Guide. III (4) : 18-24.
5. Anonymous 1972 Murgion Ke Anishchit Rog. Poultry Guide. IV (1) : 35-39.
6. Anonymous 1972 Vahya Parjivion Se Roktham Ke Liye Upyukta Aushadhiyan. Poultry Guide. IV (3) : 28-28.
7. Aupte, B. K. 1971 Poultry Palan Men Rog Nirodhan Ka Mahatwa. Poultry Guide. III (2) : 17-22.
8. Jaubri, T. S. 1972 Ahar Men Vibhinna Poshak Tatwon Ki Kami Se Utpann Bimariyan. Poultry Guide. IV (2) : 39-41.
9. Jaushi, Chandra 1972 Mairik Rog Ek Uljhan. Poultry Guide: IV (8) : 19-23.
10. Mathur, R. P. 1969 Some of the common disease in which birds are likly to become lame. Poultry Guide. VI (3) : 25-28.

11. Mathur, R. P. 1969 Calender of operation for prevention of disease in poultry. Poultry Guide. VI (10) : 18-24.

12. Mathur, R. P. 1969 Pullorum disease in which chiks Poultry Guide. VI (4) : 24-25.

13 Pandey, P. C. 1972 Poultry Ki Sadharan Parjivi Bimariyan. Poultry Guide. IV (3) : 21-27.

14. Rajya, B. S. 1972 Mairik Ki Bimari Avam Niyantran Sambandhi Upaya Poultry Guide. IV (4) : 12-16.

15. Rav, Dr T. Rama 1972 Fowl Cholara. Poultry Guide. IV (4) : 32-34.

16. Saxena, B P. 1972 Disease related to the poultry food. Poultry Guide. XXII (5) : 31-34.

17. Sharma, B D. & Garg, S. K. 1970 Kukkut Udyog Ke Liye Ghatak Rog. Rani Khet, Kisan Bharati I (5) : 21-22.

18. Singh, Dr. R. P. 1972 Murgion Ko Kuchh Ghatak Rogon Se Kaise Bachayen. Poultry Guide. IV (4) : 23-24.

19. Singh, Dr. R. P. 1971 Murgion Ke Pet Ke Kire Wa Unkey Upchar, Poultry Guide. III (2) : 25-26.

20. Superker, Padmakar 1971 Bharat Varsha Men Murgion Ki Samanya Bimariyan. Paiopjivi Bimariyan. Poultry Guide. III (3) : 12-18.

21. Superker, Padmakar 1971 Bharat Varsha Men Murgion Ki Samanya Bimariyan, Bhag—2. Kitanu Janya Bimariyan. Poultry Guide. III (2) : 17-24.

समुदाय की आवश्यकता के लिये फल और सुशोभित पौधे मिलने के लिये स्कूल में एक छोटे पौधे घर की योजना स्थापित करना

नेपालसिंह
बी०एड० (कृषि)

(1) **पौध घर का महत्व :**

पौध घर स्कूल की जमीन के अनुसार 1 5 से 5 एकड का बनाया जा सकता है। यह पौध घर विद्यार्थियों को वर्तमान वानस्पतिक संवर्धन की तकनीकी विधियों का विकास करने तथा अच्छे प्रबन्ध और व्यवसाय के लिये आवश्यक है।

(2) **भारत में फल पौध घर व्यवसाय का झुकाव :**

देश में बहुत से फल पैदा करने वाले क्षेत्रों में बहुत से माली है जो पब्लिक के बेचने के लिये हजारों फलों के पौधे वनस्पतिक संवर्धन द्वारा तैयार करते है और ये एक बहुत बड़ी सख्या मे फल और फूल के पौधों को उगाने में पुराने ढग को अपनाये हुए हैं।

इन पीछे की 10 साल में भारत में फलों का क्षेत्र 22 मिलयन एकड़ से बढ़कर 34 मिलयन एकड़ हो चुका है। यह निम्न कारण से बढ़ा है :—

1—बगीचे स्थापित करने के लिये सरकार ऋण दे रही है।

2—बगीचे उगाने वाली भूमि का लगान माफ है।

(3) **पौध घर के उद्देश्य :**

1—स्कूल, विद्यार्थियो और समुदाय को फल फूल के पौधे मिल ने की आवश्यकता के लिये।

2—विद्यार्थियों मे ऐसी योग्यता का विकास करने के लिये कि वे पौध पर व्यवसाय का अच्छा प्रबन्ध कर सके।

3—छात्रों में ऐसी योग्यता का विकास करना जिससे वे इनार्चिग, ग्राफिटिंग, बडिग और लेयरिग के द्वारा पौध घर में पौधो की वृद्धि करा सकें।

4—छात्रों मे ग्रोथ रेगूलेटर और पोलीथिन के प्रयोग करने की योग्यता का विकास करने के लिये।

(4) **समस्यायें :**

1—देश में अचानक ही फल और फूलो के पौधों की मांग पौध घर मे इस साल बढ गई है।

2—भारत में विभिन्न क्षेत्रों में लगभग 2000 पौध घर है जिनसे लगभग हर साल 25 मिलियन टन फलो के पौधों को तैयार किया जाता है।

3—जो अध्यापक सैकेण्डरी स्कूल में कार्य कर रहे है वे इस क्षेत्र में प्रशिक्षत नही है।

4—अधिकाश विद्यालयो में छात्रों को बिना पौध घर के अवास्तविक स्थिति में वानस्पतिक सवर्धन की विधियों का प्रशिक्षण दिया जाता है ।

(5) **सुधार :**

1—अध्यापक स्कूल में छोटा सा पौध घर रख कर छात्रों को पौध घर के लिए उत्साहित कर सकते है ।

2—अध्यापक वास्तविक स्थिति मे वानस्पतिक सवंर्धन की विधियों का प्रशिक्षण दे सकता है ।

3—अध्यापक वानस्पतिक सवंर्धन की नई विधियों और टैकनिक के प्रदर्शन दे सकता है ।

4—अध्यापक इस क्षेत्र में प्रशिक्षत होना चाहिये जिससे वह समुदाय के माली को पौध घर के व्यवसाय में ग्रोथ रगूलेटर तथा पोलीथिन का उपयोग समझा सके ।.

(6) **एक छोटे से पौध घर का नमूना स्कूल में इस प्रकार होना चाहिए :**

1—**बीज शैय्या :**

(अ) आकार मे छोटी ।

(ब) पानी के साधन के पास ।

(स) भूमि की सतह से थोडी ऊंची ।

(द) खुले क्षेत्र में जो डेम्पिग ऑफ बीमारी को रोकने में सहायक हो ।

(ड) अच्छी तरह कम्पोस्ट मिला देनी चाहिए या जुताई के साथ गोबर की खाद मिलानी चाहिए ।

2—**नर्सरी बेड .**

बीज शैय्या से पौधे उखाड कर इन में ट्रॉसप्लाट कर दिये जाते है :

(अ) यह बीज शैय्या से थोडी बड़ी होनी चाहिए ।

(ब) खुले क्षेत्र में तथा पानी के साधन के पास होनी चाहिए ।

(स) यह सैक्सन मे विभाजित होनी चाहिए ।

(द) भूमि में जल निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहिए ।

(ड) यह सब रास्ते या सडक या नालियों के सहारे होनी चाहिए ।

3—**मात्र पौधों का क्षेत्र :**

(अ) मातृ पौधों का पौध घर में एक तरफ लगाना चाहिए जिनका अन्तर 8-12 फुट हो सकता है यह आकार पर निर्भर करता है ।

(ब) मातृ पौधे गारन्टी वाली किस्म के होने चाहिए ।

(स) समुदाय की आवश्यकतानुसार प्रत्येक जाति के फल के पौधों को स्थान देना चाहिए ।

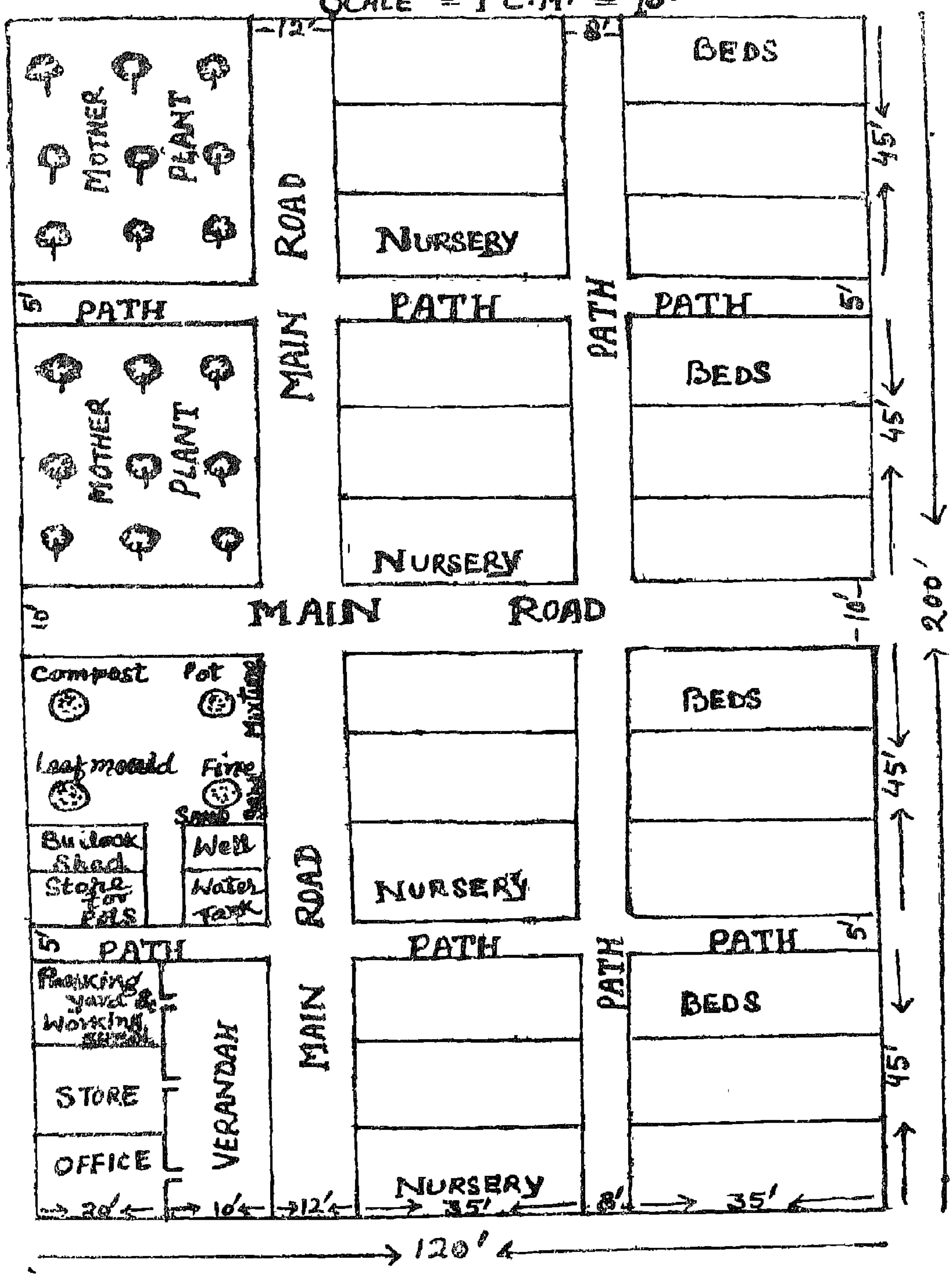
(द) मातृ पौधों की अच्छी देखभाल करनी चाहिए । रोग तथा कीड़ों की रोकथाम करनी चाहिये

4—**गमला प्रांगन :**

यह गमला वाले पौधे रखने के प्रयोग मे लाया जाता है । यह सैक्सन कम्पोस्ट, लीफ मॉल्ड, बालू, पोट-मिक्शचर और भिन्न आकार के गमले स्टोर करने में प्रयोग किया जाता है ।

PLAN OF A NURSERY

SCALE = 1 C.M. = 10'



(अ) यह पानी के साधन के पास हो।
(ब) पानी के टेंक के समीप हो।
(स) पेडों की छाया के समीप हो।

5. पैक करने तथा कार्य करने की शाला :

यहाँ पर अधिक होना चाहिए क्योंकि यहा पर बहुत से कारीगर पैक करने का कार्य करते हैं तथा पैक पौधे जो बाहर भेजे जाते हैं या बेचे जाते है स्टोर किये जा सकते है।

6 **स्टोर—**

स्टोर भी पैंकिग पदार्थ को रखने के लिये प्रयोग किया जा सकता है जैसे टोकरी, लेवल, रस्सी इत्यादि यह कार्य करने के यन्त्र रखने तथा औजार मे प्रयोग किया जा सकता है जो रोजाना पौध घर मे प्रयोग किये जाते हैं।

(7) **कुछ फल तथा शोभा वाले पौधों के नाम:—**

(अ) आम, अमरूद, नीबू, केला, लीची, बेर इत्यादि।
(ब) कचनार, गुलमोहर, अमलतास, अशोक, पिंक मोहर।
(स) गुडूहल, वारलेरिया क्रस्टाटा, वॉगनविलिया, सैंटना केमरा, टिकोमा एसटेन्स, टी० एम० सी०, रात की रानी, और दिन का राजा।
(स) गार्डेन नैस्टरसियम, पैंजी, डहेलिया, लारक स्पर, लाइनम, पौपी, पिटूनिया, गेंदा, जिनियाँ हॉली हॉक, गुलाब, ऐलोकेशिया, ताड़, पोथस्, क्रोटन, फर्न, कोलियस, तामेश्वर, मोर पंखी, सुदर्शन, हिमालियन पैटरन, कटीली चम्पा, बेला, बोतल ब्रुश इत्यादि।

(8) **आम के फल का पौध घर बढ़ाने में उन्नति क्रियायें:—**

आम में वीनियर ग्राफिटग—कृष्ण नगर, प० बगाल और आई० ए० आर० आई, नई दिल्ली में हुई खोजों के अनुसार वीनियर ग्राफिटंग के सफल होने के अच्छे परिणाम मिले है यहां तक कि ये 70-80 प्रतिशत तक सफल हुई है। 1961-62 मे दिल्ली मे दशहरी, लगड़ा, चौसा पर ट्राई की गई तो 80 प्रतिशत सफल होने के परिणाम मिले।

लाभ –

1—दूसरी विधियों से सस्ती पड़ती है।
2—पौध घर में इस विधि से दूसरी विधि की अपेक्षा पौधे आसानी से बढ़ाये जा सकते है।
3—अधिक परिश्रम नहीं करना पढ़ता है।
4—पैंसिल के बराबर मोटी 4-6 इंच लम्बी ऊपर की टहनी चुननी चाहिए।
5—इस टहनी पर कलिका ऐसी होनी चाहिए जो 10-15 दिन में फूट कर बाहर निकलने लगें।

वीनियर ग्राफटिग में तना टहनी का चुनाव—

1—$\frac{1}{2}$" व्यास का 1-1$\frac{1}{2}$ साल पुराना तना चुनना चाहिए।

2—इसका रग हरे से हल्का हरा चाहिए।

3—तना चुनने के बाद उसमें एक तरफ 2 इच लम्बा तिरछा लकड़ी सहित कट देना चाहिए।

4—ऐसा ही कट टहनी मे देना चाहिए जो तने की नोच में फिट बैठे।

5—इसके बाद तना व टहनी दोनों को ठीक स्थिती में फिट करके एक साथ लगाकर के पोलीथिन पेपर लगाकर धागे से बांध देना चाहिए।

6—3 सप्ताह के बाद तने के ऊपरी भाग को समाप्त कर देना चाहिए।

7—पलास्टिक रेप को 2-3 माह बाद धीरे-धीरे हट देना चाहिए जब पूर्ण रूप से दोनों जुड़ जायें।

(9) **केला में वानस्पतिक संवर्धन**—

केला में वानस्पतिक संवर्धन ऑफ सूटा के द्वारा होता है जो पौधे के आधार से निकलते हैं। ये ऑफ शूटस सकर्स कहलाते है। ये सकर्स दो प्रकार के होते हैः—

(1) शौर्ड सकर्स

(2) वाटर सकर्स

(1) **शोर्ड सकर्स** · इसकी पत्तियां झुकी हुई, नुकीली, तलवार जैसी होती है। यह एक मजबूत सीफो स्टेम रखते है।

(2) **वाटर सकर्स** · चौडी पत्तिया तथा गोल तना होता है।

जो अच्छे शोर्ड सकर्स होते है केवल उनको ही वृद्धि के लिये चुनना चाहिए। इन चुने हुए शोर्ड सकर्स को मातृ पौधे से अलग कर लेना चाहिए अलग करने के बाद इन पौधों को खेत में जो तैयार गड्ढे होते हैं जिनमें खाद आदि भरा होता है, जुलाई और अगस्त के माह में लगा देना साहिए।

(10) **लीची में वानस्पतिक संवर्धनः**—

लीची बिहार और उत्तर प्रदेश में व्यापार के लिये एक बहुत ही महत्व पूर्ण फल है। इसमें वानस्पति संवर्धन की लेयरिंग विधि सबसे अधिक सफल हुई।

लीची में गुटी लगाना—

(1) सबसे पहले अच्छे लीची के पेड़ को चुनते है।

(2) यादगार के लिए चुनी हुई टहनियों पर निशान लगा देते हैं।

(3) इसके बाद उन पर से गोलाई में 1 इच की लम्बाई मे छाल को हटा देते है।

(4) इस छाल हटे हिस्से पर कोई केम्बियम या छाल नही छोड़नी चाहिये।

(5) इसके बाद इस पूरे स्थान को विशेप प्रकार से तैयार किये मिक्शचर द्वारा चारों तरफ से ढक देना चाहिये।

(6) इस मिक्स्चर से ढ़कने के बाद उसके ऊपर गनीबैग लपेट कर उसे दोनों किनारो पर धागे से बांध देना चाहिए।

(7) यह मिक्स्चर 7-8 सप्ताह तक नम रहना चाहिये। इसको नम रखने के लिये इसके ऊपर पानी का घडा बांध कर उसमें बहुत बारीक छिद्र करके लटका देना चाहिये।

(8) जड़ो का विकास हो जाने पर गूटी पौधे से अलग करने के लिये तैयार हो जाती है। इसको अलग करके गमले मे लगा देना चाहिए।

(9) एक माह के बाद यह पौधा पौध के योग्य हो जाता है।

(11) **अमरूद में वानस्पतिक संवर्धन:—**

अमरूद मे सामान्य रूप से इनार्चिग और एयरलेयरिंग को अपनाया जाता है लेकिन यह विधियाँ खर्चीली है। वडिग सस्ती और सरल विधि है पैच बडिग अमरूद मे सबसे अधिक सफल हुई है।

पैच बडिंग लगाना:—

1—पौध घर मे इलाहबादी सफेदा जाति के 1-1½ साल पुराने लगभग एक लम्बाई, एक मोटाई के पौधे चुनने चाहिए।

2—कलियाँ 3 साल पुराने इलाहाबादी सफेदा जाति के पौधों से चुननी चाहिए। इसके बाद तने की छाल मे जमीन से 8-9 इंच की ऊंचाई पर पौधे में तेज बडिंग नाइफ के द्वारा कट देते हैं।

3—यह कट 0.6-0.8 से.मी. चौड़ा, 2-3 से.मी. लम्बा या कलिका के आकार पर निर्भर करता है।

4—इसी आकार मे कलिका का पौंच निकाल लिया जाता है। इसके तुरन्त बाद ही तैयार किये हुए तने में इस पैच को लगा दिया जाता है।

5—इस कलिका को पौलीथीन पेपर से ढक कर बाध दिया जाता है।

6—कुछ सप्ताह के वाद जव कलिका फूटने लगे तब तने के ऊपरी भाग को कलिका के जुडने के स्थान से 4 इंच ऊपर काट दिया जाता है। इसको धीरे-धीरे काटते है।

पैच बडिंग और शील्डबडिंग में कुछ परिणाम इस प्रकार हैं :—

		ली गई कलिकायें	स्प्राउट	सफल	प्रतिशत
1—जुलाई 27	(अ) शील्ड बडिग	25	7	2	8 प्र०
	(ब) पैच बडिंग	25	25	15	60 प्र०
2—अगस्त 18	(अ) शील्ड बडिंग	25	7	7	28 प्र०
	(ब) पैच बडिग	25	22	17	72 प्र०

(12) **वानस्पतिक संवर्धन में पोलीथिन का महत्व :**

पोलीथिन बहुत से गुण रखता है जो कि एक गार्डनर और पौघ घर में कार्य करने वाले मनुष्य के लिये जानने महत्व पूर्ण हैं :—

पोलीथिन की विशेषतायें तथा गुण :

पोलीथिन में कुछ विशेषतायें ऐसी पाई जाती है जो कि पौधे की बाहरी त्वचा में पाई जाती हैं :—

1—यह पानी को उड़ने से रोकता है।

2—इसमें पानी का कोई प्रभाव नही पड़ता है।

3—यह् प्रकाश को ट्रांसमिट करता है ।
4—यह् आक्सीजन गैस को प्रवेश करने में सहायता देता है ।

पोलीथिन का प्रयोग :

यह् वानस्पतिक संवर्धन में कटिंग में प्रयोग किया जाता है ।

लाभ :—(1) पौधे के लिये अच्छी दशा रहने के लिये उत्पन्न करता है ।
(2) थोड़े स्थान में अधिक पौधें आते है ।
(3) जड़ों का विकास पोलीथीन वाली की अपेक्षा कम होता है ।
(4) पोलीथिन का प्रयोग एयरलेयरिंग में किया जाता है ।
(5) वानस्पतिक संवर्धन में पलास्टिक पाट का प्रयोग होता है ।
(6) पोलीथिन मिट्टी के गमलों को हटाने में प्रयोग होता है ।
(7) पोलीथिन का प्रयोग ग्राफटिंग और बडिंग में होता है ।

(13) वानस्पतिक संवर्धन में ग्रोथ रेगूलेटर ·

पौधों के वानस्पतिक संवर्धन में ग्रोथ रेगूलेटर का बहुत महत्व है यह् वर्तमान बागवानी मे पौधो की ग्रोथ को बढ़ाते तथा तेजी से उसमें जड़ो के विकास के लिये यह् आवश्यक है ।

पौधों के ग्रोथ रेगूलेटर :

(1) आई० बी० ए० इन्डोल क्यूटारिक एसिड ।
(2) एन० ए० ए० नेपथेलिन एसीटिक एसिड ।
(3) एन० ए० डी नेपथेलिन एसीटामाइन ।

प्रयोग करने की विधियां :

(1) कटिंग के आधार में पाउडर मिक्शचर को प्रयोग करना ।
(2) सान्द्र घोल मे आधार को शीघ्र डुबा कर ।
(3) हल्के घोल में आधार को काफी देर तक डुबा कर ।

कैसे प्रयोग करते हैं :—

पहले कटिंग के आधार को नम करते हैं फिर उसको पाउडर मिक्स्चर में डुबा देते हैं ।

(14) पौध घर के पौधों में बीमारियां और उनकी रोक थाम :—

(अ) फंजाई द्वारा फैलने वाली बीमारियाँ .—(1) कौलर रुट रौट ।

उपाय :—

(1) पौध घर वाले स्थान पर पानी नहीं भरना चाहिए ।
(2) कालर क्षेत्र में कोई घाव नहीं होना चाहिए ।

(3) भूमि की खुदाई कर देनी चाहिये जहा पर पहले के पौधों का बेकार भाग पडा हो ।

(2) नासपाती, सेव, पपीता की लीफ स्पॉट की बीमारी :–
उपाय : चूना और गंधक के घोल का छिड़काव करना चाहिए ।

(3) आड़ू की लीफ करल बीमारी :
उपाय · 4 4 50 के बोर्डेक्स मिक्श्चर का छिडकाव करना चाहिए ।

(4) अमरूद की बिल्टकी बीमारी '–यह फयूजेरियम आक्सी स्पोरियम के द्वारा फैलती है इसके लिये प्रथम अवस्था में ही ब्रांच को कटवा देना चाहिए तथा भूमि मे जिप्सम डालना चाहिए ।

(5) पपीता की फुट रॉट बीमारी : यह पिथियम अफेनीडरमेटम के द्वारा फैलती है ।
उपाय . 2-3 बार 6:6:50 केलोर्डेक्स मिक्श्चर का छिड़काव करना चाहिए ।

(ब) जीवाणुओं द्वारा फैलने वाली बीमारियाँ ·

(1) **सेव की हेयरी रुट बीमारी** · यह बैक्टीरियम फाइटोमोनाज राहजोजीनस के द्वारा फैलती है । इसके रोकने के लिये बीमारी से मुक्त रुट स्टॉक को प्रयोग मे लाना चाहिए ।

(2) **सिट्रस केन्कर** . यह बेक्टीरियम फाइटोमोनाज सिट्राई के द्वारा होती है इसके लिये रिंग को अलग कर देना चाहिये तथा कुछ फंगी साइड्स का प्रयोग करना चाहिए जैसे डाइथेन ।

(स) वाइरस बीमारियां :

(1) **पपीता की मुजेक और लीफ कर्ल बीमारी :**
यह एफिड्स तथा सफेद मक्खी के द्वारा ट्रासमिट होती है ।

(2) **प्लम्बस की लीफ पैटर्न बीमारी ·**
यह प्लम्ब लाइन पैटर्न वाइरस के द्वारा होती है ।

(3) **सेव में मुजेक की बीमारी :**
यह मुजेक वाइरस के द्वारा फैलती है । पत्तियों के ऊपर क्रीमी पीले रग के धब्बे हो जाते है ।

REFERENCES

1. Edmond, J. B. Senn, T. L. & Andrews, F. S. 1964 Nursery plant production, Fundamentals of Horticulture. Mcgrow-hill book Company, New York, London, 441-449.
2. Jhauhari. O. S. Nigam, V. N. 1962 Air layering in mango, Fruit nursery practices in India. 77-81
3. Katyal, S L 1962 Role of nursery in fruit development, Fruit nursery practices in India, 7-9.
4. Marie Gowda, M. H. 1962 Some methods of propagation in mango, Fruit nursery practices in India, 54-57.

5. Mathur, R. S. 1962 Diseases in nursery plants and their control, Fruit nursery practices in India, 202-207.

6. Mukherjee, S. K. Majumder P. K. 1962 Veneer grafting in mango, Fruit nursery practices in India, 65-67.

7. Nelson, S. K. 1966 Pot plant crops, Flower and plant production in the green house, 205-281.

8. Rao, S. N. 1962 Growth regulators in propagation of fruit plants, Fruit nursery practices in India, 170-175.

9. Sandhu, H. S. 1971 Land scaping in school, Indian Horticulture XVI (3) : 20-26.

10. Singh, R, P. Srivastava, S. S. 1968 Establishing a fruit nursery enterprise and vegetative propagation, Report of the third all India summer institute in Agriculture I (I) : 36-50.

11. Venkataratnam, L. 1962 Recent trends, Fruit nursery practices in India. 1-2.

12. Venkataratnam,. L 1962 Role of polythene in plant propagation, Fruit nursary practices in India, 164-167.

Broiler Management

A. S. Rathore
B. Ed. (Ag.)

India is a vast country with increasing population. There is a good scope for poultry production to exist as an industry since poultry meat and eggs are prized as human diet. Meat and eggs are the best sources for animal protein and balanced diet.

Meaning of broiler :

Broilers are young chickens about eight to ten weeks of age which have been raised for meat production.

Importance of broiler production in India :

Poultry plays a very important role in removing the deficiency in the Indian diet, and also provides a fruitful occupation to the large section of population, thus provides a source of income.

With the rapid increase of population, spread of education and better earning capacity of the people the demand for food of animal origin has been fast increasing. There is much importance of animal protein in the human diet. It has been well established that certain essential amino acids which are found in animal proteins are lacking in vegetable proteins and as such meat is the best source of animal protein.

According to the Nutrition Advisory Committee a balanced diet should provide among other things 400 M.L. milk, 125 gm. meat and half egg per day.

The per capita consumption of meat and milk in our country is far short. As per Indian Council of Medical Science research 70 gms. of protein per head per day should be the total in take, out of which 15 to 20 gms. should be in form of animal

protein, but at present the total in take of protein is 51 gms. and only 11.8 gm. is taken in the form of animal protein.

Poultry meat will fill the nutrition gap in Indian diet. If we see the following table a comparative study of nutrients of popular meats can be known.

Table showing the nutrients in different meats.

Table No. 1

S.No.	Meat	Protein %	energy calories per 100 gms.	fat %	Riboflavin mg. %
1.	**Chicken** (roasted)				
	(i) White meat	31.5	138	1.3	0.30
	(ii) Dark meat	25.4	168	7.3	0.60
2.	**Beef Cooked**				
	Rump roast	21.0	378	32.0	0.15
3.	Pork (cooked)				
	Loin Chops	23.0	333	26.0	0.24
4.	Lamb (cooked)				
	Shoulder roast	21.0	342	28.0	0.22
	Rib chops.	24.0	418	35.0	0 26

Poultry meat provides fresh meat, in a conviniently small protein quantity considering only the edible of the meat, contains considerable fat. Yet their caloric value is lower than other meat, but chiken meat is higher in Linoleic acid content than other meat, and this is considered good for human health

On an average poultry meat contains 72% water, 20% protein, 1% fat, 1% ash.

During the last decade or so raising flock for meat purposes has become a specialised industry all over the world. Seperate meat type strains have been developed which grow rapidly and attain 1.5 kg. live weight in 8 to 10 weeks. In view

of quick turnover, poultry meat can be produced to the extent that can supplıment mutton which is becoming costlier due to short supply. In India even though poultry meat is liked by most of the meat eaters, it is still a LUXURY due to many reasons. The main problems are as under:—

(1) Economic condition of both the producer as well as consumer.

(2) Marketing facilities.

(3) Cost of feed.

(4) Processing plants.

(5) Climatic conditions · Meat in general has to be cooled below 10°c after slaughter to avoid putrefication and poultry meat is no exception to it. This is more so in our country where the temperature is high during major parts of the year.

In India two large capacity dressing plants have been set up one at Chandigarh and another at Poona with a capacity to handle 500 to 1000 broilers per hour. In the mean time 15 small dressing plants each with a rotopiuk, a scalder and freeze cabinets have already been procured under an aid programme and supplied to the states. Each of these plants can handle 2000 broilers a day.

6. Lack of proper management : As regards management the improved practices are mentioned below. But regarding the economic condition of the producer, it is essential that the financial assistance in terms of short and medium term loans should be given through co-operative societies, so that the broiler production can be developed and production of poultry meat may become a very useful way of fighting malnutrition in India.

Improved Practices in Management :

The layers and broilers require different type of management. The whole period of broiler is too less than that of layers and therefore if not managed properly there will be a loss. Following are some of the points which are to be followed for successful management in broiler production.

(1) Selecting the breed.

Before selecting the breed for broiler production the following qualities, of a commercial meat chicken should be kept in mind.

(a) Rapid growth.
(b) Rapid feathering.
(c) Good feed conversion.
(d) Ability to resist disease and with stand unfavourable management.
(e) Less mortality percentage.
(f) Well breasted, fleshed and firm body.

Which breed should be selected :

(1) *Select a heavy breed*—White rocks, Black rocks are good breeds. R. I. R. is a dual purpose breed but for broiler production it is not considered so profitable because the feed conversion is not good.

(2) Purchase from specialist breeder—For superior stock the purchase of broiler should be made from hatchery owner who gives special attention for broilers. These hatchery men handle disease. They also make special effort to select chicks of proven efficiency in "Feed conversion" and rapid growth. It is recommended to the poulty farmers that they should select only one breed in a flock at a time in broiler management.

(2) **Housing the Birds :**

Following are some of the points that should be kept in mind while housing the birds.

(a) Construct sheds inexpensive as far as possible, although the provision of proper ventilation, adequate protection from heat and cold is necessary.

(b) Choose best location:—i.e. nearness to city and market, nearness to water supply, proper drainage and, good roads are the pre-requsite for locating the broiler house.

(c) Use of Large House:—For 1500 Broilers at a time 50′ × 30′ house is sufficient. For efficient use of the space divide the house in three parts. This will effect the growth of broilers due to less number in each. It will be better to have broiler houses at distance. 30′ width of the house is more suitable. The house whose width is more than 20′ should have the provision of ventilation in roof.

Determination of floor space :

0.8 Sq. feet per broiler is sufficient. In summer allow 1 Sq. feet space.

Two story houses can also be prepared. Litter is spread on the ground. Wire floor combined with mechanical cleaner can also be used but this is a costly affair.

Use pole type simple construction, provide ventilation. Continuous supply of fresh air is a 'MUST'.

(3) Equipment

Brooder and Brooding:—In one brooder 250–300 broilers are to be kept. There should be one brooder in one pan. For one broiler 7 Sq″ space in required in the brooder.

Brooder temperature should be regulated as follows :—

Age in Weeks	Brooder Temperature in degree C
0–1	34–35
1–2	31–32
2–3	29–30
3–4	26–27
4–5	24
5–6	24
6 onwards	usually no heating is required

Feeding equipment :—One day to 2 weeks, one Linear inch space, 3 weeks to 6 weeks, two Linear inch space and 7 weeks to 9 weeks two and half Linear inch space should be provided per chicken.

A round automatic feeder of 50″ diameter is sufficient for 30 to 35 broilers of 6 weeks age. These should be put in such a manner in the shed so that the birds should not walk for more than 6′ to 7′ otherwise it will effect the growth of the broiler. The height of the feeder should be raised every week.

Waterers :—1 day to 3 weeks, 75 Linear inch space for 100 broiler. 4–9 weeks 100 Linear inch per 100 birds. (Linear inch = Total of both sides of length in inches for example if the length is 3′, this will be equal to 36 + 36 = 72 Linear inch)

(4) Ration

As this is a well known fact that feid accounts for major expenditure. Hence feed is the major managemental concern in poultry farming. It is necessary to feed balanced ration which should not only be cheap but should also have all the requirements necessary for growth.

The growth rate of the broilers is the major factor in broiler production. and among the factors which influence growth rate, feed is also one of the majar factor. If a balance feed is to be defined the same may be as under

"A combination of feeds providing nutrients in such proportions, amounts and forms as to properly feed to a given group of birds for a particular purpose".

Now our purpose in the broiler production is growth so feed should be as under.

(A) Broilor starter :—(1 day to 5 weeks.)

24% to 25% protein and 900 to 925 calories productive energy per pound.

(B) Broiler Finisher :—(6 weeks to disposal of broilers.)

20% to 21% proteins and 950 to 975 calories productive energy per pound.

The ration should not be changed all at a time, while changing starter to finisher give the changed ration as under.

First two days	1 Part Finisher 3 parts starter.
Next 2 days	½ finisher ½ starter.
Last 2 days	3 part finisher 1 part starter.

Then start finisher.

In the ration add one percent lime stone and 0.25 percent salt. Add vitamins A_1, B_2. D_3, In summer the quantity of vitamins should be raised to double. Give good effective coccidiostate. 3 Nitro 100 gm per 100 grams ration is good. In addition to it, if. 100 gms T-M 5 or 125 gms orafac 0—A per 100 gms of ration is given it will give good results. Give Granite grit from the starting. This should be 2% of the total ration consumed.

Good use of Ration:—To know the feed efficiency it is better that 3–4% broilers

should be weighed then the same should be compared with the breeder chart. If the growth rate is less some remedial measures should be taken. While weighing take male and female broilers equal in number and average weight should be obtained.

(5) Sexed Broilers :—

It will be better if male and famale broilers are maneged seperately because the growth rate of male broilers is more than the female and while disposal it will be easier to handle. If kept in one pan and selected it will effect the growth rate of the remaining broilers.

(6) Light :—

The broiler industry is based on one fundamental biological principal known as 'growth rate'. So as to keep the growth rate better it is essential that the birds should get the facilities of feed day and night. There fore use 40 watt bulb per 100 sq. feet and 7 feet above the floor, for providing facilities in feeding the birds.

(7) Debeaking :

As the broilers are provided less space there will be problem of cannabolism. For this debeaking is the best answer. When the broilers are of 10 days age debeaking should be done.

(8) Vaccination .

Give F.1 at the age of one day. So that the bird will attain immunity of Ranikhet.

(9) Measurement of Success ·

The growth rate of the broiler is influenced by many factors as mentioned above. The feed, breed, management, housing, environment, diseases and sex. Feed conversion ratio is the best way to know the progress. In this ratio it is seen that how much feed is required for one kilo live weight of broiler for a period of 8 to 10 weeks. 2.2 : 1 ratio is good. On good farms the same may be from 2.5 : 1 to 3 : 1. our aim should be that the ratio should remain Less to 2.5 : 1.

Weekly Inspection :

Following is the table giving the average weight of broiler and feed consumed and the weight attained ratio. Tht weight should be compared to this table and if some mistake is there this should be corrected immediately.

Table No. 2

Table showing feed converted ratio

Week.	Average weight	Consumption of feed per week.	Total ration consumed.	Ration per chicken	Feed converted ratio.
1	—	70 kg.	70 kg	70 gm.	—
2	135 gm.	140 kg.	210 kg.	210 gm.	1.5
3	250 gm.	220 kg.	430 kg.	430 gm.	1.72
4	390 gm.	310 kg.	740 kg.	740 gm.	1.8
5	600 gm.	412 kg.	1152 kg.	1.15 kg.	1.9
6	750 gm.	481 kg.	1633 kg.	1.63 kg.	2.17
7	900 gm.	565 kg.	2198 kg.	2.19 kg.	2.4
8	1105 gm.	659 kg.	2857 kg.	2.85 kg.	2.58

By using the above improved practices in broiler production, the industry can be developed, and the cost of production of the broiler can be lowered, and this will become a commercial enterprise providing good nutrients and source of income to many people of the country.

REFERENCES

1. Anonymous, 1966 Management recommendations for raising broilers. Poultry digest. May : 242.,

2. Bapa Reddy, P. 1968 A Seel the real. Indian farming. XVIII (9). 99-100

3. Bhattacharya. P 1968 Poultry will play an important role in Live Stock development schemes. Indian farming. XVIII (9): 8-11.

4. Biddle George, H & Juergen son Elwood. M. 1955 Approved practices in poultry production. The inter-state printers and publishers Danville Illinois : 195.200.

5. Bundy clarence, E. & Diggins Ronald,V 1961 Live Stock and Poultry production. Hall, INC Engle wood cliffs M.J. 549.

6. Chhabra, M.B. 1968 What makes a good baby chick. Indian Farmer's Digest. I (7)· 13-14.

7. Chhabra M.B. 1970 Uttam chooson ka chunav. Kishan Bharti. I (8) · 11-12.

8. Dev Narayan. 1970 Aya ka Sadhan Murgi Palan. Kheti. XXIII (2): 34-37.

9. Goel, V. D. 1972 Poultry Industry in Denmark. Indian farmer's Digest. V.(6)· 15-16.

10. Good man John,W & Tudor David, C 1960 Your future in Poultry Farming. Poentic Hall. Engle wood clifts N.J · 261-263.

11. Huston, T.M. 1966 Environment's effect on broiler growth. Poultry Digest. April 199-201.

12. Jull morley, A. 1951 Poultry Husbandry. Migraw Hill Book Company INC. 10-13.

13. Khan, Sabir Ahmad. 1972 Broiler utpadan aur Sambandhit Samasyan. Poultry guide. IV (6)· 9-12.

14. Khan, Sabir. Ahmad. 1972 Safal Broiler Utpadan. Poultry guide IV (8) : 24-33.

15. Mahadevan, T.D. & Kumrah,R.K. 1971 Preservation of eggs and Poultry meat. Indian farming. XXI (3) . 35-36.

16. Naidu, P.M.N. 1967 Poultry keeping in India. I.C.A.R. 3-5.

17. Panda, J. N. 1969 Poultry Industry in Australia. Poultry guid. VI (9) 13

18. Panda, V. 1972 Murgi Palan Vigyan. Kheti XXIV (12)· 30-31.

19. Parpia, H.A.B. 1968 Poultry will fill nuteitional gap in Indian diet. Indian Farming XVIII (9) . 23-27.

20. Prem Prakash. 1970 Murgi Palan Labh hi Labh. Kishan Bharti. I (8): 54-56.

21. Ramakrishnan, A. 1972 Give baby chicks the body care Intensive Agriculture X (12): 25-28.

22. Rao, B. S. 1972 Importance of balanced feed for broiler production. Indian farmer's digest. V(6)· 42-43 & 45.

23. Rathna Sabha Pathy, V. 1972 Poultry Production in India. Problems and Prospects. Indian Farmer'e digest. V (6) 5-6.

24. Sasi Kapoor 1971 Choojan ka palan posan. Poultry guide. III (5) : 23-70.

25. Satapathy, N 1969 Poultry Feeding in India. Poultry guide, VI (8) : 19-23.

26. Sathe, B. S. 1969 Problems of economic poultry production in India. Poultry guide. VI (7) 16-18.

27. Sathe. B. S. 1971 Broiler meat utpadan par prabhav dalne wale sadhan. Poultry guide III (9)· 31-35.

28. Saxena, V.P. & Gupta, S. C. 1971 Vital problems of poultry farming in India. Poultry guide VIII (9) : 17-21.

29. Slattery John, B. & Hiremath, N. B. 1971 A house for your poultry. Intensive Agriculture. IX (9) : 12-15.

30. Tandon, H.P. 1968 Making Poultry keeping more profitable. Indian farming. XVIII (3) 41-43.

31. Tandon, S.T. 1971 Grower management. Poultry guide. III (10) 18-23.

32. Wilson Norris, E & Card Leslie. 1956 Farm Poultry Production. The Interstate printers and publishers Danville Illinois : 57-59.

Improved Practices of Water-melon and Musk-melon

by : Vir Bhan Singh Yadav
B.Ed. (Ag.)

This is the largest group of summer Vegetable Crops. This includes cucumber, Musk-Melon, Water Melon, Tinda, Bottlegourd, which belong cucurbitaceae family. Bittergourd, Pumpkin, Parwal, Snakegourd, and a large number of mostly trailing crops. Most of them are Monoecious in character and a few are dioecious. A number of hermaphrodite and andromonoecious characters are also available in some crops. They are all summer season crops and are susceptible to frost.

Musk-Melon—

Botanical Name—Cucumis melon.

Hindi—Kharbuza

In North India musk-melon is an important Vegetable crop. Melons are grouped under Vegetable crops in most parts of the world. But in certain parts of the continent they are considered as fruits. Very rarely it is cooked as a vegetable in the green stage. Musk-Melons have a good inter-trade in India. This is widely grown in Bihar, Utter Pradesh, Punjab and Rajasthan. In the South it is grown in the Andhra Pradesh and Madras.

Origin :—There is still some controversy about the exact place of origin of Musk-Melon. It is now generally agreed that the melon is native to the hot valley of Iran (Persia) and North West India. It is also grown in United States of America.

Importance—

(1) It is an important crop of summer season, used as a vegetable in early stage of fruiting.

(2) Generally it is grown in the river-beds, where another crop can not be grown, so there is a proper utilization of river bed's waste land.

(3) It has also the market value, we can earn money from this crop.

(4) It has nutritive value and a good source of Vitamin 'A'.

Climatic Requirements—

The Musk-Melon requires a high temperature and dry climatic conditions. A humid climate may favour the development of foliar diseases. The excessive moisture in the soil when the fruits mature lowers the quality of the fruit. The optimum temperature for growth of the melon is about 30° C It can not stand frost.

Soil :—

The Musk-Melon are mainly grown on sand and sandy soils on river-beds, but this crop can be raised even on sandy loam, silt loam and clay loam. They do not grow well on a strong acidic soil. The optimum pH range being between 6.0 and 6.7

Preparation of soil :—

The soil should be well prepared as is done in other Vegetable Crops. When sown on the river-beds, the sand is dug up to water table and then it is filled up often mixing the manure with the soil. Digging is done either in hills or trenches.

Manures and Fertilizers :—

The Manure and Fertilizer requirements are as follows :—

(1) 250–300 quintals of Farm Yard Manure or Compost, per hactare.

(2) 80–100 Kg of Nitrogen, 80–100 Kg. of Phosphorus, and 100–120 Kg. of Potash per hactare.

A half dose of Nitrogen and full doze of Phosphorus and Potash should be added at the time of preparation of soil. The remaining half dose of Nitrogen should be given as a top dressing at the early growth of Vines.

Varieties of the Musk-melon :—

There are a large number of varieties of Musk-melon, with different sizes, shapes and colours, grown in different parts of country. Hardly any improvement

work has been done on this crop in India. In foreign countries very sweet varieties have been developed with small seed cavity, thick flesh, good flavour and resistant to diseases like powdery and downy mildews and fusarium wilt. The exotic varieties which have done well in India are P. M. R. 35, Jucumka, campo, pusa Sarvati, and Rajhanee. The netted varieties are commonly known as cantaloupe in the U. S. A.

There is need to improve and group the Musk-melon Varieties of India. At present the general cultivated varieties are :—

Lucknow Safeda, Haridhari, Faizabadi, Hara Madhu, Allahabadi, Golden Sweet, Kanpuri, Kabuli, Arka, Arkajit, Katana, Amritsari, Durgapur Madhu and Tonk.

These all varieties are grown in India particularly in Uttar Pradesh, Punjab and Rajasthan states.

Time of sowing :—

The Musk-melon is grown as a summer crop and is sown from November to March. In regions where, there is no danger of frost like Bengal, Bihar and south it is sown in November and December. In Northern India it is generally sown after the danger of frost is over from February on wards. To get an early crop it can be sown in December and January but need protection from frost.

Seed Rates :—2–3 kg. seed/per hactare. The seeds are soaked overnight before sowing.

Sowing method :—

The seeds are generally sown on river-beds in hills and in trenches. The distance of Hill to Hill is 1.2–2 Meters (square system).

Irrigation :—Crop which is sown on river-beds needs no irrigation. The plants get moisture through capillary action from the sub soil water. The crop which is sown else-where need irrigation particularly in Rajasthan.

Interculture operations :—It is shallow rooted crop so light interculture, operation is needed. Thinning of plants is done as 2–3 plants in each hill and 1–2 plant at each point in trenches. Mulching, particularly with Black polythene,

increases the yeild. Training and removing of the vine should be done accordingly.

Harvesting :—The stage of maturity at which the melons should be harvested depends on different factor, like variety, temperature and distance of market. The stage of maturity is generally judged by the change in the external colour of the fruits. As ripening advances, a crack develops around the peduncle at the base of the fruit and when fully ripe, the fruit slips easily from the stem leaving a large scar this is known as "full slip". In the "half slip" stage only a portion of the disc is removed from where the fruit is pulled out and the scar on the fruit is smaller than in the "full slip" stage.

Yield :—The average yield per hactare is 10,000 kg. to 12,000 kg.

Diseases of Musk-melon

1. Bacterial wilt :—This disease is caused by a bacterium, Erwinia treehuphila is carried by the striped cucumber beetles. The disease spreads from leaves downwards in the petioles and stems until the entire plants wilt and dies There is no direct control measure but the disease can be fairly checked by controlling the striped cucumber beetle.

2. Anthracnose :—This disease is caused by a fungus known as colletotrichum lengenarium. Small yellowish areas is formed, which enlarge rapidly and turn brown appearance on the leaves. To control this disease, seed treatment is done with corrosive sublimate solution. (2.5 CC in 35 to 40 litres of water for five minutes)

3. Powdery mildew :—This disease is caused due to another fungus. Symptoms first appear as round white spots on the under surface of old leaves and stems. To control this disease we should dust Tri Copper sulphate (5% Copper Content) at 20–25 kg. per hactare early in the season and subsequently 45–60 kg. per hactare when the vines are large.

Insect and Pests :—

1. Striped beetle or Red Pumpkin beetle. These is probably the most serious Insect pest of Musk-melon. They attack the plants as soon as they come up. They eat away the interveinial space of the leaves. The control measure is to catch them and destroy them early in the morning. Spraying of 0.04% Folidal 800–

1000 liters per hactare or dustıng 2.5% B. H. C. 20–25 kg. per hactares can suitably conirol the pest.

2. Melon Aphid :—This small sucking insect injur the plants by sucking the juice. Aphids remain on the lower surface of the leaves. A spray of thiodine 35 C. C 0.05% solution controls the insects.

3. **Pickle worm** :—We can control this worm by dustıng of B. H. C. 10% 50–60 kg. per hactare.

4. **Root-Knot Nematodes** :—These minute seelworms caused by swelling on the roots. Symp-toms are appeared as the poor growth of the plants. Application of D. D. T. or Nemogon is recommended. Long rotation can also control the Nematodes.

WATER–MELON

Botanical Name—Citrullus valgaris schard
Hindi—Tarbuz

Origin :—Africa is considered to be the place of origin of the watermelon. It is cultivated ın India for a long time which is often considered as the secondary center of origin. It is very common summer crop and ıs grown from the lower Himalian regions to south India.

Importance : It is an important vegetable crop of summer season, used as vegetable in its early stage. The fruits are delicious and sweet when they are ripe. Its seeds are also fried and eaten. It has nutritive value and contaın a large percentage of Protein. It has a trace of Vıtamin A with cooling effect. A variety in U S. A. called 'citron' ıs used for making a sweet Pickles and preserved.

Climatic requirement :—The water melon can not wıthstand frost and needs a long growing season with a relatively high temperature. The foliage diseases are more destructive in humid regions. The optimum temperature range for satisfactory growth is between 22° and 25° C.

Soil requirement :—Watermelon can be grown on a wide variety of soils ranging from high sandy loams to clay loams. This crop is one of the few vegetable crops that grow well on a soil that is rather highly acidic even up to pH 5.0 The

optimum pH range for the water-melon is from 5.5 to 7.0. The preparation of soil is the same as described for Musk melon on river–beds.

Manures and Fertilizers: – About 300-350 quintals of sludge, municipal compost or Farm Yard Manure per hactare is added in sandy soils. This is applied at the time of preparation of the soil. It is followed by application of 80 Kg Nitrogen, 60 Kg Phosphorus and 20 Kg. of Potash. Full doses of P_2O_5, and K_2O and half dose of Nitrogen should be added at the time of preparation of soil. Remaining half dose of Nitrogen is added as a top dressing about a month after sowing.

Varieties of Watermelon:—There are a large number of varieties grown all over the country. This is a cross Pollinated crop and as hardly any care is taken to maintain its purity. Some of the exotic and indigenous varieties which have performed well at I. A. R. I are :—

1. Asahi Yamato, Sugar baby, New Hampshire Midget Dexiqueen, Pusa Bedana.
2. *Indigenous varieties:*—Delhi local, Jaipur and Kalagola Etc
3. Local or general cultivated Varieties are Farkhabadi and Bhagal puri etc.

Sowing Time :—In plains it is grown in the Month of January and February. But in hilly areas it is grown in April and May.

Sowing method and seed rate:—

Generally the water melon is sown on river-beds in hills. The spacing varies with soil fertility and varieties. Hills are prepared in square system at a distance of 3 meters each. In the square system the spacing is kept at 4 × 1 meter and 3–4 seeds are sown in each place The seed rate per hactare is about 3-4 Kg

Thinning :—Thinning of the plants is done when the danger of frost and red pumpkin beetle is over. Two or three plants are kept per hill and one or two in each place in trenches

Production of seedless water melon :—To avoid the discompfort of spitting out the seeds at the time of eating, attempts are being made to produce seedless watermelons. The application of plant regulators to produce seedless watermelons has not yet been a success. A Japanese scientist Dr. Kihara however demonstrated that seedless watermelon can be raised in certain varieties by producing triploids. Tetraploid watermelons were produced by treating with colchicine and then crossed with the

pollen grains collected from diploids. The seeds collected are sown along with some diploid which acts as a polliniser. The seeds in the fruits borne on triploid plants contain only small ovules which can be eaten with the flesh. The best combination found at the I. A. R. I. is Tetra 2 X Pusa Red.

Sex modification by Plant regulators :—Application of 2, 4–5 Tri-iodobenzoic acid (TIBA) at 25–30 pp.m. once or twice at the 2 leaves stage and again at the 4 leaves stage induces a greater number of female flowers, increases fruit-set and ultimately gives a 50% greater yield than untreated plants. Boron at 3 p. p. m. and calcium at 20 p. p. m. are also very effective.

Harvesting :—It is very important that watermelons should be harvested at the proper stage of maturity. Change of colour of the portion of the fruits which rest on the ground is a useful guide, the colour changes from white to creamy yellow at maturity. A metallic sound when the melon is topped with the back of the hand denotes immaturity where as heavy dull sound indicates ripeness. The dying of the tendril at the stem end is also a sign of maturity.

Storage :—Watermelons keep well for 1—3 weaks at 2.2 to 4.4° C and 80–85 percent relative humidity.

Yield :—300–350 quintals per hactare.

Diseases and Insects pests are the same as for muskmelon.

REFERENCES

1. Agrawal, A.C. Kumar, S. S. Arkeri, H. R. Kumoth M.G. 1963 Muskmelon, watermelon. Agriculture in India II : 154.
2. Anonymous 1964 Watermelon for Garden, U. S. Deptt. of Agriculture, Leaflet No 528.
3. Chaudhary, B. 1967 Maskmelon, watermelon Vegetable I : 138-142
4. Chauhan, D. V S. 1968 Cucurbitaceous Crops, Vegetable production in India. II : 168-207.
5. Gulshan Lal 1970 Kherakul ki Sabjeeyan, Sahi Dhang se Ugaeye. Kishan Bhartiya. I (9) : 40-43.

6.	Gulshan Lal	1968	Raising Cucurbits in right way, Farmer digest. I (6) : 6-8.
7.	" "	1968	Nutritius Value of Vegetable. Farmer digest I (6) : 13-14.
8.	Khalsa, M. S. and Chandra Singh, J.P.	1968	"Pests of Vegetable" Farmer digest I, (6) : 19-27.
9.	Khan A. R, Rao Joun, C. C. S. B. S. and Choudhan, B.	1965	Tarbuza leaflet by I. A. R. I. New Delhi.
10	Khandewal, Gopal Lal	1970	Tarbuza and Kharbuza ki Bimariyan : Kheti. XXIII. (3) : 20-22. Published by Bhartiya Krishi Anusandhan Parishad New Delhi.
11.	Nazar Singh Deshai and, Nandpuri, K. S.	1961	Kharbuza, Tarbuza Vegetable growing in Punjab I : 56-65.
12.	Purewal S. S. and Arkeri, H.R.	1972	Kakari Vergiya Sabjeeyan. Bhartiya gyan Kosh II : 232-234.
13.	Rastogi, P. P.	1968	Processing Summer Vegetable Indian Farming I (6) : 19-22.
14.	Singh, Shishupal	1972	Grishma Kalin Subjeeyn Ki Kheti.
15.	Singh, T. N.	1968	Seed Production on Summer Vegetable. Farmer digest (6) 9-12.
16.	Swarn, Purewal Singh	1962	Bel Vali Subjeeyan" Utter Bhart Med Subjeeyan. XXXVIII 57-85.
17.	Thomson and Kelly	1957	Cucurbits or Vine Crops Vegetable Crops. V : 513-521.
18.	Vedhya, M. S. and Vedhya, S. S.	1969	Tarabuza Ki Kisma. Kheti XXII (2) 20-23.
19.	Yadav, A. S. and Yadav, S. C.	1965	Kharif Vegetable (Tarbuza) Shostrya Vigyan I : 95–98 95-98.
20.	Yawalker, K. S.	1965	Tarbuza or watermelon. Vegetable Crops of India III : 73-76.